TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

PAGES MISSING BOOK.

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180635

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83 Accession No. H 3005

Author S53P

Title शर्मा शरावत परिवार

This book should be returned on or before the date last marked below.

परिवार

यज्ञदत्त शर्मा

सर्वोदय साहित्य मंदिर,
कोठी, (बसस्टैण्ड,) हैदराबाद ६.
प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन
मालीवाड़ा, दिल्ली

प्रथम संस्करण १९५५
द्वितीय संस्करण १९५७
मूल्य : छः रुपया

मुद्रक :
सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड,
डिप्टीगंज,
दिल्ली

: ३ :

चौधरी आभाराम के पाँच बेटे थे। विवाह उनमें से केवल का हुआ था। चौधरी आभाराम ने मुकदमे में अपने मुखालिफों र उनके सहायकों के दिलों को काफ़ी ठेस पहुँचाई थी और के मान को अपनी ताक़त और अक्लमन्दी से दला था, लिए उनके मन में भी जलन थी, एक कसमसाहट थी।

इन पाँचों भाइयों का ज़माना भी यों ही खाते-कमाते निकल ा। न तो ये साहूकार का कर्ज़ा ही अदा कर सके और न ई दूसरी ही उन्नति की। पहलवानी का शौक खानदान को र लग गया था और उसमें रुपया काफ़ी खर्च होता था, परन्तु े बन्द भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि उसी के कारण क़स्बे के ख़ालिफ़ लोग ज़रा डरते थे और उन पर रौब रहता था।

एक दिन वह भी आया जब चौधरी आभाराम के चार पुत्र भी इस दुनिया में न रहे। पहलवानी परिवार पर भार हो गयी। समरसिंह का लड़का अपने बाप दादों की लकीर पर चलना चाहता था। वह भी अलग हो गया।

दूसरे के तीन बेटे एक मुट्ठी में थे। मुट्ठी में क्या, अभी बच्चे ही थे। बड़ा लड़का अठारह वर्ष का था। उसकी एक बहन भी थी, शादी करने के लिए। चचा-ताऊओं में से केवल एक ताऊ थे।

ताऊ के सामने परिवार की इज्ज़त का सवाल था। समरसिंह के लड़के के लक्षण उन्हें अच्छे नहीं लगते थे। दूसरे के लड़के होनहार थे। ये उनकी इज्ज़त भी करते थे और उनकी देख-भाल भी। ये तीनों भाई थे चतुरसिंह, शक्तिसिंह और

अग्निदत्त। चतुरसिंह इनमें सबसे बड़ा था। जब पूरे मुश्त परिवार की बागडोर उसके हाथों में आई तो उसकी उम्र भग अठारह वर्ष की थी। बच्चा ही था वह भी, लेकिन हिम्म वाला बच्चा था। उसकी नसों में दौड़ने वाले रक्त के अन साहस लहरें मारता था। शुरू से ही शिक्षा की ओर ध्यान था उसका और उसके विचारों में समय की हर प्रगति को पकड़ने की क्षमता थी।

सम्मिलित परिवार की बागडोरें हाथों में आने पर एक सतर्क कोचवान की तरह इस साहसी लड़के ने चारों ओर देखा। घर की ज़मीन पर खेती होती ही थी। उसका प्रबन्ध इसने अपने बिचले भाई शक्तिसिंह को दिया और स्वयं बाहर से रुपया कमाने की बात सोची। गाँव के स्कूल में दर्जा चार तक उर्दू की शिक्षा पाई थी उसने। फिर प्राइवेट पढ़कर मिडिल पास किया और गाँव के स्कूल में लगभग सात रुपये माहवार पर नौकरी कर ली। परिवार की गाड़ी को चलाने में घर की आय के साथ यह एक अतिरिक्त आय हुई, जिसका असर घर के आदमियों के पहनावे पर स्पष्ट दिखाई दिया। स्कूल-मास्टर के कपड़े धुले हुए और साफ़ रहने लगे।

चतुरसिंह का छोटा भाई अग्निदत्त भी तालीम पा रहा था। उसने भी दर्जा चार पास किया। इसी बीच में चतुरसिंह ने आगरे के नार्मल स्कूल में जाकर नार्मल पास किया। नार्मल करते ही उसे मेरठ टाउन स्कूल में असिस्टेन्ट टीचर की जगह मिल गई और वेतन भी लगभग पच्चीस रुपये हो गया।

पच्चीस रुपये का वेतन बड़ी रक़म थी। हर महीने इतने रुपये नकद मिल जाना, सारे गाँव में एक तहलका था। लोग-बागों ने अपनी आँखों से देखा कि चतुरसिंह का परिवार ऊपर को उठा। कुछ लोगों को इस परिवार की तरक्की देखकर अफ़सोस हुआ और मन में जलन पैदा हुई, परन्तु चतुरसिंह को इसकी कोई चिन्ता नहीं थी। वह अपने रास्ते पर चल रहा

: १ :

भारतवर्ष की भूमि पर सिरसा भी एक क़स्बा है। क़स्बा चारों ओर पाँच-पाँच चार-चार कोस पर रेल की लाइनों तथा पक्की सड़कों से घिरा है, परन्तु उसके अपने सिवाने को छूती हुई न कोई पक्की सड़क ही जाती है और न कोई रेलवे लाइन ही।

विचित्र क़स्बा है, जो शहर बनते-बनते रह गया। जिसके वातावरण ने कभी अच्छे दिन देखे थे, जिसकी सभ्यता काफी पुरानी है, जिसकी बोल-चाल सुसंस्कृत है। किसी समय में जब ज़मीन के कुछ अच्छे पैदावार वाले भाग छाँट कर इन्सान ने अपने बसने का ठौर-ठिकाना ढूँढा होगा और कुछ गिने-चुने ज़मीन के टुकड़े रहने के लिए पसन्द किये होंगे, तो उनमें सिरसे की ज़मीन का भी नम्बर आया और यहाँ इन्सानी बस्ती बसायी गई।

गाँव की ज़मीन हमवार है, अच्छी पैदा देने वाली है; क्या गेहूँ, क्या चना, क्या मटर, क्या मकी, क्या धान, क्या कपास, क्या ईख और उरद, अरहर, मूँग, तिल, सरसों, तरा, ज्वार, इत्यादि के अतिरिक्त सब्ज़ियों में आलू, अरवी, घीया, टिंडा तथा बेल वाले फलों में ख़रबूजा, तरबूज़, ककेंड़ी सब पैदा होते हैं। पुराने बागों से गाँव घिरा हुआ था। कहावत मशहूर है कि सिरसा उसकी जड़ों में पहुँचने पर ही दिखलाई देता है। क़लमी तथा देसी आमों के बाग हैं जिनमें आड़ू, नींबू इत्यादि भी थे। जंगल में पक्के बने हुए पुराने ज़माने के कुएँ हैं। आबपाशी का पुराना ज़रिया यही है। अंग्रेज़ी शासन के ज़माने में पहले नहरी पानी का एक बम्बा इधर आया और बाद में बिजली का कुआँ भी चालू हुआ।

कस्बे में हिन्दू भी रहते हैं और मुसलमान भी। हिन्दुओं में विशेषता तगा जाति की है जो अधिक सुसंस्कृत रूप से अपने को गर्व के साथ दान-त्यागी ब्राह्मण कहकर पुकारती है। इस जाति के लोग अपना विकास राजा जनमेजय के यज्ञ से मानते हैं। कहते हैं राजा जनमेजय का सर्पयज्ञ इसी जाति के पुर्खा ने कराया था और फिर उस यज्ञ को सम्पन्न कराने की दक्षिणा-स्वरूप जब उन्होंने कुछ लेने से इन्कार कर दिया तो राजा जनमेजय ने चालाकी से एक पान, जिसमें दान स्वरुप सौ गाँव लिख दिये गये थे, इन्हें खिला दिया। इस प्रकार इन्हें सौ गाँवों की ज़मीदारी मिली और तभी से बराबर खेती ही इनका मुख्य पेशा है। ये लोग देहातों में रहते हैं और इनका रहन-सहन भी अधिकांश में देहाती ही होता है। इसलिए इस जाति का कोई बच्चा यदि गाँव से कमाने के लिए शहर जाता भी है तो उसकी दृष्टि ज़िन्दगी के अंतिम सहारे के लिए गाँव और गाँव की ज़मीन पर ही टिकी रहती है, क्योंकि वह ज़मीन को ही अपनी इज्ज़त और स्थायी सम्पत्ति समझता है।

मुसलमानों में कुछ ऊँचे दर्जे के शिक्षित मुसलमान हैं, ऊँची क़ौमों के कहलाने वाले और कुछ इन्हीं तगों में से मुसलमानी ज़माने में मुसलमान बने हैं। ये गाड़े कहलाते हैं। इनके मुसलमान बनने की कहानी भी बड़ी दिलचस्प है। यों है तो वह मुसलमानों द्वारा गाँव के जन-बच्चे को एक सिरे से दूसरे तक तलवार के घाट उतार देने की बात, परन्तु बात इतनी पुरानी हो गई है कि आज कत्लेआम कहने पर भी रोमांच नहीं हो आता। मुग़लिया शासन के ज़माने की बात है, कि सिरसे का बच्चा-बच्चा शेखों द्वारा क़त्ल करके गाँव पर अधिकार कर लिया गया। इत्तफ़ाक की बात है कि गाँव की एक बहूरानी अपने मैके गनेशपुर गई हुई थी और वह गंभवती थी। वहाँ उस बहू के दो जौड़वाँ लड़कों ने जन्म लिया और अपने नाना के यहाँ ही ये लड़के पले। एक दिन इन्होंने अपनी माँ से अपने

गाँव का नाम पूछा तो माँ ने उन्हें सिरसे के विषय में बतलाया। साथ ही वह दर्दनाक कहानी भी सुनाई जिसमें उनके सिरसे न जाकर उनके यहाँ रहने का राज़ छिपा हुआ था।

इसी बीच एक दिन एक सूफ़ी फकीर शाहअमर गनेशपुर से गुज़रा। प्रेम के राग में पगे हुए इस फकीर ने रात को गाँव के लोगों के बीच चौपाल पर बैठ कर अपने मधुर कंठ से एक क़व्वाली सुनाई। लोग झूम उठे इस क़व्वाली को सुनकर। जो लोग वहाँ क़व्वाली सुनने के लिये एकत्रित हुए थे, उनमें उन दो लड़कों का नाना भी था। नाना ने उस फ़कीर को पहुँचा हुआ आलिम-फ़ाज़िल और परमात्मा में विश्वास रखने वाला नेकनीयत इन्सान समझ कर और यह सोचकर कि शायद उसके द्वारा ही उसकी लड़की तथा धेवतों का कोई उद्धार हो सके, उसे सिरसे के क़त्लेआम की पूरी कहानी कह सुनाई। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई, जब उसने अपनी बेटी के बेवा होने और उसके पूरे खान्दान की तबाही का हाल सुनाया।

सूफ़ी फ़कीर शाहअमर भी इस क़त्लेआम की कहानी सुन कर रो पड़ा। उसके दिल में प्रेम की पीर जाग उठी और इन्साफ के लिए वह उन दोनों लड़कों को अपने साथ लेकर शाहजहाँ के दरबार में दिल्ली पहुँचा। बादशाह ने लड़कों की पूरी कहानी सुनी और क़ाजी के पास उन्हें फैसले के लिए भेज दिया।

क़ाजी को भी यह गाथा सुन कर दया आई। उसने निश्चय किया कि लड़कों को उनका गाँव वापसा मिल जाना चाहिए। परन्तु इस हुक्म के देने में उसके सामने धार्मिक कठिनाई आकर खड़ी हो गई।

धर्म ने इन्सानियत का गला दबा कर कहा, "क्या खूब, तुमने भी खूब सोचा क़ाजी! भला कहीं इस प्रकार कब्ज़ा किए हुए माल को लौटाया जा सकता है? यदि लौटाने की ही बात है तो क्यों नहीं मुग़लिया सल्तनत अपना बिस्तर-बोरिया

गोल करके खैबर दर्रे को पारकर हिन्दुस्तान के बाहर हो जाती ? इस्लाम को फैलाने के लिए हम लोग यहाँ आये हैं। इस्लाम के रास्ते में आने वाली हर रुकावट को हम तलवार से साफ़ करेंगे। यह ठीक है कि ये लोग उस गाँव के क़दीम बाशिन्दे हैं, लेकिन सचाई यह है कि आज उस पर मुसलमानों का अधिकार है।' यह सोचते-सोचते तुरन्त ही क़ाजी के दिमाग़ में धर्म-परिवर्तन की बात आई और उन्होंने अपना प्रस्ताव इन दो नौजवान लड़कों के सामने रख दिया।

सिरसे के इन दोनों लड़कों के सामने धर्म बदल कर अपना गाँव प्राप्त करने का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। दोनों भाइयों ने आपस में सलाह की और बड़े भाई ने ज़िन्दगी की ज़रूरतों के सामने धर्म-परिवर्तन को बेसूद और क़ाजी का बेहूदा दिल बहलावा समझ कर मंज़ूर कर लिया। सिरसा उसे मिल गया।

शेखों को भी, जिन्होंने गाँव पर कब्ज़ा कर लिया था, सरकारे वक्त ने नाखुश करना मुनासिब नहीं समझा। उन्हें कुछ ज़मीनें, मिल्कें, अर्थात् बिला लगान की माफ़ीशुदा ज़मीनें दे दी गईं।

दोनों भाई सिरसे में आकर बस गये। बड़े के एक और छोटे के चार लड़के पैदा हुए। बड़े भाई ने अपने मरने से पूर्व ही तमाम गाँव को पाँच बराबर भागों में बाँट दिया। एक-एक भाग हर लड़के को मिला। यह बँटवारा करते समय वह अपने को क़ाजी से नेकनीयत इन्सान और इन्साफ़पसन्द बड़ा भाई समझ रहा था।

गाँव के ये पाँचों भाग आज भी सिरसे की पाँच पट्टियाँ हैं, जिनमें पाँच खानदान पनप रहे हैं, एक मुसलमानों का तथा चार हिन्दुओं के। शेखों के मकानात सबसे पृथक गाँव के उत्तर-पश्चिम की ओर हैं। पक्की हवेलियाँ है, लखौरी घिसी हुई ईंटों की बनी हुई, आलीशान इमारतें।

सादगी का ज़माना खत्म हुआ। दाव पेंच का ज़माना आया।

बड़े भाई ने मुसलमानियत पर भाई के प्रेम को तरजीह दी थी। उसने न सरकारी क़ानूनों की शरण ली और न धार्मिक मान्यताओं और पाबन्दियों की। उसने इन्सानी क़ानून की कसौटी पर जब परखा तो यही ठीक पाया कि अपनी और अपने भाई की सन्तानों में सारी जायदाद को बराबर-बराबर बाँट दिया जाये।

सभी को ज़रूरत थी ज़मीन की, सभी खेती करते थे! मुश्तर्का ख़ानदान की जायदाद का यह समाजवादी विभाजन उन पाँच पट्टियों तक ही सीमित रह गया। धर्म और ख़ानदानी स्वार्थ का पंजा कड़ा हो चला। इन पट्टियों ने पृथक-पृथक अपनी बुनियादें क़ायम कीं और उन पर अपने परिवारों को फैलाना प्रारम्भ कर दिया। गाँव का सामूहिक रूप यहीं पर समाप्त हो गया।

क़स्बे में अब शेख आबाद थे, तगे आबाद थे, और इनके अलावा अन्य कारीगिर जाति के लोग, लुहार, बढ़ई, माली, चमार, भंगी और यहाँ तक कि अन्त में कुछ फ़क़ीर भी आकर आबाद हो गये। दूकानदारी करने वाले बनिये, सुनार, अत्तार, हलवाई, पंसारी, पटवे, जुलाहे, धुने इत्यादि भी आ बसे।

जिजमानी करने वाले ब्राह्मणों के भी कुछ घर थे। इसी बीच जब क़स्बा खुशहाली की तरफ बढ़ा तो कुछ खत्री जाति के लोग भी यहाँ आकर बस गये। इन लोगों का पेशा साहुकारा था।

धीरे-धीरे एक समय गाँव ने वह भी देखा कि जब साहुकारा खेती पर छा गया। एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे की ज़मीनें कर्ज़ के लगाव में साहुकारों के हाथों में चली गईं और उनकी रियासतें बन गईं। ज़मीदार काश्तकारों में बदल गये।

लेकिन यह बात सबके साथ नहीं हुई। कुछ लोग अपनी जायदादें बचाये भी रहे।। इसी खत्री-जाति में एक महाशय राजा साहब के नाम से भी प्रसिद्धि पा चुके हैं। अंग्रेज़ी सल्त-

नत के ज़माने में उन्हें राजा साहब का ख़िताब मिला था। रुपया देकर उन्होंने वह ख़िताब खरीदा था। यह बहुत पुरानी बात नहीं है। कहते हैं कि राजा दिलेराम आदमी नहीं देवता था। गाँव ही क्या, आस-पास के देहातों पर भी उसका असर था। नेकनीयत इन्सान था और ग़रीबों की मदद करना अपना फ़र्ज़ समझता था। क़स्बे की शान थी उसके ज़माने में। क़स्बे का अपना तो कच्चा और पक्का बाज़ार था ही, साथ में हफ्तेवार एक पेंठ भी लगती थी, जिसमें शहर के व्यापारी भी आया करते थे। राजा दिलेराम का अपना क़िला था। था कच्चा ही, लेकिन उसे हर आदमी गर्व से क़िला कहकर पुकारता था। यह जो ऊँचा टीला दिखलाई देता है, ठीक इसी के ऊपर बना था।

मतलब यह है कि क़स्बा ऐतिहासिक है। क़स्बे के रहने वालों की तालीम के बारे में तो कुछ पूछो ही नहीं। ताज़ेरात हिन्द के क़ानून, गाँव में ऐसे कम लोग हैं जिन्हें हिब्ज याद न हों। क़ानून का एक-से-एक माहिर गाँव में बसता है। मुख्तयार, वकील या बैरिस्टर से पहले उनकी ही अक्ल पर गाँव खेलता है; यानी हर आपसी झगड़े के बाद ज़रूरतमन्द मुक़दमेबाज़ को उनका साथ पकड़ना होता है। इन अक्लमन्द रहनुमाओं का सिर्फ़ यही काम नहीं है। यदि गाँव के वातावरण में इन्हें कोई ऐसी गुंजाइश दिखाई देती है कि मुक़दमा हो सकता है, तो ये उस गुंजाइश का ज्ञान उस फ़रीक़ को कराते हैं। इनकी नेकनीयती में भी कोई कमी नहीं होती। ये दूसरे फ़रीक़ को भी दाव बचाने और जवाबी हमला करने का मार्ग सुझाते हैं। दोनों के ही ये हमदर्द हैं, दोनों का भला चाहते हैं। लड़ाई झगड़ा नहीं चाहते, लेकिन इन्साफ़-पसन्द होने के नाते कोई ग़ैरइन्साफ़ी देख कर भी इनका खून खौलने लगता है।

सिरसा गाँव में दर्जे चार तक मदरसा था। इसलिए तालीम की कमी नहीं, हर आदमी आलिम-फ़ाजिल था, मुन्शी था। शहर

की बारीकी किसी-न-किसी रूप में यहाँ के रहने वालों में देखने को मिलती थी, शिक्षा में, बोल चाल में, वस्त्राभूषणों में, खान-पान में, रहन-सहन में। साधारणतया गाँव का चलन मोटा नहीं बारीक था।

: २ :

जिस जमाने की मैं अब बात शुरू करने लगा हूँ उस समय राजा दिलेराम के सम्बन्धी खत्री लोग भी गाँव से कूच कर चुके थे। ये लोग क़स्बे के लोगों से अधिक आराम पसन्द, इज्जतदार, साहुकार और रियासतदार हो गये थे। इनका जीवन-स्तर गाँव वालों से काफ़ी ऊपर उठ चुका था। इन लोगों में तालीम थी, और व्यापारी माद्दा भी। शहर तरक्की कर रहे थे। गाँव की जायदादों की अपेक्षा शहरी जायदादों की कीमतें बढ़ने लगी थीं। समय की प्रगति से पीछे ये लोग नहीं रहे। गाँव की जायदादें उनकी रियासतें बन गईं और उनका लगान उघाने का काम कारिन्दों के सुपुर्द कर दिया गया।

क़स्बे में खत्री लोगों का प्रधान व्यवसाय साहुकारा था। सब लेन-देन ज़बान पर चलता था। यानी पुश्त-दर-पुश्त तक कर्ज़ा यों ही चलता जाता था। बाप मरते समय अपने बेटे से कह जाता था कि कितना उसे किस से लेना है और कितना उसे किस को देना है। बस यही दस्तावेज़ थी, ये ही अदालती काग़ज़ात।

परन्तु यह ज़माना खत्री लोगों के शहरों में बसते ही बदलना आरम्भ हो गया। शहरों में बसने के बाद खत्रियों का सम्बन्ध गाँव वालों से ढीला होना आरम्भ हुआ तो दस्तावेज़ों का सम्बन्ध कड़ा करना पड़ा। सब ज़बानी कर्ज़ों के काग़ज़ात दस्तावेज़ों में बदल दिये गये। जो ईमानदार लोग थे उन्होंने अपनी ईमानदारी की ठनक में स्टाम्प लिख दिये और जिनके मनों में, साहुकारों की भाषा में, बदी आई वे कुछ आनाकानी

करके उनके शिकंजे से भाग निकले।

जिस परिवार की मैं बात लेकर आपके सामने आ रहा हूँ उसमें ईमानदारी की ठनक थी, इसीलिए उसके पुर्खों ने चार सौ रुपये के सूद-दर-सूद से बने ढाई हज़ार रुपये के कर्जे पर इस तरह हस्ताक्षर कर दिये मानो किसी मूर्ख ईमानदार ने जान-बूझ कर ज़हर का प्याला अपने तथा अपने परिवार के हलक़ में उडेल लिया।

इस परिवार को सिरसे में लाकर आबाद करने वाले चौधरी आभाराम थे। उनके पुरखा अपनी सिरसे की जायदाद छोड़ कर कभी दो-चार पीढ़ी पहिले गंगा पार किसी गाँव में चले गये थे। सिरसे में उनके हिस्से की ज़मीन पर कुछ पड़ोसियों में झगड़ा हुआ और उनमें से एक फ़रीक़ ने चौधरी आभाराम को अपना फैसला करने के लिए बुला लिया। चौधरी आभाराम सिरसे में बसने की नीयत से न आकर, उनका फैसला करने की नीयत से आये थे। परन्तु यहाँ आने पर दूसरे फ़रीक़ की बातों से क्रोधित होकर यहीं बस गये।

दूसरे फ़रीक़ ने उनके आत्माभिमान को यह कहकर ठेस पहुँचाई कि उनके झगड़े के बीच में आभाराम का क्या मतलब ? मतलब आख़िर चौधरी आभाराम का नहीं था तो और किसका था ? ज़मीन उनकी थी। वह छोड़ गये थे, यह दूसरी बात थी, परन्तु पारिवारिक अधिकार तो उस पर उन्हीं का था। उनके पुर्खाओं ने किसी दिन उस बंजड़ ज़मीन को तोड़ कर ज़रख़ेज़ बनाया था, इस योग्य बनाया था कि उस पर जिंस पैदा हो सके। आज यह झगड़ा उस जिंस के लिये ही तो था और जिस पर उनका क़ानूनी अधिकार था।

चौधरी आभाराम ने इतने दिन बाद गंगा-पार से इधर लौट कर देखा तो गाँव की ज़मीन का मूल्य बढ़ चुका था। फिर गंगा-पार में उनका परिवार भी इतना बड़ा हो गया था कि उसका वहाँ समाना कठिन जान पड़ने लगा था। सिरसे में उन्हें

इस ज़िद-बहस का बहाना मिल गया। आभाराम दिल खोल कर अपनी जायदाद पर दुबारा अधिकार करने के लिए आमादा हो गये।

गाँव में एक अखाड़ा जुट गया। मुक़दमे की नींव पड़ गई। वे दोनों फ़रीक़ जिनमें उस ज़मीन पर झगड़ा था, इस नई आपत्ति का सामना करने के लिए मिलकर एक हो गये। आभाराम आज उस पट्टी वालों के लिए शत्रु थे, गैर थे, जब कि कभी उनके दादा-परदादा कोई दो व्यक्ति नहीं थे। एक ही रहा होगा। व्यक्तिगत सम्पत्ति के मोह की भावना से दोनों फ़रीक़ पागल थे। वही लोभ आभाराम के दिल में भी झलक रहा था और वही उन दोनों फ़रीक़ों के मन में भी; परन्तु बात आकर आखिर 'हक़' पर रुकी।

'कैसा हक़ ?'

'क़ानूनी हक़, अदालती हक़।'

यानी ज़माना यहाँ तक बदला कि एक पट्टी में भी आपसी बंटवारा अपने आप कर लेना सम्भव न रहा। क़स्बे के चरित्र पर रामायण का प्रभाव काम न करके, महाभारत का प्रभाव काम कर रहा था। मिल कर तरक्की करने की बात की ओर किसी का ध्यान न जाकर एक दूसरे के हिस्से में से काट-छाँट करने की आदत बन गयी थी, और इसीलिए गाँव का जो व्यक्ति इस कार्य में अधिक निपुण था, वही गाँव का चौधरी कहलाता था।

चौधर ज़माने के तरीक़े निकाले हुए थे अक्लमन्द लोगों ने। चौधरी आभाराम भी किसी से कम अक्ल वाले इन्सान नहीं थे। भंग छानते थे और झूमकर चलते थे। गाँव के बीचों-बीच। सब की सुनना और अपने मन की करना उनका उसूल था। उन्होंने गाँव में आते ही गाँव के आदमियों को परखा और उन्हीं लोगों को साथ रखा और उन्हीं का भरोसा किया, जिन पर उन्हें विश्वास था। उन्होंने अपने मोहरे स्वयं

गढ़ कर तैयार किये; दूसरों के गढ़े हुए मोहरों पर पर चालें नहीं चलीं ।

चौधरी आभाराम के पाँच हट्टे-कट्टे बेटे थे, एक से एक मज़बूत और लाठी का धनी। ऐसे छबीले जवान थे कि जिनकी लाठी का मारा पानी न माँगे । एक ही लाठी में किरया-करम हो ।

उन्हें भी अब आभाराम जी ने गंगा-पार से सिरसे बुलाया और फिर गाँव के एक किनारे पर अपना छप्पर डाल कर एक कच्चा कोठा बना लिया । पास ही गलिहारे के दूसरे ओर एक अहाता जानवरों के लिए घेर लिया और उसमें अपना सौ गायों का दल लाकर खोल दिया । यह दल उनके पाँचों बेटे गंगा-पार से आते समय रास्ते में मिलने वाले मवेशियों को इकट्ठा करके अपनी लाठियों के दम पर ही सिरसे में लाये थे । उस समय उनकी लाठियों में क़ानून बोलता था, राम झाँकता था ।

क़स्बे पर रौब पड़ा इस ठाट-बाट का । यहाँ के साहूकारों पर भी रौब पड़ा । बाज़ार के बनिये-बाटुओं पर भी रौब पड़ा, और क़स्बे के कमीन तो इस ठाट-बाट को देख कर चकाचौंध रह गये ।

जब चौधरी आभाराम की सौ गायें सुबह को जंगल में चुगने के लिए निकलती थीं और उनके पीछे-पीछे आभाराम का लजीला जवान बेटा समरसिंह निकलता था तो गाँव भर की नजरें उस पर फैल जाती थीं । अपने ढंग का अनोखा ही जवान था समरसिंह भी । गाँव में पहलवानी का डंका बजा दिया उसने । अपने ज़माने का, आस-पास के देहात में, वह अकेला ही जवान था । रौब जम गया उसका अपने पास बैठने-उठने वाले लोगों पर । लोग दाद देने लगे उसकी जीदारी की । वह उस्ताद बन गया गाँव के अखाड़े का ।

इस तरह गाँव में अपनी ताक़त से दखल लेकर चौधरी

आभाराम ने कलक्टर के दरबार में अर्ज़ी पेश की, और सरकार से इंसाफ माँगा। अंग्रेज़ी तहत का यह प्रारम्भिक काल था। पटवारियों के रजिस्टर बने नहीं थे। कहीं कोई इन्दराज नहीं मिलता था। चौधरी आभाराम को अर्जी देने के पश्चात अपने बयान की पुष्टि में प्रमाण देने की आवश्यकता हुई। सरकार ने उनसे प्रमाण माँगा तो प्रमाण में उन्होंने अपने भाट का बहीखाता पेश किया। इसी बहीखाते के आधार पर चौधरी आभाराम मुक़दमा जीते। इस बड़े काम को कन्धों पर उठाने से पहिले चौधरी आभाराम ने अपने कुछ साथी बना लिये थे। जहाँ पहलवानी अखाड़े में कुछ शागिर्द पैदा हो गये थे, वहाँ दूसरी ओर एक खत्री साहूकार से भी उनकी मेल-मुहब्बत हो गई थी और उसने अपना याराना निभाने का सबूत भी पेश किया। चौधरी आभाराम के मुक़दमे में चार सौ रुपया उस ज़माने में खर्च हुआ और यह सब-का-सब रुपया इस साहूकार दोस्त ने ही ख़र्च किया। कोई दस्तावेज़ नहीं लिखी गई, कभी ज़बान पर भी रुपये का नाम नहीं आया।

दोनों मित्रों का देहावसान हो गया।

आय पर। वह छोटे को प्यार और बड़े की इज्ज़त करता था।

इज्ज़त इस घर में कमाल की थी। चतुरसिंह धर्मावतार था। आर्यसमाजी पूजा-पाठी, धर्म का ठेकेदार। जहाँ भी जाता था, उसका हवन-कुण्ड, उसकी संस्कार-विधि, उसकी सामग्री, समिधाएँ, अग्नि, प्रज्वलित करने को कपूर, मूंज का आसन, पूजा करते समय बाँधने का तौलिया, चन्दन घिसने का हुर्सा, आँचवन के पात्र, सब साथ चलते थे। कहीं भी वह मेहमानदारी में जाते थे, तो उनका यह साज-बाज साथ जाता था और जिसके यहाँ ठहर कर एक बार वह यज्ञ कर आते थे, वह तो जीवन भर के लिए उनका भक्त हो जाता था, उनका आदर करने लगता था। नत मस्तक हो जाता था उनके सामने।

चतुरसिंह ने बिरादरी में नाम किया। सभा सोसाइटियों में उन्हें बुलाया जाने लगा। गाँव-गाँव पंचायतें हुई और अधिक लम्बा क़दम उठाने से पहले दसे और बीसे तगों को एक बना देने का प्रश्न सामने आया। स्वामी श्रद्धानन्द वाला शुद्धि का डंका तो पीछे बजा पहले यही अन्दरूनी पर्दा फाड़ डालने की बात चली।

चतुरसिंह इस विचारधारा के प्रवाह से अपने को न बचा सके। वह बह निकले इस सुधारवादी धारा में। समय की विचारधारा से आगे बढ़ी हुई यह विचारधारा थी। उसके साथ चलना और उसके भावी प्रभाव को समझना सरल काम न था। हाँ उसका विरोध करना उस समय सरल और स्वार्थपूर्ण था।

बिरादरी के तरक्कीपसंद लोग एक तरफ़ और पुरानी लीक पर आँख मींचकर चलने वाले लोग दूसरी तरफ़ हो गये।

चतुरसिंह आँखें मींचकर पुरानी लकीर पर चलने वाला इन्सान नहीं था। वह तरक्कीपसन्द इन्सान था। बिरादरी की दसे-बीसे वाली, एक दूसरे को छोटा समझने वाली विचारधारा का वह अन्त कर देना चाहता था। इसी प्रकार के चन्द बिरादरी के और भी व्यक्ति थे। ये पढ़े-लिखे लोग थे।

बिरादरी के पढ़े-लिखे लोगों ने मिलकर बिरादरी की सभाएँ

बनाई और इस प्रकार तरक्कीपसंद विचारों को आम बिरादरी के लोगों तक पहुँचाया। जिला सहारनपुर, मुज़फ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, बिजनौर, इत्यादि जिलों में तरक्कीपसंद सभाओं की धूम मची। चतुरसिंह की बिरादरी विशेष रूप से इन्हीं जिलों में आबाद है।

चतुरसिंह बिरादरी की सभा के सम्मानित अतिथि बन गये। बिरादरी के पढ़े-लिखे लोगों में पारस्परिक सम्पर्क स्थपित हुए। चतुरसिंह का बिरादरी में नाम हुआ, और उसके आस-पास के पूरे परिवार तथा सम्बन्धियों की स्थिति पर उसका प्रभाव पड़ा। चतुरसिंह के इस उभार को भी कुछ लोगों ने भारी मन से तथा कुछ ने अपने को सँभाल कर देखा।

चतुरसिंह जिस-जिस गाँव में भी अपना प्रगतिशील संदेश लेकर जाते थे वहाँ उनका मन-मोहक आर्यसमाजी, घोर कट्टर रूढ़िवादी स्वरूप भी साथ चलता था। सभा जुट जाती थी, परन्तु चतुरसिंह संध्या-हवन इत्यादि की क्रियाओं को पूर्ण करके ही वहाँ पहुँचते थे। बिरादरी के लोगों को जब उनकी बाट देखते दस-पाँच मिनट हो जाते थे, तो वह मस्तक पर चन्दन दिये बड़ी फुर्ती के साथ सभा-भवन में प्रवेश करते थे। उनका करतल-ध्वनि से स्वागत होता था। नौजवान लोग उनकी विचारधारा का समर्थन करते थे।

मिडिल स्कूल के हेडमास्टर थे, चार सौ विद्यार्थी और बीस टीचर उनके नीचे काम करते थे। मेरठ आर्य-समाज के प्रधान थे। बिरादरी में भी एकाकी स्थान बना लिया मुंशी चतुरसिंह ने।

उनके बच्चे भी तालीम पा रहे थे।

छोटा भाई भी अच्छी-खासी आमदनी कर रहा था।

ये चतुरसिंह की बुलन्दी के दिन थे। पूरा परिवार उनकी मुट्ठी में था। उसका पूरा रस निचोड़ कर वह तीनों भाइयों की तीन प्यालियाँ भी भर सकते थे और केवल अपनी ही प्याली

में भी सारा रस उँडेल सकते थे। उनकी ईमानदारी में दोनों भाइयों को कोई शक नहीं था। फरमाबरदारी में यदि कहा जाय कि भरत और लक्ष्मण के समान भाई उन्हें मिले थे, तो कुछ अनुचित न होगा।

चतुर्रसिंह को भी अभिमान था अपने भाइयों पर। एक, जो गाँव में रहता था, वह वहाँ परिवार की इज्ज़त को बना कर रखता था। चतुर्रसिंह की इज्ज़त में क्या मजाल जो कोई एक शब्द भी कह जाय। एक मस्ताना जीव था वह भी। परिवार कर्ज़ से दबा था, उसकी हड्डी-पसलियाँ कर्ज़े के बोझे में दबकर चूर-चूर हो जाना चाहती थीं, इसका ख़याल करने की उसे ज़रूरत नहीं थी। बड़ा भाई था उसके सिर पर इन अहम बातों पर विचार करने के लिए। वह स्वयं एक रंगीन आदमी था। हल्का मोटा इश्क भी वह लड़ा लेता था इधर-उधर। चौधरी था वह।

कुछ पहलवान क़िस्म के आदमी भी जी-जान से उसका साथ देते थे। कुछ तगा मुसलमान, जिनकी माली हालत बड़ी नाज़ुक थी। एक घर अहीरों का भी था, जो चौधरी का साथ देता था। इस तरह डंडे और गंडों की ताक़त चौधरी के पास काफ़ी थी। बाहर के मामले सुलझाने के लिए उसके दो पढ़े-लिखे भाई थे। हर महीने नक़द रुपया आता था, खेती भी खूब हो रही थी। मौज थी हर प्रकार की घर में। फिर भला क्या डर था शक्तिसिंह को? वह पाव भर का आदमी गाँव भर पर भारी पड़ता था। आस-पास के सभी चोर उसका दबदबा मानते थे। यदि कोई गाँव का दुश्मन उसका कोई मवेशी खुलवादे तो चौथे ही दिन मवेशी अपने थान पर लौट आता था, परन्तु क्या मजाल जो चौधरी शक्तिसिंह के खुलवाये हुए मवेशी का कोई पता लगा सके। उनका खुलवाया हुआ मवेशी पाताल लोक को चला जाता था।

शक्तिसिंह का मकान गाँव के दक्खिन-पूर्व में था। वहाँ से

उनका कुआँ, जिसके आस-पास उनकी ज़मीन है, लगभग दो फ़र्लांग है। बीच में कुछ फ़कीरों की झोंपड़ियाँ पड़ी हैं, जिनके बीच में से होकर कुएँ पर जाना होता है। ये सभी लोग चौधरी शक्तिसिंह को उनके मसखरेपन, दरियादिली और बहादुरी के कारण प्यार करते थे। लाख कोई इन्हें फुसलाये या बरग़लाये परन्तु इनका शक्तिसिंह से अटूट स्नेह था। गाँव के अधिकांश लोग उन्हें प्यार करते थे और वह भी सभी के दुःख-दर्द में शामिल होते थे।

लेकिन बिरादरी की कुछ पुरानी नाकें, यह भूलकर कि वह भी अपना ही एक भाई है, जो उठ रहा है, तुम्हारी संख्या बढ़ा कर तुम्हें बहुमत में ला रहा है, फिर उससे हसद कैसी, जलन कैसी—चौधरी शक्तिसिंह की शक्ल देख कर जरा और भी तिरछी हो जाती थीं। उनके मस्तकों पर सिलवटें पड़ जाती थीं। शक्तिसिंह उन्हें देख कर मुस्कराते थे और उनके सीने पर नमक सा मलकर छोड़ जाते थे।

क़स्बे की वे नाकें अवसर की ताक में लगी थीं कि कब कोई अवसर मिले और कब वे शक्तिसिंह को नीचा दिखायें। उनके सौभाग्य से वह अवसर भी आ गया।

चतुरसिंह बिरादरी के दसे-बीसे की समस्या को सुलझाने में बिरादरी के पढ़े-लिखे प्रगतिशील विचारों वाले लोगों का खुलकर साथ दे रहे थे। हुक्का वह पीते ही नहीं थे। परन्तु एक क़स्बे की सभा में बिरादरी के बीच उन्होंने दस्से तगों के साथ हुक्के को मुँह से लगाया और गुड़गुड़ाकर एक कश खींचा।

यह बात छिपी हुई न रह सकी। बात हवा की लहरों पर तैरती हुई आनन-फ़ानन में सिरसे के अन्दर जा घुसी। लोगों में कानाफूसी शुरू हुई। छोटे लोगों में उसे समझने और सही या ग़लत कहने की ताब नहीं थी। परन्तु उन बड़ी-बड़ी नाकों ने इस अवसर को हाथ से खो देना अपनी नादानी समझा; और नादानी वह कर नहीं सकते थे क्योंकि वे अक्लमन्द और दाना इन्सान थे।

अपनी अक्ल से ही तो वे इस बुलन्दी पर पहुँचे थे। साधारण दस-दस पाँच-पाँच की नौकरियो से रियासतें बना ली थीं। क्या यह कुछ कम अक्ल का चमत्कार था ?

"दस्से तगों को बिरादरी में नहीं मिलाया जा सकता। आज यदि दस्सों को मिला लिया तो कल आर्यसमाज वाले गाड़ों (तगा मुसलमानों) को भी अपने में मिला कर रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहेंगे।" बड़ी-बड़ी नाकों के लिए यह बात असम्भव थी। भगवान् ने ऊँचे-नीचे घर में जन्म दिया है। भगवान के नियमों का उल्लंघन करने वाला इन्सान बिरादरी में रहने के क़ाबिल नहीं है। फ़तवा दे दिया गया कि चतुरसिंह के परिवार का हुक्का-पानी बंद, अर्थात् न कोई उन्हें अपना हुक्का पिलाए और न ही कोई अपने बर्तन में उन्हें पानी दे।

चतुरसिंह जो कुछ भी करते थे उसका असर उनके पूरे परिवार पर पड़ता था। अग्निदत्त क्योंकि शहर में रहता था, इसलिए उसे कम परेशानी हुई, परन्तु इस प्रगतिशीलता का शक्तिसिंह पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। गाँव में शक्तिसिंह का हुक्का-पानी बंद हो गया।

चतुरसिंह तो हुक्का पीता ही नहीं था। शक्तिसिंह हुक्का पीता था। इसलिए इस घटना का सबसे अधिक प्रभाव उसी पर पड़ा। परन्तु शक्तिसिंह ने ऐसा करने वालों को मूर्ख समझ-कर और अपने बड़े भाई के काम में विश्वास करके, किसी की कोई चिन्ता नहीं की। वह मस्त ही रहा अपनी मस्ती में।

शक्तिसिंह अपना हुक्का भर कर अपने चबूतरे की फ़सील पर बैठता और शान से हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ रास्ता चलने वालों पर धुआँ फेंकता था। न उसके सीने में ख़म था, न दिमाग़ में, और न विचारों में ही। उसका इरादा मज़बूत था। वह अपने पितातुल्य बड़े भाई के काम से पैदा होने वाले गाँव के असर का सीना खोल कर मुक़ाबिला कर रहा था और एक

दिन सब ने देखा कि वह गाँव भर से मज़बूत निकला।

उन्हीं दिनों दूर-दूर तक भारत के नगरों और क़स्बों में ताऊन (प्लेग) का प्रकोप हुआ। सिरसा भी इस प्रकोप का शिकार हो गया। पैसे वाले लोग अपनी जान बचाकर क़स्बे से बाहर जा बसे, परन्तु बेचारे ग़रीब लोग कहाँ जा सकते थे?

चौधरी शक्तिसिंह अकेला ही था अपने मकान में। वह भागा नहीं गाँव से। गाँव के भाग्य के साथ उसने अपने भाग्य को नत्थी कर दिया। क़स्बे में ज़ोर की मरी फैली।

मालूम देता था कि तमाम क़स्बा एक ख़रबूज़ों की फ़ालेज़ है और उसमें से रोज़ सुबह दस-पाँच पक कर एक ओर ज़मीन पर लुढ़क जाते हैं। क़स्बे की वे नाकें अपने प्राण बचाकर गाँव से बिदा हो चुकी थीं। लाशें क़स्बे में सड़ने लगीं। उन्हें मुर्दाघाट तक पहुँचाने तक का भी कोई प्रबन्ध नहीं था। ईंधन नहीं था उनकी अंतेष्ठिक क्रिया करने के लिए।

शक्तिसिंह ने क़स्बे की यह दशा देखी तो उससे रहा नहीं गया। उसने एक बैल-ताँगा मुर्दा लाशों को मुर्दाघाट तक ले जाने के लिए जुड़वाया और अपने बाग के पास से बबूल के जंगल को कटवाकर उन लावारिस शवों को जलाने का प्रबन्ध किया।

क़स्बे के लोगों ने शक्तिसिंह को पहिचाना। बिरादरी की बंदिशें आप-से-आप छिन्न-भिन्न हो गईं। शक्तिसिंह का फिर वही दबदबा था। उसके चबूतरे पर बैठकर उसके हुक्के को बिरादरी का हर आदमी पीता था और सभी लोग उसके पास बैठकर पहले की तरह उसकी चिलमें भरते थे।

: ५ :

अग्निदत्त रेलवे में मुलाज़िम हो गया, मानो परिवार और सब रिश्तेदारों के लिए रेल एक मुफ़्त की सवारी मिल गई। रेल की सब चीज़ें अग्निदत्त की अपनी चीज़ें थीं और वह उनमें से अपनी आवश्यकता के अनुसार इस्तेमाल कर सकता था, अपने घर भेज सकता था और रिश्तेदारों को भी उनका लाभ पहुँचा सकता था।

साहब को अग्निदत्त का काम पसंद आया। वह फुर्तीला नौजवान था। हर काम को चुटखियों में करता था। साहब ने काम की ओर से बिल्कुल आँखें बंद कर लीं और उसका काम अब केवल अग्निदत्त के तैयार किये काग़ज़ों पर हस्ताक्षर भर करना होता था।

अग्निदत्त का इंचार्ज मिलिट्री का रिटायर्ड अंग्रेज़ था। उसके सामने क़ायदा एक बड़ी चीज़ थी। किसी भी बात को उसके पास तक बाबू के द्वारा ही आना चाहिए। वह बाबू के अतिरिक्त अन्य किसी से बात करना पसन्द नहीं करता था। अपना रौब-दौब क़ायम रखने के लिए वह आम आदमियों से कैसे मिले ?

इस समय अग्निदत्त ही साहब था। उसका हुक्म चलने लगा। उसके दफ्तर के सामने चपरासी बैठता था। उसकी अर्दली के लिए स्टाफ़ के आदमी खड़े रहते थे। उसकी इजाज़त के बिना कोई आदमी, यदि पाँच मिनट भी लेट हुआ, तो काम पर नहीं जा सकता था। हर आदमी की बात को साहब तक पहुँचने का अग्निदत्त ही एक रास्ता था, और वहाँ वह बात उस

आदमी की न पहुँच कर, अग्निदत्त की ही बात पहुँचती थी। इस राज़ से भी पूरा अमला भिज्ञ था।

देखते-ही-देखते अग्निदत्त भी एक भारी आदमी बन गया। यह ठीक था कि स्टाफ़ में उससे अधिक वेतन पाने वाले मुलाज़िम भी थे; परन्तु साहब की कुंजी सिर्फ़ उसी के पास थी। उस ताले को खोलने का, जिसके अन्दर हक़ूमत की ताक़त छिपी हुई थी, केवल अग्निदत्त को ही अधिकार था।

अग्निदत्त की इस स्थिति का ज्ञान जब तक अग्निदत्त तक ही सीमित रहा तब तक अग्निदत्त की आय चालीस रुपया माहवार से आगे न बढ़ सकी। यह उसकी दिल्ली की नौकरी का ज़माना था, यह उसके जीवन के उभार का ज़माना था, यह उसके विकास का समय था।

घर उसने छोड़ दिया था। परदेस की नौकरी थी, परन्तु थी दबदबे की। दो-सौ आदमियों का स्टाफ़ उसके नीचे काम करता था। वह हैड क्लर्क था रेल के कैरिज विभाग का। साहब उसका था, पूरा अमला उसका गुलाम था और सब नौकर उसके अपने नौकर थे। किसी की क्या मजाल जो उसके सामने आँख उठाकर देख ले।

बाबू अग्निदत्त आजकल जिधर से भी निकल जाता, कुलियों, फ़िटरों, क्लीनरों, मेहतरों, कारपेन्टरों, लोहारों, नम्बर-टेकरों के सलाम झुकते चले जाते थे। ट्रेन-एक्ज़ामिनर्स भी जो सामने पड़ जाते थे उन्हें हाथ जोड़कर महाशय जी कहकर नमस्कार करते थे। अग्निदत्त की आत्मा प्रसन्न हो जाती थी।

अग्निदत्त का एक लड़का था और वह भी चतुरसिंह के पास मेरठ में रहता था। इस लड़के का जन्म भी चतुरसिंह के ही पास हुआ था। मेरठ में अग्निदत्त उस समय तार का काम सीख रहा था। जब जन्म हुआ था तो बच्चे की माता……।

अब जाने दीजिए उन क़िस्सों को, वे बहुत पुराने हैं। परन्तु उन पुराने क़िस्सों में कितनी बड़ी तबाही का राज़ छुपा था,

काश अग्निदत्त उस समय समझने के योग्य होता, तो एक बड़ा भारी परिवार तबाही से बच जाता और यदि परिवार भी न बचता तो कम-से-कम वह तो बच ही जाता। अपने आप को किसी आने वाले तूफ़ान का धक्का सहने से बचा लेता। यह भी एक काम होता।

अभी कुछ ही दिन बीते, अग्निदत्त ने एक आदमी की कुलियों में भर्ती किया था। नाम उसका अलबेल था और वह था भी एक अलबेला जवान ही। मस्ती में झूमकर चलने वाला हट्टा-कट्टा पहलवान था वह।

बाबू से याराना हो गया उसका। याराना इस मायनें में कि उसने एक दिन संध्या-समय बाबू से आकर अकेले में कहा, "बाबूजी, ज़िन्दगी के ये दिन क्या इन्हीं चालीस रपूलियों में ही काट दोगे ? कहीं तनखाहों में भी भला किसी का पूरा हुआ है। अगर ऊपर की आमदनी न हो तो जानते हो ये सब अफ़सर भूखों मरने लगें, भूखों ?"

अग्निदत्त की दृष्टि भी उस ओर जानी प्रारम्भ हो गई थी क्योंकि उसके मस्तिष्क में अपने परिवार का कर्ज़ उतारने की बात चौबीसों घंटे चक्कर लगाती रहती थी। कभी-कभी वह सोचता था कि इस चालीस रुपये की नौकरी से तो कर्ज का सूद भी पूरा नहीं होगा। भला फिर मूल कैसे दिया जायगा ?

अपने व्यवहार में अग्निदत्त काफ़ी सतर्क था। सोच-समझ कर बातें करता था। उसने अलबेल के मुँह की ओर देखकर कहा, "भाई अलबेल ! मैं कोई भी ख़तरे का काम करना पसंद नहीं करता। रूखी-सूखी जो भाग्य में लिखी है खानी मुझे मंजूर है, परन्तु बदनामी मंजूर नहीं।" इतना कह कर भी उसने आशा भरी दृष्टि से अलबेल की तरफ़ देखा और चाहा कि वह कोई ऐसा मार्ग सुझाये कि जिसमें ख़तरा भी न हो और आय भी बढ़ जाय।

"बदनामी !" अलबेल हँस पड़ा अग्निदत्त की यह बात

सुनकर। "बदनामी तो बाबूजी, अब है कि हाथ में आमदनी का ज़रिया भी भगवान् ने दिया और फिर भी कोई लाभ नहीं उठा सके उसका। सच जानिए, कई बाबू लोग हँसते हैं आपकी नादानी पर। कहते हैं 'क्या देहाती मूर्ख के हाथों में यह अवसर आया है कि न कुछ आप ही लाभ उठाता है और न अन्य किसी को ही लाभ उठाने देता है।' "

यह कह कर अलबेल ने एक गहरी चोट कर दी अग्निदत्त के दिल और दिमाग़ पर। वह अन्दर-ही-अन्दर तिलमिला उठा। उसे अपनी बुद्धि और अकर्मण्यता पर क्षोभ आया। उस ने अलबेल के अन्दर एक बुद्धिमान व्यक्ति की प्रतिमूर्ति देखी और विश्वास किया कि वह उसके लिए लाभ का व्यक्ति सिद्ध होगा।

आज अलबेल बहुत रात गये तक बाबू जी के पास बैठा रहा। बहुत खुल-खुल कर बातें हुईं। बातों के दौरान में कई बार अलबेल ने छाती ठोंकी और बाबू जी मुस्कराये। अलबेल पर उन्हें विश्वास हो चला। आमदनी बढ़ाना वह चाहते ही थे, और कौन नहीं चाहता ? क्योंकि दुनिया का आनन्द लूटने की यही तो एक चीज़ है। उन्होंने अलबेल को अपने नाम का उपयोग करने की खुली छुट्टी दे दी।

छुट्टी देते हुए उनका दिल काँपा, परन्तु उन्हें अपने साहब के अपने प्रति विश्वास पर भरोसा था और जानते थे कि उस शतरंज के मोहरे को वह जिस दिशा में भी खिसकाना चाहेंगे, खिसका सकेंगे। फिर क्या था ? अलबेल ने दूसरे ही दिन चार सौदे बनाये।

नई भर्ती हो रही थी। भर्ती का पूरा काम अग्निदत्त के हाथों में रहता था। जिन-जिन के नाम बाबू साहब के सामने पेश कर देता था, साहब उन्हे भर्ती कर लेता था। सौदा तीस-तीस रुपये में बना और अलबेल ने आज रात के झुटपटे में अस्सी रुपये के नोट लाकर अग्निदत्त के हाथों में रख दिये।

एक दिन में दो महीने का वेतन, वह दंग रह गए अलबेल की योजना पर। उनके काँपते हुए दिल ने कहा, "अलबेल वाकई एक योग्य आदमी है।"

अपना हिस्सा अलबेल ने चालीस रुपया अलग बचा लिया था। परन्तु अग्निदत्त को इसका पता नहीं था। उसने अल-बेल को दस रुपये दिये, इनाम के बतौर।

आज जब अग्निदत्त ने ये रुपये जेब में रखे तो उसके हाथ काँप रहे थे। दिल को कोई दबोच रहा था। उसे लग रहा था कि वह कुछ ग़लत काम कर रहा है। उसे वह सब कुछ नहीं करना चाहिए।

परन्तु तुरन्त ही उसे अपने परिवार के कर्ज़ का ध्यान आ गया और उस भयानक भूत से मुक्ति पाने तथा अपने परिवार का पुनरुद्धार करने का उसके पास इसके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं था कि वह अपनी आमदनी बढ़ाये।

वह अपने परिवार के इर्द-गिर्द पड़ी कर्ज़ की ज़ंजीर को जल्द-से-जल्द काट डालना चाहता था।

धीरे-धीरे यह महसूस करने का माद्दा अपने आप न जाने कहाँ चला गया। अलबेल रुपया लाता था और वह इस तरह से ले लेते थे, मानों वह उनका हक़ था। वह भी उनकी अपनी ही मेहनत का पैसा था। वह काम कराते थे साहब से तो क्या वह नौकर थे किसी के बाप के, जो उसका काम मुफ्त करायें? साहब से काम कराना बाबू अग्निदत्त का ही दम था। अपने दम और बूते का वह इनाम ले रहे थे; कोई रिश्वत नहीं ले रहे थे किसी से।

और फिर जब काम कराने वाला प्रसन्नतापूर्वक दे जाता था तो वह भला उसमें वह क्या करें? उसके ठीक विपरीत यदि वह किसी की भेजी हुई वस्तु अस्वीकार कर दे तो वह परेशान होता था, हताश होता था, दुखी होता था और यह समझता था कि बाबू उस पर नाराज हो गये।

खामखा किसी को दुखी करना बाबू अग्निदत्त को पसन्द नहीं। वह हरदिल-अज़ीज बनकर रहना चाहते थे। चार पैसे किसी से लेते थे तो उसका दिल दुखाकर नहीं, उसका काम करके लेते थे। इसे वह बुरा नहीं समझते।

अग्निदत्त पर भी अपने बड़े भाई चतुरसिंह का असर था। वह भी आर्य-समाजी थे। हुक्का वह नहीं पीते।

पान खाने का शौक कुछ अवश्य था परन्तु वह शायद ही उन्हें कभी अपने पैसे का खरीद कर खाना होता था। उन्हें सिग्रेट पिलाने वाले लोगों की कभी मी नहीं, क्योंकि हैड-क्लर्क होने के नाते पूरे डिपार्टमेन्ट के कमचारियों का उनसे काम पड़ता था।

अग्निदत्त की प्रसन्नता से उन्हें कोई लाभ न सही परन्तु अप्रसन्नता से उन्हें हानि अवश्य हो सकती थी। जो सीधी-सादी छोटी अक्ल के लोग थे वे भय खाते थे बाबू से, जो मूर्ख और नाकारा थे, परन्तु किसी तरह भर्ती हो गये ये, वे बाबू को खुश रखना अपनी नौकरी की सलामती के लिए आवश्यक समझते थे और जलने तथा मौका पाकर डंक मारने वालों की भी कमी नहीं थी डिपार्टमेन्ट में। परन्तु उन्हें अग्निदत्त भी खूब ताड़ता था। और उनके मद-मर्दन करने की पूरी शक्ति वह अपने में रखता था। वे लोग अग्निदत्त को विषैले सर्प की तरह देखते हैं।

अग्निदत्त की आय बढ़ रही थी। खर्च कुछ था नहीं। एक लड़का था, सो वह भी बड़े भाई साहब के पास रहता था। अग्निदत्त और उसकी पत्नी दिल्ली में रहते थे। चतुरसिंह पर इन दोनों का पूरा-पूरा भरोसा था और दोनों ही खानदान की इज्ज़त को अपनी इज्ज़त समझते थे।

अब उसकी कमाई शुरू हुई। आमदनी के ज़रिये बनाने की बात थी। पहला आमदनी का ज़रिया नौकरी बना और फिर उसकी शाखा-दर-शाखाएँ फटनी शुरू हुई। अलबेल वाली शाखा का काम अच्छा खासा चालू हो गया; अच्छी खासी आय होने लगी।

दूसरा ज़रिया बना रेल के दफ्तर में आने वाले सामान में से बेचकर पैसा पैदा करना या उसे अपनी ज़िन्दगी की आवश्यकताओं के लिए इस्तेमाल करना। इन दो बातों में से अग्निदत्त ने पहली बात को न अपनाकर अपने को केवल दूसरी बात तक ही सीमित रखा। रेल की चीज़ों को अपने रिश्तेदारों को जी खोलकर बाँटा। साहब से खुशी-खुशी पूछ कर बाँटा, और अपने हुक्म से भी बाँटा।

अग्निदत्त की स्त्री रेलवे के कपड़ों को काट-पीट कर इस्तेमाल में लाई। रेलवे की अँगीठी पर रेलवे का कोयला जला कर खाना बनाया। रेल के पहियों में तेल के अन्दर भिगो कर लगने वाली सूत की पिंदियों को उधेड़ कर उस सूत से कपड़ा बुनवाया और वह स्वयं पहनने के अतिरिक्त चतुरसिंह के पास भी भेजा। रेल की वर्दियों में से काट छाँट कर इस्तेमाल के कपड़े बनवाये।

इस सब की सराहना हुई। दफ़्तर के मिट्टी के तेल के कनस्तर तो चतुरसिंह की ससुराल तक पहुँचे।

अग्निदत्त की स्त्री ने भी अपने भाई तथा बहिनों की, जैसा कुछ वह कर सकती थी, मदद करने का प्रयत्न किया। वह किसी के काम से पीछे नहीं हटती। एक दया-वृत्ति थी उसके दिल में और सचमुच ही वह बड़ी उदार थी। अपने जीवन की ज़रूरी आवश्यकताओं की पूर्ति की सीमा से आगे बढ़कर ऐल-फैल में कभी एक पैसा खर्च करना उसने पसंद नहीं किया। उसके जीवन में सादगी थी, सादगी यहाँ तक कि कभी घी-चुपड़ी रोटी भी वह नहीं खाती।

अग्निदत्त दिल्ली में मुग़लसराय के अन्दर रेलवे क्वार्टरों में एक छोटे मकान में रहता था। ज़रा सी कोठरी, सामने दो खाट का चौक, बस यही था पूरा मकान। एक लाइन थी ऐसे क्वार्टरों की। क्वार्टर के बाहर एक पक्का कुआँ था जिसका पानी पीने के काम आता था। एक पीपल का छायादार वृक्ष था।

छुट्टी के दिन वहाँ खटिया डालकर बैठा जाता था।

अग्निदत्त का अब दरबार लगने लगा था। संध्या-समय उसकी खाट क्वार्टर के बाहर छिड़काव हुई ज़मीन पर बिछी मिलती थी और अलबेल उसके इर्द-गिर्द टहलता हुआ।

अग्निदत्त की यह देखते ही तबियत प्रसन्न हो जाती थी। अलबेल उन्हें आर्य-समाजी नमस्कार करता था, क्योंकि वह जानता था कि बाबूजी इस नमस्कार से प्रसन्न होते हैं। वह उन्हें इधर-उधर बातों में 'महाशय जी' शब्द से सम्बोधित करता था। यह शब्द उस समय आर्यसमाजी क्षेत्र में बड़े सम्मान का सूचक माना जाता था। "यह तुमने बहुत अच्छा किया अलबेल! सफ़ाई मुझे बहुत पसंद है। तुमने तो मुहल्ले का रंग ही बदल दिया।" अग्निदत्त सफ़ाई देखकर बोला।

"जी बाबू जी, कल जब मैं यहाँ आया तो देखा कि बड़ी गंदगी है। रात को ही मैंने कलवा भंगी और और जुम्मा सक्के के कान गरम कर दिये। बस यह समझिये कि डूटी लगा दी दोनों की।"

बाबू जी को प्रसन्नता हुई। उनका दबदबा अब पूरे स्टाफ़ पर छाता चला जा रहा था। कुछ बाबू, जो ट्रेन एग्ज़ामिनर्स थे और अग्निदत्त से अधिक तनखा लेने पर भी उस ठाठ से नहीं रह पाते थे, उन्हें जलन होती थी। परन्तु अधिकांश हाँ-में-हाँ मिलाने वाले ही थे। अग्निदत्त का साधारण व्यवहार सब की भलाई का ही होता था। किसी को खामखा सताने की उसकी नीयत कभी नहीं रहती थी। रिश्वत वह लेता अवश्य था, परन्तु उन्हीं लोगों से लेत था जिनका काम करता था और उनसे भी कभी सौदा नहीं करता था। जो कुछ कोई दे देता था उसे ही सब कुछ समझ कर, उसकी श्रद्धा समझ कर, जेब में रख लेता था।

काम अग्निदत्त देने वाले और न देने वाले, सभी का करता था, परन्तु देने वाले का काम ज़रा अधिक दिलचस्पी

से करता था। और देने वाला भी देकर यह समझ लेता था कि बस अब यह बाबू का काम है, वह जाने और काम हो ही जाता था।

क्वार्टर में घुसे तो उनकी पत्नी ने आगे बढ़कर उनका कोट और टोपी सँभाले। पायजामा उतार कर तहमद बाँधा और फिर क्वार्टर के बाहर आकर खाट पर बैठ गये।

दरबार लगना प्रारम्भ हुआ। बाबू के पास तक स्टाफ़ का हर आदमी अपनी पहुँच करना चाहता था। जो हिम्मत वाला आदमी था, वह स्वयं आ जाता था। कुछ कारीगर अपनी कारीगरी का कोई नमूना ही उन्हें पेश कर जाता था, जैसे लोहार, बढ़ई, इत्यादि मेज़ बनाकर, कुर्सी बनाकर, खाट बनाकर, तस्ला बनाकर, खुर्पा बनाकर, गँडासा बनाकर—और फिर ये आवश्यक सामान भी अग्निदत्त के पास आये, जिनकी उसे अब ज़रूरत नहीं थी, और जगह भी नहीं थी यहाँ दिल्ली शहर में उसके पास उन्हें रखने के लिए। उसने यह सामान भी जी खोल कर अपनी सब रिश्तेदारियों में बाँटा और शौहरत हासिल की, अपने कमज़ोर रिश्तेदारों की मदद की।

अग्निदत्त अपने बड़े भाई चतुरसिंह के पीछे आँख मींचकर चलने वाला फ़रमाबरदार छोटा भाई था। भाई की आज्ञा से दिन को रात और रात को दिन कहने की उसने शपथ ली हुई थी। उसने बड़े भाई के अंदर अपने पिता की प्रतिमूर्ति देखी थी और वह कल्पनामय मूर्ति अग्निदत्त अपनी स्त्री को भी दिखलाने में सफल हुआ था।

परिवार की मान-मर्यादा की कसौटी पर चतुरसिंह ने प्रारम्भ से ही अग्निदत्त को घिसा था और यह सोना निमल साबित नहीं हुआ, सोने में चमक थी, दमक थी।

परिवार की जड़ों को सींचने के लिए ही चतुरसिंह और अग्निदत्त परदेस में कमाने के लिए निकले थे और कसम खाकर निकले थे कि परिवार को ऊँचा उठाना है।

अग्निदत्त ने जो कुछ कमाया, बिला हिसाब अपने बड़े भाई चतुरसिंह को, या कर्ज़ में देना प्रारम्भ किया। वेतन जितना चतुरसिंह को मिलता था, उससे कम अग्निदत्त का भी नहीं था; परन्तु ऊपर की आय में आकाश-पाताल का अन्तर था। चतुरसिंह मिडिल स्कूल के हेडमास्टर थे। चौक-चाँदनी पर बच्चों की लाई हुई चौथ का रुपया जब प्रथम बार उन्हें लगभग पैंतीस रुपये मिला तो बाँछें खिल गई उनकी। वह आय उनकी बराबर बढ़ती ही जाती थी। कुछ हेडमास्टर लोग बोर्डिंग में रहने वाले बच्चों के घर से लाये हुए आटे में से ही अपने परिवार का भी काम चलाते थे; परन्तु चतुरसिंह की वृत्ति कभी छोटी चीज़ों की तरफ नहीं जाती थी।

यह ठीक था कि उसका परिवार कर्ज़ से दबा था, और उसका परिवारिक खर्च भी काफ़ी था, परन्तु उसके पास परिवार की आय को सँभालने वाला उसका छोटा भाई था। चतुरसिंह का छोटा भाई, वेतन से ड्योढ़ा रुपया और कभी-कभी उससे भी अधिक उस परिवार की नींव में भर रहा था जिसकी उन्नति और शौहरत का सेहरा चतुरसिंह अपने सिर बाँधता चला जा रहा था।

चतुरसिंह के तीन लड़कियाँ और दो लड़के थे। घर पर रहने वाले बिचले भाई शक्तिसिंह के दो लड़के और एक लड़की थी और अग्निदत्त के सिर्फ एक लड़का था। चतुरसिंह की बड़ी दो लड़कियों की शादी सम्मिलित परिवार की पूँजी से हुई।

किसी के मन में कोई बात नहीं उठी। सिरसे की ज़मीन पर खेती कराने वाले तथा परिवार की इज्ज़त की बागडोर को संभाल कर बैठने वाले शक्तिसिंह के बड़े लड़के रामदयाल की भी शादी सम्मिलित परिवार से ही हुई। कोई झंझट पैदा नहीं हुआ।

चतुरसिंह के घर गोरी-गोरी बहू आई। अपनी तथा अपने

छोटे दोनों भाइयों की शादी के पश्चात यह दूसरी पीढ़ी में लड़के की पहली शादी थी। परिवार की पूरी शक्ति परिवार की इज्ज़त क़ायम करने के लिए लगाई गई, और वह क़ायम रही। चतुरसिंह ने पानी में सींक खड़ी कर दी। छोटे भाई के बड़े बेटे की शादी करके लाया था वह। परिवार में पूर्ण उत्साह था, आनन्द था, मंगल था।

एक दिन वह भी आया जब मुंशी चतुरसिंह के बड़े लड़के का रिश्ता एक मिडिल स्कूल के हेडमास्टर महोदय ने अपनी लड़की से कर दिया। शादी के दिन आ गये, परन्तु इस शादी की शुरूआत आनन्द, मंगल और प्रेम से न होकर, कलह से हुई।

चतुरसिंह के अपने लड़के की शादी थी। वह उसे तनिक अधिक धूमधाम से करना चाहता था। वह पूरे गाँव को लड्डू-कचौरियों की जौनार देना चाहता था। जब शक्तिसिंह के लड़के की शादी थी तो उतनी बड़ी जौनार देने की उसमें शक्ति नहीं थी।

अग्निदत्त ख़ानदान की लौ पर जलने वाला परवाना था। वह तो यदि सारे गाँव क्या, ज़िला मेरठ की लड्डू-कचौरी का सवाल आता और परमात्मा छप्पर फाड़ कर उसे रुपया दे जाता, तो कर गुज़रने में न चूकता। उसके पास इस समय रुपया बरस रहा था। उसका दिल खुला हुआ था, उसकी हिम्मत चौबाला थी।

शक्तिसिंह और चतुरसिंह के पारस्परिक मनोमालिन्य की सूचना लेकर पंडित श्यामलाल, जो उस समय मुंशी चतुरसिंह के नायब टीचर थे, देहली पहुँचे। अग्निदत्त ने इस समाचार को भारी मन से सुना। शक्तिसिंह ने बड़े भाई चतुरसिंह का सामना किया, यह बात अग्निदत्त को बुरी लगी।

अग्निदत्त आज स्वयं भी गाँव भर की लड्डू-कचौरी की रोटी अपने मन से देना चाहता था। वह गाँव पर अपनी रईसी की धाक बिठाना चाहता था। उसके पारिवारिक कर्ज़ का

एक बड़ा हिस्सा उतर चुका था।

एक दिन अग्निदत्त से गाँव में उसके एक कर्ज़दार ने रुपया माँगने पर कहा था, 'अरे जा ! आया बड़ा साहूकार का बच्चा। पहले बाप-दादों का खाया हुआ तो दे ले।'

वे शब्द आज भी अग्निदत्त के कानों में बज रहे थे। उनका बजना अब धीरे-धीरे कम होता जा रहा था। वह चाहता था कि अब एक दिन अपने चबूतरे की दीवार पर खड़ा होकर उस गाँव के अपने कर्ज़दार से मुस्करा कर कह सके, 'अरे यार, हमने तो अपने बाप-दादों का खाया हुआ अदा कर दिया, परन्तु तू अपना खाया भी न दे सका।'

अग्निदत्त को पंडित श्यामलाल से पता चला कि शक्तिसिंह के विरोध के कारण चतुरसिंह भतीजे की शादी की तारीख़ बदलना चाहते हैं। अग्निदत्त ने दृढ़ता-पूर्वक कहा "यह सब कुछ नहीं होगा, पंडित जी ! मैं आ रहा हूँ। शादी जिस तारीख़ की निश्चित हुई है, उसी तारीख़ पर होगी। इसमें कोई रद्दो-बदल नहीं होगी। तारीख़ का बदलना परिवार की बदनामी है।"

: ६ :

पंडित श्यामलाल अग्निदत्त का संदेश लेकर मेरठ लौटे। चतुर्रसिंह ने अभी-अभी हवन समाप्त किया था। अँगोछा बाँधा हुआ था। शरीर पर केवल जनेऊ सुशोभित था। मस्तक पर चंदन लगा हुआ था। सिर पर गाँठ लगी चोटी पड़ी थी। जल-पात्र के ऊपर तैरती हुई घी की बूँदों को दो उंगलियों से निकाल कर दोनों हाथों को रगड़ा और फिर मुँह तथा सिर पर।

चेहरा दमदमा उठा। एक तेज़ था चतुर्रसिंह के मुख पर। उनके सामने जाने का साहस नहीं था किसी में; उनकी पत्नी का भी नहीं।

पंडित श्यामलाल धीरे-धीरे उनके पास पहुँचे और दिल्ली का सब वृतान्त कह सुनाया। चतुर्रसिंह सुन कर गद्‌गद् हो उठे। उनकी आँखों में छोटे भाई के प्रति प्रेम के आँसू उमड़ आये और उन्होंने डबडबाये नेत्रों को लेकर पंडित श्यामलाल से कहा, "मुंशी जी, भाई हो तो अग्निदत्त जैसा हो।"

"इसमें कोई शक़ नहीं" पंडित श्यामलाल ने करारी आवाज़ में कहा। "बहुत क़ाबिल और बड़ा फरमाबरदार भाई मिला है आपको।"

चतुर्रसिंह मज़बूत हो गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि शादी उसी तारीख़ पर होगी। उसमें कोई तबदीली नहीं हो सकती। आज्ञा हो गयी चतुर्रसिंह की। आज्ञा न मानना शक्तिसिंह के वश की बात नही थी और खुल कर बड़े भाई साहब के विरुद्ध कोई शब्द कहने की भी उनमें शक्ति नहीं थी।

शक्तिसिंह के मस्तक की सलवटें दृढ़ हों गईं, मुख पर मुस्कराहट और दिल में उमंग न रही। बड़े भाई के लड़के की शादी में होने वाली जौनार के प्रति कोई उत्साह नहीं था उनमें।

शक्तिसिंह का बड़ा लड़का पूर्णरूप से विद्रोही हो गया। उसने खुल कर विरोध किया। वह उसी समय परिवार से पृथक हो जाना चाहता था, परन्तु सम्मिलित परिवार की जंज़ीरों को वह न तोड़ सका।

एक फोड़े की तरह परिवार के शरीर में वह उभर रहा था। वह अन्दर-ही-अन्दर पकने लगा और उसकी पीड़ा भी धीरे-धीरे परिवार ने अनुभव की।

अग्निदत्त शादी में पूरे ठाट-बाट और प्रबन्ध के साथ शामिल हुआ। उसके पास इस समय न केवल रुपये-पैसे की ही गर्मी थी, वरन् कुछ वफ़ादार नौकर भी उसके साथ थे। उन्हें भी दफ्तर से छुट्टी दिलाकर वह अपने साथ लाया था। अग्निदत्त का सबसे विश्वासपात्र और मज़बूत आदमी अलबेल भी उसके साथ था।

अग्निदत्त ने दावत का सारा प्रबन्ध अपने विश्वास के आदमियों के सुपुर्द कर दिया। पारस (जिस कमरे में दावत का सामान रहता है) की चाबी अलबेल के पास थी।

शक्तिसिंह के बड़े लड़के ने गुप्त रूप से पारस से मिठाई की गोलें (बड़े मटके जिनमें मिठाई भरी थी) खिसकवाने की बात सोची और यह सोचा कि किसी प्रकार वह अग्निदत्त का इन्तज़ाम ख़राब करके उसे ज़लील करे, परन्तु इसमें उसे सफलता न मिली।

इस समय उसकी आँखों में अग्निदत्त कांटे की तरह चुभ रहा था। उसी की शै से यह जौनार हो रही थी, और इतनी कामयाब जौनार कि जिसमें गाँव का हर आदमी पूरी सजधज के साथ शामिल हुआ था। क्या हिन्दू क्या मुसलमान, सभी ने आज मुंशी चतुरसिंह की जौनार में भाग लिया, सभी

उनके दरवाज़े पर आये और सभी का सम्मान करने का अवसर मिला ।

जौनार समाप्त हुई । सबने भोजन कर लिया । परन्तु राम दयाल ने भोजन नहीं किया ।

जिस समय चतुरसिंह ने रामदयाल की बहू को शादी के पश्चात् उसके पीहर भेजा था तो परिवार की शक्ति भर जो कुछ जेवर वह जुटा सके, वह बहू को चढ़ाया गया था । उसी में कुछ और मिलाकर वह परिवार में आने वाली दूसरी बहू को चढ़ाना चाहते थे, और परिवार की बढ़ती हुई आर्थिक स्थिति का प्रदर्शन अपने तथा बहू के गाँव की बिरादरी के सामने करना चाहते थे ।

चतुरसिंह की इस इच्छा पर रामदयाल ने यह कहकर ज़ोरदार प्रहार किया, "मैं अपनी बहू को चढ़ाई गई चीज़ों में से एक छल्ला भी इस नई बहू को चढ़ाने के लिये देने को तैयार नहीं ।" इसीलिए उसने आसन-पाटी सँभाली, खाना नहीं खाया और जौनार में भी भाग नहीं लिया ।

ज़ेवर सब मुंशी चतुरसिंह की स्त्री के ही पास रहता था । चतुरसिंह ने वे चीज़ें अपनी स्त्री से मँगाईं और अग्निदत्त को सलाह के लिए बुलवाया । अग्निदत्त ने इसे अपने भतीजे की नादानी और बचपना समझ कर और समय की नज़ाकत को ध्यान में रख कर यही उचित समझ कर कहा, "जो चीज़ें जिस बहू की हैं उसी को दे दी जायें और जितनी बन पावें नई बहू की नई चीज़ें ही बनवाई जायें ।"

रामदयाल की बहू की चीज़ें उसी दिन उसे दे दी गईं । उसने खाना खा लिया । परिवार के मस्तिष्क पर उसके नाराज़ होने और खाना न खाने से जो एक भारीपन सवार हो गया था, वह हल्का हो गया । बारात की तैयारियाँ होने लगीं । फ़िलहाल घाव पर मरहम लग गया ।

बारात गई और आई । मज़े की बारात रही । मज़े की शादी

रही । देना-लेना भी बेटी वाले ने अपनी हैसियत के अनुसार अच्छा ही किया । बाराती कोई विशेष असंतुष्ट न हुए, परन्तु रामदयाल की नाक सोधी नहीं हुई । उसकी कई हरकतें ऐसी हुईं जो सिरसे के परिवार के ज़िम्मेदार आदमी को नहीं करनी चाहिए थीं ।

रामदयाल की ये चीज़ें चतुरसिंह और अग्निदत्त की नज़रों से छिपी हुई नहीं थीं, परन्तु वे करते भी आख़िर क्या ? वह उनका अपना ही तो बच्चा था, जो ये सब हरकतें कर रहा था । बार-बार क्रोध आता था उसकी नालायकी पर, गुस्ताख़ियों पर, परन्तु मन की बातें मन में ही दबा कर रह जाना होता था ।

बारात वापस आ गई । घर में एक नई बेटे की बहू ने प्रवेश किया । बहू जहाँ रूप में सुन्दर थी वहाँ शील और स्वभाव में भी देवी थी, पढ़ी-लिखी थी दरजा चार तक । पहली बहू के सौंदर्य की छाप गाँव भर पर पड़ी था । दूसरी बहू को देख कर तो गाँव भर की स्त्रियाँ एक स्वर कह उठीं, "बस री, बहुएँ तो सिरसे में चतुरसिंह के घर आई हैं ।"

बहू के आने से चतुरसिंह के घर का आँगन एक अनोखे ही रंग में रंग गया । चतुरसिंह के कान यह सुन रहे थे कि सिरसा आज उसकी प्रशंसा में बोलता था, उसके सम्मान में बोलता है । चतुरसिंह के लड़के का विवाह उसी तिथि पर पूर्ण हो गया जिस तिथि पर चतुरसिंह करना चाहते थे ।

अग्निदत्त अपने भतीजे को ब्याह कर लाया था । बहू की प्रशंसा सुनकर उसका भी हृदय गद्‌गद् हो रहा था । वह भाई के काम आ सका, इस पर उसे अभिमान था ।

इस बार अग्निदत्त जब दिल्ली से आया था तो वह दो सोने की चीज़ें भी गढ़वा कर अपने साथ लाया था । एक जोड़ी हाथ के कड़ों की थी और दूसरी एक माला थी । सोने का भाव इस समय बाईस रुपया तोला था । अग्निदत्त ने दोनों चीज़ें बड़े भाई चतरसिंह के हाथों में दे दी ।

चतुरसिंह दोनों चीज़ों को हाथ में लेकर बहुत खुश हुए। उनके नेत्रों की रोशनी बढ़ गई। उन्होंने लिपट कर अपने छोटे भाई को प्यार से चूम लिया और फिर दोनों चीज़ें उसी के हाथों में देकर कहा, "लो अग्निदत्त! जिनके लिए तुमने ये चीज़ें अपने मन से सोचकर बनवाई हैं, उन्हीं को दे दो।"

अग्निदत्त इस समय इस दुनिया में नहीं था। उसके आदर्श के सिंहासन पर बड़ा भाई बैठा था। वह उसकी पूजा कर रहा था। उसकी दया और उसके न्याय की प्रशंसा कर रहा था। उसके मन ने जो कल्पना की थी, अपने भाई के मुख से उसने वेही शब्द सुने; मानो उसके बड़े भाई की आत्मा पहले से ही यह जानती थी कि अग्निदत्त क्या चाहता है?

अग्निदत्त किसी प्रकार शादी की भीड़-भाड़ में मौक़ा निकाल कर अपनी स्त्री से मिला और भाई के प्रेम और न्याय की सारी कहानी कह सुनाई। वह भावुक नारी भी पति के शब्दों की फुस-फुसाहट के सामने अपने दिमाग़ का इस्तेमाल न कर सकी। आगे से अग्निदत्त ने तो इस दिशा में दिमाग़ से काम लेना ही बन्द कर दिया।

अंधविश्वास का दरवाज़ा लग गया। किवाड़ बन्द हो गये। बड़े भाई के किसी भी कार्य के औचित्य या अनौचित्य पर विचार करना ही उसके मन में एक पाप बन गया।

अग्निदत्त ने अपनी स्त्री की कलाइयों को प्यार से हाथो में लेकर वे दोनों सोने के कड़े उनमें डाल दिये और माला को उसके हाथों में देते हुए बोला, "यह माला बहू के गले में तुम्हें डालनी हैं, मुँह देखना चाहती हो न, नई बहू का।"

अग्निदत्त की स्त्री ने चतुरसिंह के लड़के की बहू को सोने की माला दी, बस आग लग गई, रामदयाल ने तन बदन में। मुँह दिखाई उसने अपनी बहू की भी होती देखी थी। वह पूरा नक्शा उसकी आँखों के सामने खिंच गया। उसे लगा कि इस परि-वार के कर्णधारों ने उसके साथ गैर-इंसाफी की, धोखा किया

और बेईमानी की।

अग्निदत्त शक्तिसिंह के बड़े लड़के रामदयाल से कुछ अधिक बुजुर्ग नहीं था और अग्निदत्त की स्त्री उससे लगभग एक दो वर्ष ही बड़ी रही होगी। बराबर की जोट थी, बराबर की चोट वह करना चाहता था। अग्निदत्त का चतुर्रसिंह के दिमाग़ पर बढ़ता हुआ प्रभाव उसकी आँखों में खटक रहा था।

उसके मन में फिर ग्लानि हुई और इच्छा हुई कि वह इस परिवार के बन्धनों से मुक्त होकर अपनी नौका संसार-सागर में पृथक से खेता हुआ चलकर एक खिलाड़ी की भाँति मैदान में उतरे।

नया जोश था, नई उमंगें थीं। वे उमंगें क्या करना चाहती थीं यह भविष्य के गर्भ में था, । परन्त उसका स्वतंत्र हो जाने का पूर्ण अधिकार था, और उसके इस अधिकार से उसे वंचित रखने का परिवार ने जो प्रयत्न किया वह उस पर एक महान् अन्याय था। परिवार के सरल प्रवाह में वह रुकावट भी थी।

परिवार का मुखिया यह सहन न कर सका कि उसकी रियासत का कोई भी आदमी बाग़ी होकर उससे बाहर निकल जाय।

चतुर्रसिंह के हाथों में परिवार की बागडोरें थी। शक्तिसिंह का लड़का रामदयाल उनकी सल्तनत में विद्रोह कर रहा था। एक बार बटवारे की बात भी सामने आई परन्तु चतुर्रसिंह ने अपनी जायदाद का एक बटा बारहवाँ हिस्सा शक्तिसिंह के लिए अलग निकाल दिया और कह दिया कि क़ानूनन उसका वही निकलता है।

यह देखकर शक्तिसिंह को सहम जाना पड़ा, और उसका लड़का रामदयाल भी चुप हो गया।

रामदयाल का हौसला उस समय तो पस्त हुआ, परन्तु यह पस्त होना आगे उभरने की निशानी था, कुछ दबना नहीं था यह।

उसका मस्तिष्क कुछ न सोच सका कि आखिर शक्तिसिंह को एक तिहाई जायदाद का हिस्सा न मिलकर बारहवाँ हिस्सा क्यों मिला ।

उसने अपने पिता से उस राज़ की छानबीन की तो पता चला कि उनके बाबा भवानीसिंह अपने मरने से पूर्व अपने तीन भाइयों का वह हिस्सा, जिस पर कर्ज था, बड़े भाई चतुरसिंह के ही नाम कर गये थे। उस समय वही बालिग़ थे, इसलिए वह कार्यवाही भी उन्हीं के नाम पर हो सकती थी । शक्तिसिंह और अग्निदत्त नाबालिग़ थे।

चतुरसिंह ने परिवार की टूटती हुई दीवार पर इस समय प्लास्टर कर दिया, परन्तु जो दरार पड़ चुकी थी वह बहुत पूरी थी, गहरी थी, उसने नींव तक की ईटों को हिलाया था।

रामदयाल ही इस समय विद्रोह नहीं कर रहा था, उसका पिता भी यह अनुभव कर रहा था कि भाई चतुरसिंह ने उसके लड़के की शादी में वह हाथ खोलकर काम नहीं लिया जो अपने लड़के की शादी में लिया ।

इस समय रामदयाल ने जब अपने पिता के सामने उनके पिता-तुल्य बड़े भाई चतुरसिंह की इस नाइंसाफी का चित्र लाकर खड़ा किया तो शक्तिसिंह के पास कोई जबाव नहीं था।

उसे बेटे की ओर झुक जाना पड़ा; परन्तु भाई के ख़िलाफ़ खड़ा होने और दो बातें करने की शक्ति उसमें नहीं थी। वह अपने बड़े भाई का सामना नहीं कर सकता था। वह उनका उसी प्रकार आदर करता था, जैसा पहले करता था ।

परन्तु रामदयाल के दिल और दिमाग़ से आदर की बात काफ़ूर हो चुकी थी । और वह उन्हें उसी दिन से अपनी स्वतन्त्रता के रास्ते को रोक देने वाला शत्रु समझने लगा ।

उस दिन के पश्चात यदि वह परिवार में किसी को आदर-सूचक शब्द बोलता या घुल-मिलकर बातें करता था तो वह सचमुच ही उसे धोखा देता था। उसकी इस प्रवृत्ति को परखना

परिवार के अन्य व्यक्तियों के लिए इस समय बहुत आवश्यक था।

और विशेष रूप से परिवार के कर्णधारों को चाहिए था कि वे उस शक्ति को, जो परिवार को ह्रास की ओर ले जा रही थी, अपने से पृथक् कर देते। परन्तु यह सब यहाँ नहीं हुआ। रोग अन्दर-ही-अन्दर बढ़ता था। फोड़ा नासूर बन गया।

परिवार की रस्सी में एक गाँठ पड़ चुकी थी और उसे खोलने की आवश्यकता नहीं समझी परिवार के कर्णधारों ने।

अग्निदत्त ने विवाह में जो कुछ किया, वह परिवार के नाम के लिए किया; चतुरसिंह के लड़के की शादी थी, इसलिए नहीं किया।

वह जो कुछ कर रहा था अपने परिवार की आने वाली पीढ़ी के लिए कर रहा था। शक्तिसिंह के लड़के की बहू की चीजों का जब सवाल आया तो उसने आग्रह करके चतरसिंह से वे चीजें रामदयाल को दिला दी थीं। इसके बाद उसका फर्ज़ हो जाता था कि वह इस विवाह पर अपने बड़े भाई को सहयोग दे।

उसने बहू के गले में सोने की माला डलवाई और अपना पूर्ण सहयोग दिया।

बड़े भाई का मन प्रसन्न हो गया। अग्निदत्त विवाह के पश्चात् फिर अपनी नौकरी पर चला गया। उसे सलाह देने वाला कोई नहीं था। भविष्य की तरफ़ उसकी दृष्टि जाती ही नहीं थी। कभी आदमी का बुढ़ापा भी आयेगा, इसका उसे ध्यान ही नहीं था।

उसके पास उसकी स्त्री ही थी घर की बातों में सलाह देने के लिए, परन्तु उसके भी अब सलाह देने का प्रश्न नहीं उठता था, क्योंकि उसे तो पहले ही अग्निदत्त ने अपने भाई की ईमानदारी, सदाचारिता, धर्म-वृत्ति और बुद्धिमत्ता से दबा लिया था।

अग्निदत्त का लड़का अभी छोटा बच्चा ही था और चतुर्रसिंह के पास रहता था। दो मस्त प्राणी, स्त्री और पुरुष दिल्ली के उसी पीपल के पेड़ के नीचे वाले क्वार्टर में मौज की बंसी बजा रहे थे।

रौब-दौब की हैडक्लर्की चल रही थी। दफ्तर में जो भी इंचार्ज आता, उसे अग्निदत्त के संकेत पर नाचना होता था। उसी के दिमाग़ में दफ्तर का आगे पीछे का सब कार्यक्रम रहता था। दफ्तर सम्बन्धी सब चिट्ठी-पत्री का पूरा व्यौरा उसी के पास था।

दिमाग़ अग्निदत्त का अच्छा था। सब काम करने वालों के नाम, उनके पिताओं के नाम, उनके गाँवों तक के नाम उसे ज़बानी याद रहते थे। हाजिरजबाब और धुन का पक्का आदमी था।

अग्निदत्त जीवन में मिलने वाले साधनों से आगे बढ़ रहा था।

अग्निदत्त का जीवन तीन दिशाओं में बह रहा था। एक दिशा वह थी जिसका सम्बन्ध अग्निदत्त, उसकी स्त्री और स्त्री-सम्बन्धी रिश्तेदारों से था। दूसरी का सम्बन्ध अधिकाधिक धनोपार्जन करने और परिवार को ऋण-मुक्त करने और अपने भाई चतुर्रसिंह और उनके परिवार से था, तीसरी दिशा उसका आर्यसमाजी जीवन था। उस रास्ते पर उसे चतुर्रसिंह ने ही डाला था।

अग्निदत्त और उसकी स्त्री, जीवन की सरल तरंगों में बह रहे थे। अग्निदत्त जो कुछ सोचकर घर से निकला था, वह, वह पा रहा था, वह वह कर रहा था। वह संतुष्ट था अपनी नौकरी से, अपनी स्थिति से। अब उसे विश्वास था कि जो कुछ परिवार पर कर्ज़ है, वह एक झटके का है और आनन-फ़ानन में वे उसे उतार कर फेंक देंगे।

अग्निदत्त का इस समय संसार में अपना अस्तित्व नहीं चल

कर चतुरसिंह का ही प्रभाव चल रहा था। वह चतुरसिंह का घुमाया हुआ एक लट्टू था, जो घूम रहा था। घूमने में इस समय अग्निदत्त को आनन्द आता था। जवानी का जोश था और जीवन का पहला ही क़दम उसका धनोपार्जन की दिशा में सच्चा पड़ा था।

अग्निदत्त को दृढ़ विश्वास था कि उसका सत्यवादी हरिश्चन्द्र स्वरूप पिता-तुल्य बड़ा भाई चतुरसिंह कभी स्वप्न में भी उसके साथ बेईमानी नहीं कर सकता। उसकी पत्नि को भी यह दृढ़ विश्वास था कि उसके जेठ जी, जो इतने बड़े धर्मात्मा हैं कि दोनों समय एक-एक घण्टा बैठकर संध्या करते हैं, नित्य नियम से हवन करते हैं; और जो स्वयं ही यह सब नहीं करते वरन् जिन्होंने अपने स्कूल के बोर्डिंग में भी विद्यार्थियों का संध्या करना अनिवार्य कर दिया है; वह अपने छोटे भाई के साथ कभी स्वप्न में भी कोई बेईमानी नहीं कर सकते।

उसने देखा था वह वातावरण जहाँ उन बच्चों के मुख से संस्कृत के मंत्रों की ध्वनि निकलती थी जो उनका अर्थ नहीं समझ सकते थे। उनके रसोई घर में बलिवैश्य करने से पूर्व क्या मज़ाल जो किसी भूख से तिलमिलाते बच्चे को भी एक चावल का किरका या फुलके-पराँठे का टुकड़ा मिल जाय। उनका नियम अटल था। उनके नियमों में बाल-बराबर भी फ़र्क डालने का साहस परिवार के किसी प्राणी में नहीं था।

एक नियन्त्रित धार्मिक वातावरण था जो चतुरसिंह ने अपने इर्द-गिर्द फैला लिया था और उसका रंग इतना गहरा था कि उसे चीरकर वास्तविकता तक पहुँचना अग्निदत्त जैसे बच्चे की कच्ची समझ के लिये असम्भव था।

मुंशी चतुरसिंह ने अपने परिवार की नींव को वैदिक युग की मान्यताओं पर आधारित किया था। बच्चों को ब्रह्मचर्य-यग में प्रवेश कराया। खटाई, मिर्च, मसाला, प्याज इत्यादि का घर में निषेध हो गया। इसका प्रभाव अग्निदत्त पर भी पड़ा

उसने और उसकी स्त्री ने सादा रहने का व्रत लिया। बाबू और बबुवाइन होने पर भी उन्होंने कभी अच्छा पहनने और ऐल-फैल से जीवन बिताने तथा चाट-पकौड़ी खाने और खेल-तमाशे इत्यादि में भाग लेने की प्रवृत्ति को अपने जीवन में प्रोत्साहन नहीं दिया।

इसी बीच एक दिन अग्निदत्त के पास अचानक चतुरसिंह के समधी हेडमास्टर साहब का एक सहयोगी प्रस्ताव आया, जिसमें उन्होंने कहा कि यदि अग्निदत्त चाहें तो वह उनसे रुपया लेकर अपना कर्ज चुकता कर द और जब उनके पास हो तब उन्हें बिना सूद लौटा दें। चतुरसिंह के सामने यह प्रस्ताव शायद उस समय इसीलिए नहीं गया कि उनका साहस ही न हुआ हो।

परन्तु इसके ठीक विपरीत यह काम यदि समधी हेड-मास्टर साहब चतुरसिंह की शै से ही कर रहे हों तो इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

कुछ भी सही, अग्निदत्त ने चतुरसिंह के समधी महोदय के इस प्रस्ताव को अपनी मान-हानि समझा और स्पष्ट उत्तर दे दिया, "आपकी कृपा है सब। खासा बड़ा कर्ज़ था जो दे दिया गया। अब तो केवल साधारण सा बाकी है। उसके लिए आप कष्ट न करें?"

समधी महोदय चुप हो गये, परन्तु उनके मन में एक खीज उत्पन्न हुई, अग्निदत्त के प्रति और वह उसी दिन से उसे ज़हरीला सर्प समझने लगे। जैसा काठ का उल्लू उन्होंने अग्निदत्त को समझा था, वह वैसा नहीं निकला।

बात गई-आई हो गई। परिवार के कर्ज के खात्मे का दिन भी भगवान् ने चतुरसिंह और अग्निदत्त को दिखाया। दोनों भाई कर्ज की आखरी किस्त लेकर अपने साहूकार खत्री के घर गये।

यह खत्री अब देहली के कटरा नील में आबाद था।

यहाँ उसने अपना घर का मकान बना लिया था। दोनों भाइयों का साहूकार ने उसी प्रकार आदर किया और घर बार की बातें पूछीं।

आख़री किस्त का रुपया मुंशी चतुर्रसिंह ने आगे बढ़ाया। साहूकार ने कर्ज़ का काग़ज निकाल कर रुपया दोनों भाइयों के नाम से उस पर जमा कर लिया और कर्ज़ समाप्त हो गया।

जब उठने लगे तो अग्निदत्त ने साहूकार को उसके एक पुराने वायदे की याद दिलाई। साहूकार को याद न हो, बात ऐसी बात नहीं थी, परन्तु वह चाहते थे कि यदि सामने न आये तो तभी अच्छा है। उन्हें पसीना आ गया। परन्तु तुरन्त वह उठकर अन्दर गये और उन्होंने साढ़े तीन सौ रुपया लाकर मुंशी चतुर्रसिंह के हाथ में दे दिया।

खत्री परिवार से जोड़ा हुआ चौधरी आभाराम का यह सम्बन्ध था। उस सम्बन्ध की इज्ज़त को परिवार ने क़ायम रखा।

परन्तु यहाँ हम तीसरे भाई शक्तिसिंह को भी नहीं भुला सकते। क्योंकि सिरसे में परिवार की स्थिति को लेकर बैठने का श्रय उसी को था और जो कुछ भी वह पदा करता था उसे बेचने का अधिकार चतुर्रसिंह को था। यह ठीक था कि शक्तिसिंह बाहर से नहीं कमा रहा था, परन्तु अपनी शक्ति भर तो योग वह दे ही रहा था। वह इस परिवार की, जो कमाने के लिए घर से बाहर परदेश में पड़ा था, जड़ों को मज़बूती के साथ गाँव में जकड़े बैठा था, और बड़े रौब-दौब के साथ बैठा था।

चतुर्रसिंह दिल का बादशाह आदमी था। गाँव का जो भी रईसाना शौक होता था, उसमें हिस्सा लिए बग़ैर उसका मन नहीं मानता था। दिल्लगी, हल्की-मोटी अय्याशी, शाम को हलवाई की दूकान पर जाकर पेड़े खाना, ये ख़ास शौक थे सिरसे के जमींदारों के। इन सब में शक्तिसिंह किसी से पीछे नहीं था।

शक्तिसिंह का खाता चलता था हलवाई के यहाँ। घर पर दो-दो भैंसें दूध देती थीं परन्तु उन्हें हलवाई की दूकान का ही कढ़ाई में गर्म हुआ, सौंधी-सौंधी खुशबू वाला, ऊपर मोटी बालाई का दूध पसंद था।

हलवाई के दिल पर भी मस्ती थी। शक्तिसिंह के परिवार की बदलती हुई दशा उसके सामने थी। शक्तिसिंह के छोटे और बड़े भाई की हैसियत को भी वह जानता था। और फिर अब तो शक्तिसिंह का अपना लड़का भी पुलिस में भर्ती हो गया था। काँस्टेबिल ही था लेकिन शक्तिसिंह उसे गाँव में रौब के साथ दीवानजी कहकर पुकारता था। किसी को क्या ग़र्ज थी जो उनके दीवानजी होने में संदेह करता।

: ७ :

परिवार अब यों देखने में सम्मिलित परिवार था, परन्तु वास्तविकता यह थी कि शक्तिसिंह का लड़का अपने मन से परिवार को त्याग चुका था और अलग बैठ कर उस समय का इन्तजार कर रहा था कि जब वह सहूलियत से अपना हिस्सा परिवार की जायदाद से निकाल ले। शक्तिसिंह अपने भाइयों की चालें देख रहा था, और अपने बेटे की भी। भाइयों के किसी काम की वह मुखालफ़त नहीं कर रहा था और बेटे को उसकी किसी बड़ी-से-बड़ी बदतमीजी पर डाँटता नहीं था।

वह यही कुछ कर सकता था इस समय। बेटा बालिग़ था, बराबर का था, तमाचा मार कर ज़मीन पर बिठा देने वाला बच्चा नहीं था।

शक्तिसिंह की ससुराल सिरसे से चार कोस के फ़ासले पर थी। उसकी स्त्री अपने पिता की अकेली सन्तान थी, जिसकी माता का देहान्त हो गया था। ऐसी स्थिति में जहाँ एक ओर पति की सेवा करना उसका धर्म था वहाँ दूसरी ओर पिता की सेवा भी उसका कर्त्तव्य था। और पिता के धन का लालच भी था उसे।

यह सेवा शक्तिसिंह की स्त्री ने की, पति की सेवा चाहे वह न कर सकी। शायद पति की सेवा का धर्म भी उस गाँव की स्त्री की दृष्टि में अधिक महत्त्वपूर्ण न हो उठा हो।

शक्तिसिंह अपनी ससुराल की ओर से मजबूत था। समय पर उसे वहाँ से सहायता मिल जाती थी, यह वह जानता था।

जिस दिन शक्तिसिंह को यह पता चला कि उसका परिवार

पुश्तैनी कर्ज़ से मुक्त हो गया, तो उसका हृदय भी खिल उठा।

परन्तु साथ ही जब उसे यह खयाल आया कि यह कर्ज़ से छूटी हुई जमीन उसके बड़े भाई चतुरसिंह के नाम है, तो उसका दम वहीं पर खुश्क हो गया और परिवार के ऋण-मुक्त होने का जो उत्साह था, वह काफ़ूर हो गया।

शक्तिसिंह ने दिलेरी से काम लिया। भाई से उसने यह कहना उचित नहीं समझा कि वह कर्ज़ से छूटी हुई ज़मीन को तीनों भाइयों के नाम पटवारी के काग़जात में बराबर-बराबर करादे।

शक्तिसिंह ने मन की बात को मन की ही क़ब्र में दफ़ना दिया, परन्तु उसका असर उसके जीवन की पूरी चाल पर पड़ा। परिवार के काम से उसकी दिलचस्पी न जाने कब और कैसे विलुप्त हो गई, यह वह स्वयं भी न जान सका। उसने महसूस किया कि उसमें अब ताज़गी बाक़ी नहीं रही।

बीमार वह रहता ही था। उसकी आँखों ने आज साफ़-साफ़ देखा कि उसका बड़ा भाई चतुरसिंह उसके साथ बेईमानी कर रहा है, उसकी औलाद के साथ बेईमानी कर रहा है।

परन्तु वह आज्ञाकारी था। उसने यह सब भी अपने मन में मुस्कुरा कर ही सहन किया। शायद यह भी समझा हो कि बड़े भाई साहब केवल परिवार को छिन्न-भिन्न होने से बचाने के लिए ही यह सब कर रहे हैं, परन्तु इसे मानने का प्रयास करने पर भी उसकी अक्ल यह नहीं मान पाई।

शक्तिसिंह के अस्वस्थ शरीर पर इस गुप्त रहस्य का प्राणघातक प्रभाव पड़ा। शक्तिसिंह की बीमारी बढ़ने लगी। उसके स्वास्थ्य का ताना-बाना मानो झंझा ने झंझोड़ दिया। उसकी देख-भाल के लिए उसकी स्त्री भी नहीं थी उसके पास। वह पिता की सेवा कर रही थी अपने पीहर में बैठी हुई।

ऐसी दशा में वह गाँव से चलकर अपने छोटे भाई के पास जहाँ वह नौकर था, दूर पंजाब में पहुँचा। उसका छोटा भाई

अग्निदत्त इस समय भटिंडा में मुलाजिम था। अग्निदत्त ने जब भाई शक्तिसिंह की यह दशा देखी तो वह हक्का-बक्का रह गया। दफ़्तर का काम उसी तरह छोड़कर वह उन्हें साथ ले सीधा अपने क्वार्टर में गया, और उसकी स्त्री ने फुर्ती के साथ पलंग पर दरी और चादर बिछा दीं। फिर आराम से उसने भाई शक्तिसिंह को लिटाया। गर्म दूध दिया पीने के लिए। और फिर साहब से छुट्टी लेकर अग्निदत्त तुरन्त अपने एक मित्र वैद्य जी को लेकर घर आ गया।

इलाज आरम्भ हो गया और शक्तिसिंह की दशा धीरे-धीरे सुधरने लगी। तीन चार दिन में उसने आराम से क्वार्टर के बाहर घूमना शुरू कर दिया। बाबू अग्निदत्त के बड़े भाई की सेवा के लिए कई-कई आदमी अपने आप ही आ जाते थे। फिर शक्तिसिंह का हंसमुख स्वभाव और बात फ़रोशी की कला ने उसे हरदिलअज़ीज बना दिया था।

सब लोगों में मिलकर बैठने से स्वास्थ्य जरा और सुधरा और अब उसने अपने छोटे भाई की स्त्री के हाथ के बनाये हुए पतले-पतले फुलके भी खाने शुरू कर दिये। मूंग की दाल के पानी के साथ एक पतला फुलका, जिस दिन खाया, उस दिन शक्तिसिंह मानो नई जिन्दगी में प्रवेश कर रहा था। इस समय वह अपने परिवार के उस प्यार-भरे कोने में बैठा था, जहाँ छोटे भाई का प्यार तरंगें मार रहा था।

उसका छोटा भाई पास में बैठा खाना खिला रहा था। उसका जी चाहा कि वह अपने इस कर्तव्यपरायण भाई के चरणों में अपना सिर रख दे। आज उसके दिल से वह कांटा दूर हुआ जो अग्निदत्त ने चतुरसिंह के लड़के की जौनार को सफल बना कर और उसके लड़के की बहू को मुँह दिखाई में सोने की माला देकर, उसके दिल में गुभा दिया था।

उसने अपने छोटे भाई के अन्दर झाँक कर देखा कि उसमें अपने परिवार तथा परिवार के सभी प्राणियों के लिए कितना

प्यार भरा है ।

स्वास्थ्य सुधर रहा था । इसी बीच एक और दुर्घटना घटी, कि चतुरसिंह की बहन कुछ पारिवारिक कठिनाइयों के कारण सिरसे आ गई । वहाँ उस समय घर का ताला लगा हुआ था । शक्तिसिंह अग्निदत्त के पास बीमारी से ज़रा उभर रहा था । चतुरसिंह को बहन के सिरसे आने की सूचना मिली तो उसने हुक्म जारी कर दिया कि शक्तिसिंह जहाँ भी हो वहाँ से तुरन्त सिरसे पहुँचे और बहन के रहन-सहन का उचित प्रबन्ध करे ।

शक्तिसिंह बड़े भाई की हुक़्म-उदूली नहीं कर सकता था । वह अपने छोटे भाई का मेहमान बनकर देख चुका था कि भाई के हृदय में भाई का कितना प्यार भरा है, कितना दर्द भरा है ।

एक ही माँ के जाये थे तीनों भाई, तीनों ने एक ही माँ के पेट में पैर फैलाये थे । एक ही व्यक्ति उन तीनों का पिता था । उन तीनों का रक्त एक था । जितना वे एक दूसरे का हित सोच सकते थे उतना बेटा नहीं सोच सकता । उसमें आखिर फिर भी बाहर से आने वाली बहू का रक्त मिला होता है ।

फिर छोटी बहन का, उसके आर्थिक संकट में साथ न देना भी एक पाप था । वह आ गई थी अपने घर, तो उसका प्रबन्ध करना भाई का धर्म था । शक्तिसिंह अपने फर्ज से पीछे हटने वाला इंसान नहीं था । साहस का वह पुतला था । वैद्य जी का इलाज बीच में ही छोड़ कर अपने भाई अग्निदत्त के पास से रवाना होने की बात सोच ली उसने और कहा "भय्या ! बहन सिरसे आ गई है तो मेरी आत्मा बस समझले कि उसी में पहुँच गई । मुझे सिरसे पहुँचा दे । अब मैं यहाँ नहीं रुक सकता ।"

शक्तिसिंह की इस रुग्णावस्था में जाने की बात सुनकर अग्निदत्त अपनी कल्पना के अन्तिम छोर पर पहुँच गया । शक्ति-

सिंह इस समय अग्निदत्त के सामने उसी प्रकार खड़ा था जिस प्रकार कभी भरत लक्ष्मण के सामने खड़े हुए होंगे। यहाँ हमारा अग्निदत्त, भारतीय कल्पना के प्रतीक फ़रमाबदार लक्ष्मण के पात्र से इतना ही ऊँचा था कि लक्ष्मण ने भरत के भाईपने पर सन्देह किया था कि वह राम-द्रोही हो सकता है, परन्तु अग्निदत्त ने कभी शक्तिसिंह पर यह सन्देह नहीं किया कि वह चतुरसिंह-द्रोही हो जायगा। शक्तिसिंह यदि रामदयाल का पिता है तो वह चतुरसिंह और अग्निदत्त का भाई भी तो है। उसका नाता चतुरसिंह से पहले जुड़ता है और इसीलिए उस पर अधिकार भी उन्हीं का पहले है।

अग्निदत्त अभी बच्चा ही था अक़्ल का। काम में योग्य था, यह अलग बात थी, परन्तु जीवन के खेल के मैदान का वह नया ही खिलाड़ी था। चतुरसिंह सबसे पुराना खिलाड़ी था। शक्तिसिंह उसके बाद का।

परन्तु आज वास्तव में जब शक्तिसिंह यहाँ से चला तो वह खिलाड़ी नहीं था। वह एक भाई था और अग्निदत्त के अन्दर उसे अपनी माता की मूर्ति दिखाई दे रही थी। वह साथ-साथ पेट पर लेटना याद आ रहा था। अग्निदत्त की स्त्री नहीं चाहती थी कि जेठ जी अभी गाँव जायें। वह चाहती थी कि उनका इलाज जारी रहे। अग्निदत्त भी यही चाहता था परन्तु बहन के गाँव में आ जाने, और भाई चतुरसिंह का आदेश पाने के पश्चात जाने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था।

अग्निदत्त ने भाई को रेल में बिठलाया। अग्निदत्त के स्टाफ के आदमी और उनकी मिलनसारी ने जिन्हें मोह लिया था वे सभी लोग स्टेशन पर उन्हें विदा करने के लिए आये। उनके चलते समय अग्निदत्त के साहब से भी उनकी भेंट हुई। आर्य-समाजी क्षेत्र के भी कुछ व्यक्ति थे, क्योंकि यहाँ अग्निदत्त आर्य-समाज का प्रधान था।

शक्तिसिंह ने रेल के डिब्बे के खुले दरवाजे पर से सामने

एकत्रित व्यक्तियों को एक दृष्टि से देख कर गर्व अनुभव किया कि यह सब उसके छोटे भाई अग्निदत्त का प्रताप है। कहाँ यहाँ परदेस में पड़ा है और कैसा असर जमाया हुआ है रेल के अफसरों से लेकर शहर के आर्यसमाजी सेठों तक पर। सब हाथ जोड़ कर सामने आते हैं। अपने छोटे भाई के इस असर को देखकर शक्तिसिंह ने मन-ही-मन अपने छोटे भाई को आशीर्वाद दिया, "अग्निदत्त! तू फले-फूले। तेरे एक के हज़ार हों। तेरा एक बेटा है वह तेरे नाम को दाग़ नहीं लगा सकता। तूने हमारे परिवार को कर्ज़-मुक्त करने में योग दिया है, तेरा यह ऋण परिवार कभी नहीं उतार सकता।"

शक्तिसिंह यहाँ से क़सम लेकर गया कि वह रामदयाल की बातों में नहीं आयेगा। मुंशी चतुरसिंह अपने भाइयों के साथ बेईमानी नहीं कर सकते। रामदयाल बचपना कर रहा है। उसे अपने बड़ों को पहचानने की तमीज़ नहीं। उसकी दृष्टि अभी बड़े भाई साहब की गहराई तक नहीं पहुँची है। वह केवल आज की ही बात सोचता है, और बड़े भाई साहब परिवार की जड़ों को मज़बूत बनाने की चिंता में हैं।

: ८ :

चतुरसिंह इस दुनिया में सूर्य की तरह आया और उसकी चतुराई का प्रकाश हर चीज़ पर छाता हुआ चला गया। सब से पहले तो उसने ईश्वर का विश्वास प्राप्त किया, जिससे उसने उसे इस पीढ़ी का सबसे बड़ा और अक़्ल वाला लड़का बनाया। इसका मतलब है कि वही उस परिवार के सिंहासन पर विराजने वाला राजाधिराज था।

बड़ा लड़का बनकर अपने ताऊ के दिल और दिमाग़ पर भी वह पूरी तरह छा गया। उन्हें उसके सामने और कोई ऐसा आदमी नज़र ही नहीं आता था जो इस परिवार की गाड़ी को आगे तरक्की के रास्ते पर ले जा सके। इसलिए उन्होंने परिवार का भार और परिवार की सम्पत्ति चतुरसिंह के सुपुर्द कर दी। परन्तु यह सम्पत्ति बुज़ुर्गों की अमानत थी। इस पर आभाराम के परिवार के हर बच्चे का बराबर अधिकार था।

इस सम्पत्ति की जमीन पर चतुरसिंह एक वृक्ष बन कर खड़ा हुआ। इस वृक्ष के दो बड़े-बड़े टहने थे, शक्तिसिंह और अग्निदत्त। इन दोनों टहनों को लेकर चतुरसिंह सचमुच ही एक बड़ा भारी वृक्ष था, और उसकी छाया में बहुत से लोग विश्राम कर सकते थे। वह वृक्ष आस-पास के गाँवों के वृक्षों से ऊँचा उठा, अपनी शिक्षा के दम पर; और उसकी ऊँची चोटी को हर बिरादरी वाले ने देखा। पढ़ा-लिखा आलिम और तरक्की पसन्द होने के नाते समय के बदलते हुए तरीकों ने भी उसे बल दिया, आगे बढ़ने का साहस दिया।

बिरादरी में शौहरत मिली, आर्य समाजी क्षेत्र में शौहरत

मिली, हेडमास्टरी में शौहरत मिली। नतीजा उसके स्कूल का हमेशा अव्वल रहता था। पुराना कर्ज़ उसने उतार दिया। परिवार को बेकर्ज़ कर दिया। बच्चों को एक हद तक पढ़ा-लिखा लिया। दो लड़कियों और एक लड़के के शादी-विवाह के भार से भी वह मुक्त हो गया। परन्तु इस बीच में यह नहीं कह सकते कि कोई सदमा ही चतुरसिंह के ऊपर न आया हो और वह बराबर अपनी राह पर बेरोक-टोक ही चलता गया।

चतुरसिंह की बड़ी लड़की हरकली विवाह के एक मास पश्चात ही विधवा हो गई। तमाम परिवार पर शोक छा गया। चतुरसिंह को इसका भारी सदमा हुआ और उसकी प्रगतिशील विचारधारा को भी ठेस लगी।

हरकली का विवाह चतुरसिंह ने पण्डितों द्वारा पत्रे के अनुसार बतलाये हुए शादी-विवाह के दिनों में, जिन्हें साये के दिन कहा जाता है, उनमें न करके, बिला साये ही किया था। पण्डितों ने विरोध किया, गाँव ने विरोध किया और बिरादरी में भी इसकी चर्चा हुई। परन्तु चतुरसिंह के प्रकाश ने इन सब धुँधली-छायाओं को उड़ा दिया और शादी बिला साये ही हुई।

शादी का जब यह दुष्परिणाम सामने आया तो चतुरसिंह प्रगति की राह पर एक क़दम और आगे बढ़े और वह अपनी लड़की का दूसरा विवाह भी करने के लिए तैयार हुए। परन्तु सती-स्त्री की समाज में मान्यता मानने वाले समाज के वातावरण का अपने घर में बीजारोपण करके उन्होंने यदि अपनी पुत्री के सामने यह प्रस्ताव भी लाने का प्रयास किया, तो यह उनकी एक बड़ी कमज़ोरी थी।

हरकली पढ़ी-लिखी लड़की थी। आर्यसमाजी वातावरण में पली थी। सती स्त्रियों की कथायें उसे ज़बानी याद थीं। सती स्त्री का पति एक ही हो सकता है, दो नहीं। भारतीय आदर्शवाद की सूली पर चतुरसिंह की वीर बालिका ने अपनी छाती टिकादी। हरकली के माता पिता बस यहीं से अपन

लड़की के त्याग की शिला के नीचे दब गये। उनके जीवन का आमोद-प्रमोद, सब जाता रहा। घर का वातावरण ही बदल गया। कितना बड़ा त्याग किया उसने इस दिशा में। वह जीवन की पराकाष्ठा पर पहुँच गई। आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने का व्रत ले लिया। उसके अपने रक्त से इस संसार में कोई वल्लरि चल सकेगी, यह प्रश्न ही समाप्त हो गया।

हरकली अपने पिता के ही पास आगई। वहाँ रहकर उसने सोचा कि अब उसे अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। अब वह विधवा है। आज के दिन तो पिता का सहारा मिल भी गया, परन्तु यह सहारा जीवन भर नहीं चल सकता। उसे अपना सहारा बनाना ही होगा। उसने इस उम्र में फिर से पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। उसके सामने अपने पिता के द्वारा की गई परिवार की उन्नति का पूरा चित्र था। उसे पता था कि विद्या में कितनी शक्ति है। इसलिए उसने विद्या को अपने जीवन की साथिन के रूप में ग्रहण किया।

चतुर्रसिंह रौब-दाब का आदमी था। क्रोध का मानो वह पिटारा था और हर आदमी को डर रहता था कि कहीं वह पिटारा खुल न जाय और उसमें से निकल कर विषैले सर्प इधर-उधर न दौड़ने लगें। स्कूल की सीमा में घुसते ही ऐसा हो जाता था कि मानो सब लड़कों, अध्यापकों, चपरासियों तथा क्लर्कों को साँप सूंघ गया है। चतुर्रसिंह पर दूर से नज़र पड़ते ही अध्यापक लोग आपस में बातें करना बंद कर देते थे। लड़के सीधी लाइन लगा कर फ़र्श पर तमीज़ से बैठ जाते थे और अपनी पोथियों का कोई भी सबक़ निकाल कर ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने लगते थे। ऐसा मालूम होता था कि मानों स्कूल की सबक़ याद करने की मशीन के स्टार्टर पर मुंशी चतुर्रसिंह की तेज़ नज़र पड़ गई है, और मशीन चलने लगी है।

चतुर्रसिंह के घर पर भी यही दशा थी। यदि वह बच्चों को बैठक की ओर से आते दिखाई दे जाते थे तो बच्चे मकान

के पिछले दरवाज़े पर दिखाई देते थे। पंजों के बल इस प्रकार पाँव दबा कर निकल जाते थे कि क्या मज़ाल जो जरा सा भी खटका हो जाय।

इन दिनों चतुरसिंह का परिवार काफ़ी बड़ा हो गया था। उनके घर पर रहकर पढ़ने वाले रिश्तेदारों के बच्चों की कमी नहीं थी। चतुरसिंह के बड़े लड़के का साला भी यहीं रहता था। उनकी बहन का एक लड़का भी उन्हीं के पास रह कर पढ़ रहा था। दो अपने लड़के थे, और एक उनके छोटे भाई अग्निदत्त का। दो लड़कियाँ थीं, हरकली और फ़लकली। दो यहाँ उनके पास थीं। बिचली लड़की की शादी हो चुकी थी, और वह अपनी ससुराल में थी।

चतुरसिंह की स्त्री सीधी-सादी, बिना पढ़ी-लिखी थी। एक छोटे से गाँव की रहने वाली, परन्तु हेडमास्टरनी थीं अब वह। दिमाग़ का इस्तेमाल करने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी। उनका पति हेडमास्टर था, पढ़ा-लिखा विद्वान् और उनकी लड़की भी पढ़ी-लिखी थी। घर के हर काम में वह उनकी सलाह-कार थी। यों ऊपर से परिवार का काम करने वाली हरकली की माँ ही थीं, परन्तु वास्तव में इस घर का या यों कहिये कि इस परिवार का प्रबन्ध हरकली के हाथों में आ चुका था।

हरकली इस घर की जड़ों में घुस चुकी थी। उसकी माँ का उस पर अविश्वास होने का कोई कारण नहीं था। वह विधवा थी, इस नाते वह इस परिवार का धन दूसरे परिवार में ले जायगी, यह भय भी नहीं हो सकता था, परन्तु एक और भय सामने आना प्रारम्भ हो गया था और वह भय था दूसरी पीढ़ी का।

चतुरसिंह के लड़के अभी बच्चे ही थे।

इन्हें अपनी बड़ी बहन में श्रद्धा थी। श्रद्धा का तो भंडार था ही इस परिवार में। इस श्रद्धा का बीजारोपण स्वयं चतुरसिंह ने किया था। इस श्रद्धा के बीच चतुरसिंह के दो भाई, भटक रहे थे और सच तथा झूठ का निर्णय करने में असमर्थ थे। श्रद्धा

के इसी अस्त्र को लकर हरकली ने परिवार में प्रवेश किया।

एक बार वह सामाजिक तथा हिन्दू-लॉ के अनुसार पिता के परिवार से बाहर निकाली जा चुकी थी। उसका इस घर में कोई अधिकार नहीं था। वह अपने पिता, माता तथा भाइयों की कृपा पर ही यहाँ रह सकती थी। परन्तु किसी की कृपा पर रहना हरकली को मंज़ूर नहीं था। जहाँ तक स्त्री पुरुष के पारस्परिक सेक्स सम्बन्धों की दिशा थी वह त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति थी परन्तु जीवन के अन्य सब मोड़ों पर वह सर्पिणी की भाँति फुंकार कर चलने वाली थी।

हरकली अग्निदत्त की स्त्री से उम्र में अधिक कम नहीं थी। पहली पीढ़ी अर्थात अग्निदत्त और उनकी स्त्री के ही समान वह अपने को भी परिवार के विषय में सोचने और सलाह देने की अधिकारिणी समझती थी।

हरकली चतुरसिंह की सबसे बड़ी सन्तान थी। वह विधवा हो गई तो उसका अपनी ससुराल के प्रति मोह भी समाप्त हो गया। विधवा होने के पश्चात वह अपनी ससुराल बहुत कम गई। उसका रहना-सहना पिता के ही घर में रहा और यहाँ उसके छोटे भाई बहनों ने उसे आदर भी बहुत दिया। क्या मजाल जो घर के वातावरण में कोई भी ऐसी चीज़ हो कि हरकली के विधवा हृदय पर उसकी ज़रा ठेस लगे।

चतुरसिंह और उनकी पत्नी के लिए तो वह इस समय एक देवी थी, सती कन्या थी, पूज्यनीया थी। फिर प्यार था माँ-बाप का, जो हमेशा ही अंधा होता है, और यह अंधापन न जाने कितने व्यक्तियों के फ़र्ज़ के रास्ते रोज़ बदलता है। इन बदलने वाले रास्तों पर चलने वाली ज़िन्दगी की गाड़ियाँ रोज़ टकराती हैं और चकनाचूर हो जाती हैं। फ़र्ज़ की गहराइयों को न समझ कर प्यार की अंधेरी दुनिया में झाँकने से असलियत छुप जाती है और रंगीन चश्मा आँखों पर चढ़ जाता है।

हरकली का त्याग वही रंगीन चश्मा था, जो उसने चतुर-

सिंह और अपनी माता की आँखों पर चढ़ा दिया। इस रंगीन चश्मे में चतुरसिंह को त्याग की मूर्ति सती हरकली, जो विद्वान भी थी, अपने परिवार को चलाने वाली एक सफल बालिका के रूप में दिखाई दी। हरकली चतुर थी, पढ़ी-लिखी थी, वाकपटु थी, अपने छोटे भाइयों को सच्चे मन से प्यार करती थी। शिक्षा में उसकी रुचि थी और अध्यापन-कार्य को वह अपने जीवन का लक्ष्य बना चुकी थी। वह हर प्रकार से योग्य थी। फिर उस पर चतुरसिंह आखिर भरोसा क्यों न करते।

हरकली चतुरसिंह की सबसे बड़ी और सबसे योग्य संतान थी। उसके अन्दर से उन्हें अपना रक्त बोलता हुआ सुनाई देता था, और उन्हें ऐसा लगता था कि मानो हरकली नहीं बोल रही, वह स्वयं ही बोल रहे हैं।

घर का प्रबन्ध हरकली के हाथों में आया। खाना सब चौके में खाने वालों के लिए एकसा बनता था, परन्तु फुलके चुपड़ने में और दाल-शाक में घी डालने के अन्दर दो तरह का व्यवहार होने लगा। बच्चे इस दो तरह के व्यवहार को देखते और समझते थे। कुछ अधिक घी पा जाने वाले उसे अपना अधिकार समझते थे और कम पाने वालों में अग्निदत्त के लड़के को कभी उसका ध्यान भी नहीं होता था। खेल-कूद और अपनी धुन में पढ़ने के अलावा उसके मस्तिष्क में कभी कोई बात नहीं आती थी। अब वह अंग्रेजी की कक्षा पाँच में पढ़ रहा था।

अग्निदत्त का लड़का कभी-कभी झुंझला भी पड़ता था अपने मन-ही-मन इस दो प्रकार के व्यवहार को देखकर, परन्तु अन्दर से यह समझ कर रह जाता था कि यह व्यवहार करने वाले उसके ताऊ जी तथा ताई जी नहीं हैं, उनके बच्चे हैं, हरकली है, जो यह सब कुछ कर रहे हैं।

इन विचारों की हल्की-हल्की रेखा सी कभी-कभी अग्निदत्त के लड़के के मस्तिष्क पर खिचती थी, परन्तु वह पढ़ने-लिखने

और खेलने-कूदने की रविश में तुरन्त ही बह जाती थी, खो जाती थी ।

हरकली ने अपने घरेलू प्रबन्ध के समय में रसोई के बढ़ते हुए ख़र्च को सँभालने का प्रयत्न किया । अपने भाई के साले के घी में से कभी-कभी मौका पाकर उसकी आवश्यकता से अधिक घी निकाला और उसमें पूरे घर भर का साग छौंका और वह सबने खाया। घर की अर्थ-व्यवस्था में हरकली का यह योग कोई महत्वपूर्ण योग नहीं था, परन्तु उसने अपने मन से उस काम को करके अपनी चतुराई का प्रमाण प्रस्तुत किया । उसका यह काम हरकली की माता की दृष्टि में महत्वपूर्ण हो सकता था परन्तु चतुरसिंह को इसकी कभी सूचना नहीं मिली ।

: ६ :

इसी बीच अग्निदत्त की स्त्री अपने बेटे के पास चार दिन रहने आई। उसे प्यार से बुलाया गया था। जिठानी-देवरानी में काफ़ी स्नेह था। कभी किसी ने एक दूसरे के लिए कुछ नहीं कहा। दोनों ही गाँव की रहने वाली थीं। अग्निदत्त की स्त्री भी बच्ची ही थी उनके सामने, क्योंकि वह उनकी हरकली से कुछ अधिक बड़ी नहीं थी उम्र में, परन्तु उसका बराबरी का दर्जा मानती थीं वह। प्यार भी करती थीं उसे। उसने उनके लड़के की बहू के गले में सोने की माला डाली थी, उनके पति का साथ दिया था परिवार का कर्ज़ उतारने में; कोई रुकावट नहीं डाली। परिवार की एक सुसभ्य बहू बनने का परिचय दिया था उसने। उनके दिल में इज्ज़त थी, प्रेम था अग्निदत्त की स्त्री के लिए।

परन्तु हरकली की दृष्टि में वह एक गँवार और मूर्ख स्त्री थी। परिवार के एक उस नाचीज़ इन्सान की स्त्री जिसके बिना भी उसका पिता बिरादरी का एक नामी इन्सान था। उस पर कोई कर्ज़ नहीं था। उसने और ज़ायदाद भी खरीद ली थी, खरीदी क्या थी, उसके चचा के लड़के ने अपनी जायदाद पर कर्ज़ कर लिया था और कर्ज़दार उसका गला दबा रहा था। चतुर्रसिंह ने उसकी ज़मीन अपने नाम करली और कर्ज़ सब मिलकर देते रहे।

बच्चों के ब्याह-शादियों के भार से भी वह मुक्त हो चुके थे। ठसके की हेडमास्टरी चल रही थी। साठ रुपया माहवार घर में आता था, रक़म आ जाती थी घर में। चाँदी के साठ रुपये, उतने

रुपये कि जितने शायद उनके पास-पड़ौस के कई परिवार अपनी वर्ष भर की फ़सल को बेचने पर भी नहीं पाते। वे सब तुच्छ हो गये चतुरसिंह की दृष्टि में और हरकली की दृष्टि तो उनके ऊपर से ऐसे तैर जाती थी जैसे कोई पतली नाटी तेज़ मछली पानी की ऊपर-ही-ऊपर की सतह पर दौड़ने लगती है।

यह दृष्टि यहाँ तक ऊपर उठी कि गाँव के आदमियों को चतुरसिंह ने जानवरों की तरह देखना प्रारम्भ कर दिया। और इसका बहुत निखरा हुआ रूप उस दिन सामने आया जब उन्होंने अपनी ससुराल के दो आदमियों को अपनी कोठी के सामने वाले बाग़ीचे में अपने अदब में न खड़े होने पर खाट से नीचे गिरा दिया। चतुरसिंह बहुत ऊपर उठ चुके थे इस समय। गाँव के नाचीज़ इन्सान मिट्टी के चन्द ढेले नज़र आते थे उन्हें; जिनका दिमाग़ और तहज़ीब से कोई सम्बन्ध नहीं था।

परन्तु अग्निदत्त अभी भी उनका प्राण था और उसकी स्त्री उनके घर की एक योग्य बहू थी। वह पतली, दुबली छरहरी सी एक सुन्दर युवती थी। गढ़मुक्तेश्वर के मेले का समय था। मेरठ जिले में यह मेला भी अपनी शान का अकेला ही लगता है। गढ़मुक्तेश्वर, एक साधारण सा क़स्बा, परन्तु गंगा-किनारे बसा है। शरद्पूनों के पश्चात् कार्तिक मास में यह मेला लगता है। यों मेला देहाती ही होता है, परन्तु बहुत बड़ा होता है।

दूर-दूर के किसान अपनी फ़सलें बोकर बैलगाड़ियों में हफ्ते भर का राशन और ईंधन लेकर तथा अपने परिवारों को गाड़ी में बिठा कर इस मेले में आते हैं। देहाती लोगों के इस्तेमाल का सामान लेकर अच्छे-अच्छे व्यापारी भी वहाँ पहुँचते हैं। बड़ा भारी बाज़ार लगता है और एक नया नगर बस जाता है कुछ दिन के लिए। जप-तप करने वालों के भी गहरे हो जाते हैं। कहते हैं पण्डित लोगों का तो साल भर का खच इसी मेले से निकल आता है।

चतुरसिंह इस प्रकार के मेलों में धार्मिक आस्था नहीं रखते

परन्तु फिर भी वह जाते अवश्य थे। एक तो वहाँ आर्यसमाज का कैम्प लगता था, जिसके प्लेटफ़ार्म से आर्यसमाजी नेता लोगों को अंधविश्वास के बिरुद्ध लैक्चर पिलाते थे और इस लैक्चर पिलाने का ठेका चतुरसिंह अपने पास समझता था।

समाज के ज़िले और कुछ प्रान्तीय तथा कुछ सार्वदेशिक नेता लोग भी यहाँ पधारते थे। उनके बीच चतुरसिंह की अच्छी गणना होने लगी थी। यह चतुरसिंह का मेले में खिंचाव का एक कारण था और दूसरा कारण भी इससे कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। मेले का प्रबन्ध करने के लिए जहाँ पुलिस का वहाँ पर प्रबन्ध रहता था वहाँ स्वयंसेवकों के दल भी एकत्रित होते थे। चतुरसिंह के मिडिल स्कूल का भी एक स्वयंसेवक दल वहाँ गया हुआ था और उसका पृथक से कैम्प लगा था। इस प्रकार चतुरसिंह के पास आर्य समाजी मंडप में ठहरने के अतिरिक्त स्वयंसेवकों के मंडप में भी ठहरने का सुप्रबन्ध था।

चतुरसिंह अपने पूरे परिवार के साथ गढ़मुक्तेश्वर के मेले पर गये। अग्निदत्त की स्त्री तथा उसका लड़का भी साथ थे। मोटर से सब लोग खुशी-खुशी गढ़मुक्तेश्वर पहुँचे। स्वयंसेवक-दल के मास्टर ने, जो उनके नायब टीचर थे, हेडमास्टर साहब के परिवार के लिए एक तम्बू अलग से खाली करा दिया।

हिन्दुत्व का जोश इस समय देश में फैल रहा था। आर्य समाज उसका नेतृत्व कर रही थी। सरकार भी इस जोश में कोई रुकावट डालना नहीं चाहती थी। दूसरी ओर से मुसल-मानी जोश भी मुसलमानों में सरकार द्वारा भरा जा रहा था। अंग्रेजी सरकार की यह नीति रहती थी कि राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ होने से रोकने वाली इन दो शक्तियों को पृथक्-पृथक् जितना बल दिया जा सके, दिया जाय जिससे समय-बे-समय ये आपस में टकराती रहें।

इस वर्ष गढ़मुक्तेश्वर के मेले पर दूसरे ही दिन सरकार की इस नीति का प्रहार हुआ और मेले में पहुँचे हुए मुसलमान

व्यापारियों का माल सरे आम लुटने लगा।

सुना है कि इस लूट की जड़ में चन्द मुसलमान गुण्डों द्वारा एक जाट की स्त्री को पिछली रात सिनेमा से भगा ले जाने की हरकत थी। उस जाटनी के गाँव और उसके आस-पास के गाँवों की मेले में एक सौ पच्चीस गाड़ियाँ आई हुई थीं। गाड़ियों पर तीन सौ पिच्छत्तर लाठीबन्द जवान थे। एक मामूली सिनेमा के मालिक लाला भोंदूराम के दस गुण्डे गेटकीपरों ने सिनेमा पर तैनात पुलिस के दस्ते को तीन बोतलें देसी शराब और पच्चीस रुपये नक़द देकर यह काम किया था। इस हरकत ने उन तीन सौ पिच्छत्तर नौजवानों की लाठियों को आसमान पर उठवा दिया। आनन-फ़ानन में उन्होंने सिनेमा के मंडप को जलाकर ख़ाक कर दिया और उन गुण्डों की गर्दनें पकड़-पकड़ कर उन्हें पवित्र गंगा माता की गहरी धारा में इस तरह उठा कर फेंक दिया कि मानों उन्हें इसका पूरा अधिकार था। क़ानून उनके हाथों में था, उनकी लाठियों की लोहे की मूठों में था।

लाला भोंदूराम के ये गेटकीपर सब-के-सब मुसलमान थे। जाटों के दिल की वह आग जो उन गुण्डों को गंगा की धारा में प्रवाहित करके और सिनेमा-घर को आग लगा के बुझ जानी चाहिए थी, देश भर में फैली हुई हिन्दू-मुसलमानी हवा का झोका पाकर और भी तेज़ी से दहक उठी। उसकी लपटें दूर-दूर तक गई। मेले में आये हुए मुसलमान व्यापारियों की तो शामत ही आ गई।

मुसलमान पिटने लगे, उनका लमाल टने लगा और वह यहाँ से आगे बढ़ कर आस-पास के गाँवों तक भी पहुँची। जहाँ-जहाँ पहुँची वहाँ-वहाँ इसका असर हुआ। कई मुसलमानी गाँव जलाकर ख़ाक कर दिये गये। मेले में आये हुए छड़े जाटों के लठबन्द हुजूम ने क़यामत ला दी। बात पुलिस के इन्तज़ाम से बाहर निकल गई और फ़ौज को भी बुलाना पड़ा।

लूट की बात ज्यों ही चतुरसिंह के कानों में पड़ी, त्यों ही

उनका दिल धुकड़-पुकड़ करने लगा। वह अपने और अपने छोटे भाई के सब बाल बच्चों को लेकर मेले में आये हुए थे। कहीं कोई बात हो गई तो परिवार-का-परिवार ही नष्ट हो जायगा, यह भय उनके दिल को कचोटने लगा। उनके दिमाग़ ने काम नहीं दिया। यह ठीक था कि स्वयंसेवकों के कैम्प पर उनका अपना ही पहरा काफ़ी था और फिर पुलिस का भी बहुत बड़ा इन्तज़ाम था, परन्तु चतुरसिंह इस ख़तरे से अपने परिवार को बाहर निकाल ले जाना चाहते थे। वह वहाँ नहीं रुके और पूरे परिवार को लेकर दूसरे ही दिन मोटर से मेरठ आ गये। उन्होंने घर आकर साँस ली।

हरकली को चतुरसिंह की यह जल्दबाज़ी पसंद नहीं आई। आखिर उनका परिवार क्या मलाई का लड्डू था जो उसे मुसलमान मुँह में रख जाते। अग्निदत्त की स्त्री को भी मेले से इस प्रकार भाग आना अच्छा नहीं लगा। वह मेला देखने के लिए गई थी, परन्तु जेठजी के सामने तो साँस लेते भी उसे भय लगता था। वह कह तो कुछ सकती ही नहीं थी।

हरकली की ज़बान से निकला, "अब हम लोग फिर कभी पिताजी के साथ किसी मेले में नहीं जायेंगे।

अग्निदत्त की स्त्री ने भोले स्वभाव में हरकली की बात को 'पिताजी' के स्थान पर 'जेठजी' लगाकर दुहरा दिया।

इस दुहराने ने हरकली के दिल पर इस गँवार चाची ने एक गहरी चोट कर दी। चतुरसिंह, बिरादरी के इतने बड़े आदमी, के विरुद्ध एक शब्द भी कहने का उस गँवार चाची को क्या अधिकार था। हरकली एक विद्वान लड़की थी। वह अपने पिताजी के लिए कुछ कहने का अधिकार रखती थी। परन्तु वह अधिकार अग्निदत्त की बिना पढ़ी लिखी स्त्री को प्राप्त नहीं था।

अग्निदत्त की स्त्री एक गँवारु गाँव की रहने वाली और बिना पढ़ी-लिखी अवश्य थी, परन्तु मान-अपमान की तराजू उसके

मस्तक में भी सदा लगी रहती थी। हरकली के मन को पढ़ने में उसे देर न लगी और दोनों में झगड़ा हो गया। अग्निदत्त की स्त्री ने क्रोध में आकर खाना छोड़ दिया।

चतुरसिंह के पास इस बात की सूचना हरकली की माताजी द्वारा पहुँची, हरकली द्वारा पहुँची। चतुरसिंह की अपनी दृष्टि समाप्त हो चुकी थी, अपने कान मूँद चुके थे। अब हरकली ही उनकी आँखें थीं और वही उनके कान।

चतुरसिंह के लिए उसकी बात को ग़लत समझने का कोई कारण नहीं था। उन्हें अग्निदत्त की स्त्री की ग़लती पर क्रोध आया और अग्निदत्त को पत्र लिख दिया कि वह अपनी स्त्री को आकर ले जाय। चतुरसिंह ने अग्निदत्त की स्त्री से कोई बात पूछने या उसे अपनी बात कहने का अवसर देना आवश्यक नहीं समझा।

अग्निदत्त की स्त्री ने तीन दिन तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया और चतुरसिंह का सारा परिवार दोनों समय खाना खाता रहा। हरकली कभी-कभी अपनी कुटिल सफलता पर घर के किसी एकांत कोने में जाकर मुस्कराती और हँसकर अपने से ही कहती, 'मूर्ख कहीं की। यह समझती है कि यह भी पिताजी के दिमाग़ में अपने पति की ही तरह जड़ें जमा लेगी। मुझे देखनी हैं इनकी जड़ें। इस घर में अब हरकली की ही जड़ें जमेंगी। हरकली के भाई बहनों की जड़ें जमेंगी। अग्निदत्त और शक्तिसिंह की जड़ें नहीं जम सकतीं।'

अग्निदत्त के पास चतुरसिंह का पत्र पहुँचा। वह पढ़ कर सन्न रह गया। समझ में नहीं आया कि उसकी स्त्री ने कौन सा ऐसा बड़ा अपराध कर दिया कि जिसके बाद उसकी सज़ा उसको अग्निदत्त द्वारा वहाँ से ले आने के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकती थी।

अग्निदत्त को छुट्टी न मिल सकी। उसने एक रेलवे के अपने विश्वासपात्र कर्मचारी को अपनी स्त्री का रेलवे-पास देकर लेने

के लिए भेज दिया ।

अग्निदत्त की स्त्री तीन-चार दिन की भूखी अपने पति के भेजे हुए आदमी के साथ जाने को तैयार हो गई । उसने अपनी गाँठ-पुटलिया सँभाल ली। वह कटोरदान भी बाँध लिया जिसमें वह चतुरसिंह के बच्चों के लिए मिठाई लाई थी और जिसे हरकली ने ही बच्चों में तक़सीम किया था ।

जब अग्निदत्त की स्त्री चलने लगी तो उसके लड़के को भी पढ़ाई छुड़ा कर उसके साथ कर दिया गया । हेडमास्टर साहब की कोठी से, जिसके सामने बाग़ीचा था, और उसके सामने चार सौ लड़कों का स्कूल लग रहा था, जिसमें बीस-पच्चीस अध्यापक पढ़ा रहे थे, इधर-उधर स्कूल के चपरासी घूम रहे थे, घर का नौकर भी इस दृश्य को देख रहा था कि उनके छोटे भाई अग्निदत्त की स्त्री विदा हो रही थी ।

चतुरसिंह ने पूछा, "अगर पास पैसे हों तो वह उसके स्टेशन तक जाने को ताँगा मँगवा दें ।" ताँगा उन दिनों मुश्किल से चार आने में जाता था ।

अग्निदत्त की स्त्री ने साफ़ इंकार करके कहा, "मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है ।"

उसके पास एक दस रुपये का करारा नोट था जो अग्निदत्त ने चलते समय उसे दिया था। यहाँ से अग्निदत्त के पास तक पहुँचने के लिए रेलवे-पास था । वह मज़बूत थी अपने में परन्तु इम्तहान लेना चाहती थी अपने पति के पिता-तुल्य बड़े भाई का कि वह अपने छोटे भाई की इज्ज़त को कहाँ तक सँभालते हैं ।

चतुरसिंह के क्रोध का ठिकाना नहीं था यह उत्तर सुनकर । हरकली उन्हें सूचना दे चुकी थी । "चाची जी के पास दस रुपये का नोट है और वह ताँगा-किराया भी हमारा ख़र्च कराना चाहती हैं ।"

यह चतुरसिंह की दृष्टि में अग्निदत्त की स्त्री की ख़ुदग़र्ज़ी की एक ज़बरदस्त बात लाकर हरकली ने पेश की। चतुरसिंह की

दृष्टि से अग्निदत्त की स्त्री गिर गई और उन्होंने स्पष्ट उत्तर दे दिया, "अगर ताँगे के लिए पैसा नहीं है तो पैदल चले जाओ।"

जेठ के घर से पैदल जाना अग्निदत्त की स्त्री ने स्वीकार किया। अपने फ़ल से बेटे को साथ कर लिया। सामान कर्मचारी के सिर पर रख दिया और वह घर की देहलीज़ से बाहर हो गई।

यह चतुरसिंह के परिवार की वह लक्ष्मी पैदल तीन मील दूर स्टेशन पर जाने के लिए तैयार खड़ी थी जिसे एक दिन आठ कहारों की पीनस में बिठलाकर चतुरसिंह अपने छोटे भाई के साथ ब्याह कर लाये थे।

चतुरसिंह इस शादी में शानदार पढ़ी-लिखी बारात लेकर गये थे और जो सिक्का अपने बड़प्पन का उस गाँव तथा उसके आसपास के इलाके पर बिठाया था, वह भी अग्निदत्त की स्त्री की आँखों के सामने था। एक दिन उसके दिल में, उस छोटे से गाँव के एक कच्चे घर में विवाह के लिए उबटन मलकर बैठे हुए, जब यह आवाज़ पड़ी थी कि उसकी बारात गाँव के सिवाने में आगई, जिसमें रथों और घोड़ियों की गिनती नहीं थी, तो उसका दिल गुदगुदाया था। वैसी बारात उस गाँव में पहले कभी नहीं चढ़ी थी, यह गाँव के हर आदमी, हर बच्चे, बूढ़े और छोटी-बड़ी जाति वालों ने कहा था। फेरों के समय उसने अपने घूघट के ओढ़ने के सूराखों के बीच अपनी तेज़ और नौजवान नज़र को फैलाकर अपने जेठजी चौधरी चतुरसिंह की दाढ़ी देखी थी और उनका बड़प्पन देखा था।

परन्तु इस समय चतुरसिंह का वह बड़प्पन अग्निदत्त की स्त्री की नज़रों में ख़ाक के एक कण के समान था। उसकी अपनी नज़रों से चतुरसिंह ख़ुदगर्ज़ हो चुका था, अपनी लड़की के कहने पर चलने लगा था।

अग्निदत्त की स्त्री घर की चौखट से बाहर हुई तो उसे सामने स्कूल दिखाई दिया, जो एकदम शान्त था। घण्टी बज

चुकी थी और विद्यार्थी अपनी-अपनी कक्षाओं में जा चुके थे। क्लास-टीचर लोग अपनी-अपनी क्लास की हाज़री ले रहे थे। चतुरसिंह इस फ़िराक़ में था कि यह स्त्री जिसने तीन-चार दिन से उसके मस्तिष्क को ख़राब किया हुआ है उन्हें क्षमा करके चली जाय तो वह अपने काम से लगें, अपनी क्लास की जाकर हाज़री बोलें। वह अपनी नौकरी के फ़र्ज़ से चोरी नहीं करना चाहते थे।

अग्निदत्त की स्त्री ने सोचा था कि वह जेठजी की बड़ी इज्ज़त को रास्ते में मिलने वालों के सामने पेश करती हुई स्कूल के बिलकुल बराबर से आगे बढ़ेगी, परन्तु चौखट से बाहर निकलते ही उसे ध्यान आया कि नहीं, चतुरसिंह की इज्ज़त केवल उनकी अपनी इज्ज़त भर नहीं है, यह उनके अपने परिवार की इज्ज़त है। यह वह इज्ज़त है जिसकी रक्षा के लिए उसने रुखा सूखा खाया है और मोटा-झोटा पहना है।

वह स्कूल के दरवाज़े की ओर नहीं बढ़ी। बाँई ओर फुलवारी के पास लगने वाली सड़क पार करके चहारदीवारी पर चढ़कर सड़क पर उतर गई। और पैदल-पैदल चार दिन की भूखी स्टेशन के चार मील लम्बे रास्ते पर, अपने बच्चे को साथ लेकर, अग्निदत्त के भेजे हुए रेलवे कर्मचारी के साथ चल पड़ी।

वह भूखी थी। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। और एक जलन सी कभी-कभी उसके दिल में उठने लगती थी। आँखों में आँसू उमड़ आते थे, परन्तु उन्हें अन्दर-ही-अन्दर घोंट कर पी जाना उसे आता था। वह मौन थी और मन के ग़ुबार को मन में ही लिए आगे बढ़ रही थी।

अग्निदत्त की स्त्री ने इस परिवार में आकर आज तक जो कुछ भी उसकी मर्यादा को क़ायम रखने के लिए त्याग किया था वह स्वप्न के समान उसकी आँखों की पुतलियों में नाच रहा था और सबके बाद सामने आकर खड़ी हो जाती थी उस लम्बी दाढ़ी वाले चतुरसिंह की शक्ल जो इस परिवार के सदस्यों को

बन्दर और बंदरियों की तरह नचा रहा था।

उसे रह-रह कर क्रोध आ रहा था अग्निदत्त की सादगी और सरलता पर। उसका मन कहता था, 'कैसा पति मिला है उसे कि बड़े भाई की हाँ-में-हाँ मिलाने के अलावा कुछ जानता ही नहीं। ऐसा भी क्या मर्द जो अपनी औरत की इज्ज़त और बेइज्ज़ती को भी न समझे।'

: १० :

अग्निदत्त स्टेशन पर अपनी स्त्री को लेने गया। रात्रि के आठ बजकर पैंतीस मिनट पर गाड़ी पहुँची। ठीक समय पर गाड़ी आई और अग्निदत्त ने देखा कि रेल के डिब्बे से न केवल उनका कर्मचारी और पत्नी ही उतरे वरन् उनका लड़का भी साथ में था।

लड़के को देखकर अग्निदत्त का माथा ठनका। समझ गये कि अवश्य कुछ-न-कुछ काण्ड रचकर आई है उनकी स्त्री। बात कुछ गहरी ही है जो बड़े भाई साहब ने बच्चे को भी इसके साथ रवाना कर दिया।

पास में सामान कुछ था ही नहीं। कर्मचारी ने बच्चे को गोद में उठा लिया और तीनों रेल की लाइनें पार कर घर की ओर बढ़ लिए। घर तक एक शब्द भी कोई नहीं बोला। मानो तीन काठ के गढ़े हुए पुतले आगे-पीछे बढ़ते चले जा रहे थे।

अग्निदत्त ने आगे बढ़कर घर का ताला खोला। शायद अपनी स्त्री के जाने के पश्चात् आज ही अग्निदत्त ने क्वार्टर में झाड़ू लगवाई थी। सभी चीज़ों पर गर्द जमा हुआ था। फर्श पर भी पैर किरकिराते थे। परन्तु इन सब चीजों पर किसी का ध्यान नहीं गया।

दोनों ही यह सोच रहे थे कि आखिर यह मौन कैसे टूटे। मौन को तोड़ने में उनके लड़के ने योग दिया। वह बोला, "भूख लगी है बीबी! बहुत जोर की भूख लगी है।"

बच्चे की यह बात सुनकर अग्निदत्त की स्त्री की आँखों से आँसू बरस पड़े। अग्निदत्त से भी देखा नहीं गया। उसने बाहर

से क्वार्टर का दरवाज़ा बन्द करके लैम्प की बत्ती ऊँची करदी और डोली में से दो केले निकालकर लड़के के हाथों में देते हुए स्त्री की तरफ मुख़ातिब होकर कहा, "कपड़े बदल लो। इस तरह रोने से क्या लाभ है ? लड़के की पढ़ाई का नुक़सान करके इसे भी साथ ले आई, यह अच्छा नहीं किया तुमने। मैं जानता हूँ वहाँ हरकली से कुछ कहा सुनी हो गई होगी तुम्हारी।"

परन्तु अग्निदत्त की स्त्री के दिल का गुब्बार इन शब्दों से भला कहाँ शान्त होने वाला था। उल्टी और प्रज्वलित हो उठी क्रोध की ज्वाला। मानो अग्निदत्त ने जलती आग में घी की आहूति डाल दी, उसे और तेज़ कर दिया। इतने पर भी वह बोली नहीं एक शब्द।

अग्निदत्त ने अपनी स्त्री के झाँक कर देखा कि आग धक-धक करके जल रही थी। वह मौन थी और अब रोना भी बन्द हो चुका था। उसे लगा कि उसका पति उसके सिर पर से गुज़रने वाले इस तूफ़ान को इतनी आसानी से उड़ा देना चाहता है। वह बोली, "तुम्हारे घर में मेरा कितना बड़ा अपमान हुआ, इसका तुम्हें लेशमात्र भी ध्यान नहीं। क्या यह अपमान मेरा ही है, तुम्हारा नहीं ?"

उसके दिमाग़ में एक झुंझलाहट पैदा हो रही थी। उसे लग रहा था कि उसका पति उसके साथ सहानुभूति प्रकट न करके घोर अन्याय कर रहा है, अपने भाई की क्रूरता के नीचे दबकर असलियत को समझने का प्रयत्न नहीं कर रहा।

वह कुछ बोली नहीं फिर। अग्निदत्त को अब अपने विचारों के हल्केपन पर कुछ शर्म सी महसूस हुई और उसने प्यार का सहारा लेकर धीरे से अपनी स्त्री का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाते हुए कहा, "क्या भाई साहब ने खुद ही बच्चे को ले जाने के लिए कहा ? तुम अपनी इच्छा से इसे नहीं लाईं ?"

यह फुसलाहट का प्यार अग्निदत्त की स्त्री को अच्छा नहीं लगा वह पति से हट कर दूर हो गई और फिर एक भी शब्द

नहीं बोली। केवल रोती ही रही बहुत देर तक। उसमें शायद साहस भी नहीं था चतुरसिंह के ख़िलाफ़ एक शब्द कहने का। वह अपने पति की भाई की गुलामी से पूरी तरह परिचित थी। परन्तु उसका अपना मस्तिष्क उस गुलामी से उकता चुका था।

अग्निदत्त को बड़े भाई साहब के इस व्यवहार से थोड़ी ठेस लगी। अपनी स्त्री का इस प्रकार आना उसे इतना बुरा नहीं लगा जितना बुरा उसके साथ लड़के को भेज देना। बच्चे की तालीम पर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। यदि कोई भूल ही हुई थी तो वह अग्निदत्त की से स्त्री हुई थी, उसके बच्चे ने तो क़सूर नहीं किया था।

कई दिन तक अग्निदत्त और उसकी स्त्री में इस बात को लेकर बहस हुई कि क्या बच्चे को लेकर फिर बड़े भाई साहब की ही शरण में जाया जाय या उसे अपने पास ही रखकर तालीम दी जाय।

अग्निदत्त की स्त्री एक से लाख तक अपने बच्चे को मुंशी चतुरसिंह के पास भेजना नहीं चाहती थी, परन्तु अग्निदत्त ने बच्चे की पढ़ाई को ध्यान में रखते हुए और यह सोचते हुए कि रेलवे की नौकरी में जल्दी-जल्दी तबादले हो जाते हैं। कोई पढ़ाई का वातावरण नहीं बनता ऐसी दशा में उसका लड़का तालीम नहीं पा सकेगा, इसलिए यही मुनासिब समझा कि वह लड़के को लेकर फिर बड़े भाई साहब के ही पास जाय और मालूम करे कि उन्होंने ऐसा क्यों किया? उनके विचारों की इस तबदीली को वह निकट से देखना चाहता था। साथ ही डरता भी था वह उनसे।

ऐसा ही हुआ। अग्निदत्त अपने बच्चे को लेकर मेरठ पहुँचा; परन्तु वह सीधा अपने भाई साहब के मकान पर नहीं गया। चतुरसिंह के पास उनके ही गाँव के एक नायब अध्यापक कार्य करते थे। वह उनके मकान पर पहुँचा, और उन्हें साथ लेकर चतुरसिंह से मिला।

चतुर्रसिंह के सामने जाकर अग्निदत्त एक शब्द भी नहीं बोल सका। पीछे क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, मानो वह सब कुछ हुआ ही नहीं। दोनों भाइयों के दिलों की तख्तियाँ साफ थीं, उनके ऊपर से पुरानी लिखावट मिट चुकी थी, पुरानी रेखायें समाप्त हो चुकी थीं। आमने-सामने होते ही दोनों उसी प्यार और मुहब्बत से मिले जिस प्रकार पहले मिला करते थे। पिछली घटना के विषय में कोई बात ही नहीं हुई।

चतुर्रसिंह ने अग्निदत्त के लड़के को प्यार से उठाकर छाती से लगाया और अपने बच्चों के बीच खेलने के लिए छोड़ दिया।

सचमुच ही चतुर्रसिंह के छोटे लड़के को अग्निदत्त के लड़के के आजाने से बहुत प्रसन्नता हुई। उसका वह हमजोली था, साथी था, साथ-साथ खेलता था, साथ-साथ स्कूल जाता था और उसके चले जाने से वह अकेला रह गया था।

परन्तु हरकली, जो एक किवाड़ की बगल में खड़ी यह सब काण्ड देख रही थी, मन-ही-मन जल-भुन कर राख हो गई। एक डोर जिसे वह अपने पैने दाँतों से काट चुकी थी, अब फिर दो भाइयों के प्रेम में बँधकर एक हो जाना चाहती थी। उस डोर में बँधकर चलना हरकली को पसंद नहीं था। वह तो अपनी डोर को सब के सिर पर घुमाने का स्वप्न देख रही थी। उसे इस पुरानी पीढ़ी की चाल-ढाल से नफ़रत हो चुकी थी। वह इसे समाप्त कर देना चाहती थी। उसके विचार से उसके पिता जी का मस्तिष्क ख़राब हो चुका था। छोटे भाइयों के बच्चों-कच्चों को बेकार के लिए अपने परिवार के बीच में फंसाकर वह अपने परिवार की उन्नति में बाधक बन रहे थे। उन्हें अब चाहिए था कि वह सबकी डोर काट कर केवल अपने ही परिवार के रस्से को मज़बूती के साथ बल दें। उस रस्से पर उनके अपने ही बाल-बच्चे मौज की पींगें बढ़ायें और बिरादरी तथा आस-पास के बड़े-बड़े लोग यह देखें कि यह चौधरी चतुर्रसिंह का परिवार है।

चतुर्रसिंह को अब केवल अपने ही परिवार की गाड़ी पर

सवार होना चाहिए और इस सारे परिवार के कूड़े-करकट की गाड़ी की बहलवानी से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। तीन-तीन परिवारों का सिर दर्द और उनकी समस्याओं को अपने दिल और दिमाग़ में लेकर चलना हरकली की दृष्टि में उनकी नादानी थी।

हरकली की दृष्टि में अब चौधरी आभाराम का परिवार समाप्त हो चुका था। यह मुंशी चतुरसिंह का परिवार था। उनके विचार से शक्तिसिंह और अग्निदत्त के बाल-बच्चे चतुरसिंह पर व्यर्थ भार थे और इसीलिए उन्हें अब अपना सम्बन्ध उनसे विच्छेद कर देना चाहिए। उन सबसे अपने को नत्थी करके चलना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं थी, व्यर्थ की दिमाग़पच्ची थी।

परन्तु यह दशा चतुरसिंह के मस्तिष्क की नहीं थी। वह अपने छोटे भाई अग्निदत्त को भुलाकर नहीं चल सकता था। उसे पता था कि अग्निदत्त ने इस परिवार को कठिन समय में कितना बड़ा योग दिया था? अग्निदत्त का वह योग चतुरसिंह की दृष्टि में किसी प्रकार कम कर देना हरकली की शक्ति से बाहर की बात थी। हरकली की सभी चालें, जो उसने चतुरसिंह के मस्तिष्क से अग्निदत्त को निकाल फेंकने की कीं, अग्निदत्त के सामने आते ही बेसूद हो जाती थीं। हरकली के अन्दर कुढ़न थी इसी बात को लेकर।

हरकली के अन्दर भीतर-ही-भीतर एक घुटन पैदा होती जा रही थी। अग्निदत्त के लड़के का इस प्रकार वापस आ जाना, और अपने छोटे भाई के साथ उसका प्यार से स्कूल जाना खेलना-कूदना तथा चतुरसिंह का उससे प्यार से बोलना उसके दिल में काँटे की तरह चुभता था। वह सहन नहीं कर सकती थी अपने परिवार की इस चाल-ढाल को। वह अनुभव कर रही थी कि उसके पिताजी बहुत सख्त ग़लती कर रहे हैं। उनका यह पुराना चलन हरकली की प्रगतिशील नज़रों में हेय होता जा रहा था।

अग्निदत्त ने अपने लड़के का खर्च भी चतुर्सिंह के सिर मढ़ कर जिस चालाकी का सबूत दिया था उसे इस परिवार भर में केवल हरकली की ही अक्ल पहचान सकती थी, अन्य कोई नहीं।

हरकली के मन में अपनी चाची के प्रति पहले से ही घृणा थी। इसी बीच हरकली के भाई का गौना होकर आया और गौने में न केवल बहू ही न आई वरन् दान-दहेज से भी चतुर्सिंह का घर भर गया। रजाई, बिछौने, तीयलें और न-जाने क्या-क्या सामान था ? इस सामान को देखकर न केवल हरकली की माँ की ही आँखें फटी रह गई वरन् हरकली भी फूलकर गुमान में कुप्पा हो गई।

चतुर्सिंह की दृष्टि जब इस लम्बी-चौड़ी दात-दहेज पर फैली तो उन्होंने भी गर्व का अनुभव किया और महसूस किया कि वह कितने बड़े आदमी बन गये हैं।

शक्तिसिंह के लड़के को दहेज भी उन्होंने देखी थी, परन्तु उसमें और इसमें आकाश-पाताल का अन्तर था। यह सब ठाट-बाट रईसाना था और वह एक मामूली किसानू लेन-देन। इसकी-उसकी समानता ही क्या ? वह एक किसान के बेटे की दहेज थी और यह एक हेडमास्टर के बेटे की। वहाँ समधी भी एक साधारण किसान ही था और यहाँ समधी भी एक उनकी अपनी ही टक्कर का हेडमास्टर था।

दान-दहेज आई और समेट कर चतुर्सिंह के घर में भर ली गई। न तो शक्तिसिंह के ही हिस्से के कपड़े उसके पास पहुँचाने की चतुर्सिंह ने आवश्यकता समझी और न अग्निदत्त के ही।

बात कपड़ों की उतनी नहीं थी जितनी भाइयों के मान-सम्मान की थी। इस बात को शक्तिसिंह और अग्निदत्त दोनों ने ही महसूस किया। शक्तिसिंह तो इस बात को ज़बान पर भी ले आये परन्तु अग्निदत्त ने कभी ज़बान पर लाना भी उचित नहीं समझा। चतुर्सिंह के इस व्यवहार ने अग्निदत्त का दिल खट्टा अवश्य कर दिया और उसने उसी दिन से यह अनुभव करना

प्रारम्भ कर दिया कि अब उसके बड़े भाई साहब, वह पुराने वाले बड़े भाई साहब नहीं रह गये हैं, कि जिन्होंने सोने की दोनों चीजें उनके हाथों में देकर कह दिया था, "अग्निदत्त जिनके लिए तुमने इन्हें बनवाया है उन्हें हो दे दो।"

एक ओर जहाँ ये घटनायें घट रही थीं वहाँ दूसरी ओर चौधरी शक्तिसिंह का स्वास्थ्य साथ छोड़ता जा रहा था। अग्निदत्त के पास से लौटने पर वह जितने दिन भी सिरसे में रहे उनका स्वास्थ्य बराबर बिगड़ा ही, उसमें कोई सुधार न हो सका। एक तो वहाँ कोई उनकी देख-भाल करने वाला नहीं था। उनकी बहन थी अकेली और रुपये-पैसे की भी उनके पास तंगी ही थी।

चतुरसिंह को शक्तिसिंह की इस बीमारी का पता था, परन्तु उन्हें इस ओर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। हरकली चतुरसिंह के भाइयों की चालों को उनके सामने स्पष्ट रूप से खोल-खोल कर रखती थी। कहती थी "चाचा शक्तिसिंह का लड़का रामदयाल पुलिस में दीवान है अच्छी खासी आमदनी कर रहा है। फिर चाचा जी की बीमारी में आप रुपया खर्च करें, उनकी देख-भाल के लिए परेशान हों, इसकी कहाँ आवश्यकता है ? इस दिशा में आपका चिन्ता करना व्यर्थ है। यह चाचाजी की चाल है कि वह रामदयाल से अपना इलाज न कराके आपका ही मुँह ताकते रहते हैं।"

हरकली का तर्क काफ़ी सशक्त था। उसके सामने चतुरसिंह जैसे नामी अक्ल के आचार्य की गर्दन झुक गई। मन में कई बार यह आने पर भी कि वह शक्तिसिंह का इलाज करायें, न करा सके। उनके सामने अपने बाल-बच्चों के हक़ का प्रश्न था।

उन्होंने गम्भीरतापूर्वक सोचा "मैं अपने बच्चों के हक़ का पैसा शक्तिसिंह की बीमारी में खर्च करूँ, इसका मुझे कोई अधिकार नहीं है।"

चतुरसिंह ने अपने को हर दिशा में धर्म-संकट में घिरा

हुआ पाया। वह मजबूर थे। अपने बच्चों की हक़तलफी करके वह भाई का उपचार नहीं करा सकते थे। चतुरसिंह के परिवार का प्रबन्ध अब लगभग हरकली ने ही अपने कंधों पर ले लिया था। उसकी राय के सामने चतुरसिंह को नतमस्तक हो जाना पड़ता था, क्योंकि उसकी बातें तर्क से शून्य नहीं होती थीं और चतुरसिंह एक आर्यसमाजी नेता होने के नाते तर्क और न्याय के सम्मुख सर झुकाने को हर समय तैयार रहते थे।

धीरे-धीरे एक दिन शक्तिसिंह के प्राणों पर ही आ बनी। वह बिल्कुल अशक्त हो गये। उनकी ऐसी रुग्णावस्था में उनकी स्त्री भी उनके पास नहीं थी। वह अपने पिता की सेवा कर रही थी। पिता की सम्पत्ति पर छाती टिकाये बैठी थी।

आखिर शक्तिसिंह एक दिन अपने बेटे रामदयाल के ही पास चला गया। ऐसी दशा में अग्निदत्त के पास इतनी दूर जाते उसे भय लगा।

रामदयाल की आँखों में अपने पिता की यह दशा देख कर आँसू उमड़ आये और उसने उनके जीवन के अंतिम दिनों में जो कुछ भी वह कर सकता था, सभी कुछ किया। परन्तु वह शक्तिसिंह को बचा न सका। लाख इलाज किया, परन्तु सब बेसूद। शरीर रोग ने लिखा या था।

एक दिन वह आ ही गया जब शक्तिसिंह के प्राण पखेरू उड़ गये और उसके दो लड़के, एक लड़की और स्त्री बिलकुल निराधार, ऊपर आकाश और नीचे पृथ्वी के बीच, बैठे रह गये। इन प्राणियों के इस समय संसार में केवल दो ही सहारे थे, एक रामदयाल, जो पुलिस में दीवान था, और दूसरा शक्तिसिंह के ससुर। शक्तिसिंह की स्त्री अपने पिता की अकेली संतान थी।

अग्निदत्त और चतुरसिंह को रामदयाल ने अपने पिता के मरने की सूचना दी। दोनों भाई अपनी स्त्रियों सहित इस शोक-समाचार को पाकर आँसू बहाने के लिए वहाँ पहुँचे। शक्तिसिंह इस असार संसार से जा चुका था और उसके पश्चात् यह

लोकाचार की प्रथा भी समाप्त हो गई ।

दो-चार दिन के शोक के पश्चात् सब लोग अपने-अपने काम से लग गये और कुछ भूल-से गये कि इस बड़े परिवार का एक बड़ा टहना टूट कर ज़मीन पर गिर पड़ा। वह टहना सूख गया, समाप्त हो गया, परन्तु उसकी दो शाखाएँ अभी जीवित हैं। उनमें प्राण है और शक्ति भी है आगे बढ़ने की ।

: ११ :

हरकली जब ऊपरी कतरब्योंत में सफल न हो सकी तो उसने अपनी पीढ़ी पर अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। उसकी पीढ़ी के उसके परिवार, यानी चतुरसिंह के बाल-बच्चों में केवल उसके दो भाई, एक वह स्वयं और एक छोटी बहन थी।

अग्निदत्त का लड़का भी इन सभी के बीच में रहता था, परन्तु वह हरकली की दृष्टि में एक बाहर का प्राणी था, जिसका इस परिवार में रहने और खाने के पश्चात भी उसकी मंत्रणाओं में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं था।

अग्निदत्त का लड़का और हरकली का छोटा भाई सातवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। हरकली का बड़ा भाई दसवीं कक्षा में था। हरकली की छोटी बहन आर्य कन्या पाठशाला में पढ़ने जाती थी और स्वयं हरकली का भी अध्ययन चल रहा था।

हरकली विवाह से पूर्व ही दर्जा चार पास कर चुकी थी और वैधव्य ने तो मानो उसकी समस्त शक्तियों को पढ़ने और चतुर सिंह के परिवार की देख-भाल और उसके संरक्षण की दिशा में ही मोड़ दिया। उसके जीवन के अब ये ही दो लक्ष्य थे। दिमाग़ हरकली का कुछ ख़ास अच्छा नहीं था परन्तु उसने अपने पिताजी से सुना था :

गर पत्थर पै पानी पड़े मुत्तसिल।
तो बेशुबह घिस जायगी पत्थर की सिल॥

इन पंक्तियों ने हरकली के दिल और दिमाग़ को उत्साह से भर दिया। अपने पिताजी का हेडमास्टरी का चमत्कार वह देख रही थी। वही लक्ष्य उसके भी सामने था।

हरकली ने एक बार आरामतलबी में ज़ंग खाये हुए अपने मस्तिष्क को फिर से किताबों की सान पर रगड़ना प्रारम्भ कर दिया और जहाँ कहीं कोई बात दिमाग़ से समझ में न आई, वहाँ उसे रट कर हिफ़्ज़ याद कर लेने से ही काम चलाया। इम्तहानों में जो उत्तर लिखे जाते हैं उन्हें लिखना भर विद्यार्थी के लिए आवश्यक होता है, समझना नहीं, यह राज़ हरकली से छिपा हुआ नहीं था।

हरकली का बड़ा भाई इस समय इस परिवार का सब से अधिक पढ़ा-लिखा इन्सान था। वह अंग्रेज़ी की दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था। उसके इरादे भी बहुत बुलन्द थे। वह हरकली से बातों के दौरान में कहता था, "मुझे कोई बहुत बड़ा काम करना है जीजी, भाई रामदयाल पुलिस में दीवान है नाचीज़ है यह नौकरी। चाचा जी रेलवे में बाबू हैं, हक़ीर है यह मेरी दृष्टि में, पिता जी हेडमास्टर हैं, सो वह भी कुछ ख़ास चीज़ नहीं है मेरे जैसे तालीमयाफ़्ता के लिए।"

वह व्यापार करना चाहता था। क़द का नाटा ही था। परन्तु विचारों की बुलन्दी उसमें ग़ज़ब की थी। अपने मन से वह पहलवान था, लट्ठबाज था, बिन्नौट के हाथ और पैंतरों में भी वह माहिर था, विद्वान् था, क्या नहीं था वह ? वह जहाँ भी रहता था अपना रौब क़ायम करके रहता था।

स्कूल में जिस दिन वह भर्ती हुआ था उसी दिन उसके हिन्दी के अध्यापक महोदय ने उसके गाल पर एक तमाचा रसीद किया था। बस, वह तमाचे का लगना था कि वह उसी दिन से अध्यापकों का विद्रोही हो गया। अपने इस विद्रोह के कितने ही क़िस्से वह जब स्वयं अपनी ज़बान से सुनाता है तो बड़ा लुत्फ़ आ जाता है। उसका दावा है कि उसके स्कूल का कोई भी अध्यापक, जिसने उसकी ओर आँखें निकालीं, ऐसा नहीं बचा, जिसकी उसने ठुकाई की या कराई न हो। वह स्कूल की हॉकी-टीम का कैप्टिन भी रहा है और उसका एक बार हेडमास्टर महोदय ने

किसी अध्यापक को पीटने के अपराध में रस्टीकेशन भी कर दिया था।

ये सभी उसके गुण थे। परन्तु उसकी दिलेरी, बहादुरी, चतुराई, विद्वता और दानिशमन्दी दिखलाने का दायरा अधिकतर उनके अपने परिवार की चहार दीवारी के अन्दर ही सीमित रह गया। बाहर न निकल सका। इसका वार घर के आदमियों पर ही चला और वे ही बेचारे इसके शिकार हुए।

शक्तिसिंह के मरने के पश्चात् सिरसे की ज़मीन लावारिस हो गई। यह अवसर हरकली ने अच्छा देखा और भाई ज्ञानव्रत को सलाह दी कि वह जाकर ज़मीन पर अधिकार कर ले। बड़ी बहन की आज्ञा सिर-माथे पर रखकर ज्ञानव्रत ने सिरसे को प्रस्थान किया और बन्द पड़े मकान का ताला खोल कर पहले उसी पर दख़ल लिया, कब्ज़ा किया।

ख़ाली पड़े मकान के अन्दर निर्विरोध घुसकर ज्ञानव्रत ने अपने दोनों भुजदण्डों की तरफ़ गर्व के साथ देखा। उसका हृदय उमंग से भर गया कि उसकी शक्ति के सामने यहाँ कोई भी उसका विरोध करने वाला नहीं था। उसे ख्याल था कि शायद कहीं किसी कोने में शक्तिसिंह की भूतात्मा छिपी न बैठी हो; परन्तु वह उसे वहाँ नहीं मिली। वह निर्विरोध घर के हर कोने में झाँकता फिरा, परन्तु किसी ने सामने पड़कर उसे रोकने का प्रयत्न नहीं किया।

इसी बीच मुंशी चतुरसिंह का मेरठ से तबादला हो गया। यह घटना हरकली के कार्यक्रम पर तुषारापात की तरह आई। तबादला होना था कि मानो पूरे परिवार के तार-तार छिन्न-भिन्न हो गये। पूरा परिवार एक जगह मेरठ जैसे बड़े शहर में मुफ्त की कोठी के अन्दर रह कर ऐश कर रहा था, बच्चों की तालीम चल रही थी।

बच्चों की पढ़ाई का प्रश्न सबसे पहले सामने आया। हरकली ने परिस्थिति की गम्भीरता पर विचार किया। मुफ्त

का मकान छिना और फिर परिवार दो जगह बँट गया। ख़र्च भी दूना हो गया। उसने तुरन्त पिताजी को सलाह दी, "आप अग्निदत्त चाचाजी को बुलाइये और यह समस्या उनके सामने रखिये। बच्चों की पढ़ाई का एक अहम प्रश्न है। उनके ख़र्चे का भार अब कौन सिर पर ले? बच्चों ने यहीं रहकर तालीम पाई तो उनका खर्च चौगुना हो जायगा। मेरे विचार से तो यह बच्चों का ख़र्च अब आपको और चाचाजी को आधा-आधा सँभालना चाहिये। अकेले आप पर ही यदि यह पड़ा तो हमारे इतने बड़े परिवार का ख़र्चा कैसे चलेगा? चाचाजी को इसमें, मैं समझती हूँ, कोई ऐतराज नहीं होना चाहिए।"

यह बात चतुरसिंह की अक़्ल को भी न्यायसंगत जँची। अग्निदत्त का एक लड़का और इनके चार बच्चे तालीम पायेंगे। परन्तु ख़र्च दोनों आधा-आधा ही दें, क्योंकि परिवार अभी तक सम्मिलित है। उसे चलाने का उत्तरदायित्व जितना उन पर है उससे किसी प्रकार भी कम अग्निदत्त पर नहीं। जहाँ उत्तरदायित्व का प्रश्न आता था वहाँ चतुरसिंह और हरकली की विचारधारा सम्मिलित परिवार के रूप में ही विचार करती थी।

अग्निदत्त आया और उसके सामने यह समस्या चतुरसिंह ने रखी, "अग्निदत्त! परमात्मा हम लोगों की परीक्षा ले रहा है। अच्छे-ख़ासे बैठे-बिठाये और कुछ नहीं तो मेरा तबादला ही हो गया। परन्तु जो सिर पर आई है, उसे तो साहस के साथ सहन करना ही है। मैं चाहता हूँ कि बच्चे यहीं रह कर पढ़ें। जो खर्च होगा उसका आधा मैं दे दिया करूँगा और आधा तुम दे देना।"

"जैसी आपकी आज्ञा।" अग्निदत्त ने दो शब्दों में उत्तर दिया। बड़े भाई साहब की बात को ना कहना तो अग्निदत्त ने सीखा ही नहीं था।

हरकली ने एकांत में जाकर अपनी अक्ल की स्वयं ही मुक्त कंठ और मुक्त हृदय से सराहना की। उसने अपनी समझ से आज

अग्निदत्त चचा को उल्लू बनाया और अपने भाई-बहनों का आधा खर्चा उसके कन्धों पर लाद कर सन्तोष की साँस ली। उसका दिल खुशी में फूल कर अपने अन्दर-ही-अन्दर कह रहा था, "चचा! यह हरकली का हुक्म है, चतुरसिंह का नहीं। अभी नहीं समझ सकोगे तुम इसे। परन्तु वह दिन भी दूर नहीं है जब सब कुछ समझ सकोगे तुम।"

मेरठ शहर में एक छोटा-सा मकान किराये पर ले लिया गया। छः रुपये माहवार का मकान और वह भी केवल आधा ही था उनके पास; परन्तु हरकली के दिमाग़ में हेडमास्टर की कोठी घुसी हुई थी। वह कोठी, जिसके चारों ओर खुशबूदार फूलों का बाग़ीचा था और शुद्ध हवा चारों ओर बहती थी; जहाँ बेला, चमेली और गुलाब महकते थे। इस तीन रुपये के मकान को कोठी बनाने के लिए हरकली ने पिताजी का मेरठ से तबादला होते समय कोठी के सब गमलों को उसी मकान में पहुँचा दिया था। ये गमले एक-से-एक भारी थे। ताड़, चमेली, जूही, गुलाब, रातरानी सभी पौधों के गमले थे। मकान का आधे से अधिक चौक गमलों से भर गया। एक तो चौक ही बहुत बड़ा था फिर उसमें आ बसे ये गमले। हिलने-जुलने और खाट बिछाने तक की मुसीबत हो गई। देखने वाला यह देखकर समझ नहीं सकता था कि उस मकान में हरकली के भाई-बहन बसेंगे या वे गमले।

गमलों के पौधे तादाद में काफ़ी थे, परन्तु उस सड़े हुए मकान के वायु-मण्डल को शुद्ध न कर सके। कुछ ही दिन पश्चात् यह मकान बदल कर दूसरा मकान लिया गया। परन्तु किराये की तो वही सीमा थी। यह दूसरा मकान हवा के विचार से पहले से कुछ साफ़ था, परन्तु था इतना टूटा-फूटा कि बरसात की बहुत कम बूँदें उसकी छत सँभाल पाती थीं। इसकी मुडेरें हरकली के गमलों के बोझ से तरेरें खा गई परन्तु ग़नीमत यही थी कि मकान-मालिक उस मकान में नहीं रहता था, वरना शायद

ही वह हरकली के इन गमलों को अपने मकान में बसने की आज्ञा देता। मकान उसने हरकली और उसके भाई-बहनों के लिए दिया था, नर्सरी खोलने के लिए नहीं। बेचारा किसी तरह काम चला रहा था इस टूटे-फूटे मकान के किराये से अपने परिवार का, और उसके इसी सहारे की छाती पर लाकर जमा दिये हरकली ने अपने भारी-भारी गमले।

इस मकान में दो परिवार रहते थे, एक हरकली का परिवार और दूसरा एक वकील के मुहर्रिर महोदय का, जो हरकली की ही बिरादरी के थे। स्त्री और पुरुष, ये केवल दो ही प्राणी थे। नये-नये गाँव से आये थे और स्त्री तो शायद पहली ही बार शहर में आई थी। हरकली की दृष्टि में यह बे-पढ़ी औरत भला क्या जच सकती थी ?

उस स्त्री ने भी हरकली पर एक दृष्टि फेरी और उसके चाल-ढाल को परखा। वह देखती थी कि हरकली अपने परिवार के दो छोटे लड़कों में से एक को पीने के लिए लुका-छिपाकर दूध देती है और दूसरे को कभी पूछती तक नहीं, एक को वह ताज़े बने फुलके देती और दूसरे को बासी ही फुलके रोज़ाना खिलाने का प्रयास करती है, एक को खूब तरमतर चुपड़े हुए घी-चूते फुलके खाने को देती है तथा दूसरे के फुलकों पर नाममात्र के लिए घी में रगड़ कर गीला कर देती है, एक की साग की कटोरी में वह घी डालती है तथा दूसरे को यों ही रूखा-सूखा साग देकर पाप काटती है।

कुछ दिन बाद उसे पता चला कि उनमें एक लड़का हरकली के चचा का है और दूसरा उसका अपना सगा माँ-जाया भाई। गाँव की गँवार स्त्री पर इस व्यवहार का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसके मन में हरकली के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। एक चूल्हे पर दो तरह खाना खिलाना उसे नापसन्द था। उसने समझा कि शायद पढ़े-लिखे लोगों की सभ्यता का यही नमूना हो। इसलिए कुछ दिन तो वह चुप रही। परन्तु एक दिन उससे रहा

नहीं गया और वह कह ही बैठी "हरकली, कभी इस दूसरे लड़के को भी थोड़ा-सा दूध दे दिया करो। तुम एक चूल्हे पर दो बच्चों को दो तरह का खाना खिलाती हो यह तो हम बिना पढ़ी-लिखी औरतें भी नहीं करतीं।"

हरकली होठ पिचका कर बोली, "इतना दूध कहाँ से लाऊँ, चाची! यह शहर है, गाँव नहीं कि भैंस का दूध निकल कर आता है। यहाँ तो सब चीज टकों से आती हैं। अगर दूध ही पीना है तो यह दूध के रुपए अलग से ले आया करे अपने पिताजी से।"

चाची बेचारी चुप हो गई। सोचती रही बहुत देर तक इन टकों की बात को, वह बाहर की चाची। हरकली के घर के मामलात का भला उसे क्या पता था? उसे क्या पता था कि उनके टकों का क्या प्रबन्ध था? इस राज़ का उसे क्या पता था कि यहाँ जो कुछ भी इस पूरे परिवार पर खर्च होता है उसका आधा रुपया उसी लड़के का पिता अग्निदत्त देता है, जिससे कि दूध का अलग से रुपया हरकली तलब कर रही है।

हरकली ने आज टका सा जवाब देकर इस गँवार चाची का मुँह बन्द कर दिया। परन्तु उसके हृदय में यह बात बराबर खटकती रही कि आख़िर उसने हरकली के घर के मामलात में ऐसा दख़ल देने की गुस्ताख़ी किस प्रकार की। उसे क्या अधिकार था हरकली से ऐसा सवाल करने का। साथ ही उसके मन में यह शंका भी हुई की कहीं उसकी ये बातें अग्निदत्त चाचाजी और चाचीजी के कानों तक न पहुँचें।

हरकली की अब और अधिक इस बाहरी चाची से न पट सकी। हरकली की तेज़ी को भला वह बेचारी कहाँ पहुँच सकती थी। उसने उसका रहना दूभर कर दिया। उधर उसका खाना बनाने का समय होता और हरकली नल पर दख़ल जमाकर बैठ जाती। चाची बेचारी अपने आदमी के कचहरी जाने के समय पर खाना ही न बना पाती। वह तंग आ गई हरकली की हरकतों से। उसे देर होती और यह मुस्कराती, इठलाती,

गुनगुनाती और झूम-झूम कर मस्ती में उसका मज़ाक बनाती। पूछती, "चाचाजी कचहरी नहीं गए अभी। चाचीजी तुम भी क्या हो ? अभी तक खाना भी नहीं बना सकीं। मुझे देखो न, सब बच्चों को टंच करके स्कूल भी भेज दिया और अब मैं भी जा रही हूँ अपने स्कूल। एक तुम हो कि अभी चूल्हा ही फूँके जा रही हो।"

चाची हरकली की मक्कारी पर कुढ़ती और कुछ न बोलती। एक दिन वह आया कि जब यह मकान भी छोड़कर दोनों परिवारों को पृथक्-पृथक् मकान तलाश करना पड़ा। मकान तलाश करने में अधिक देर न लगी। हरकली ने मकान मिलते ही दोनों छोटे लड़कों को आज्ञा की, "बच्चों, आज मकान बदलना है। पहले ये गमले सिरों पर ढो-ढोकर उस मकान में पहुँचादो और फिर एक हाथ का ठेला ले आना। उस पर हम सब सामान लदवा देंगे और तुम दोनों उसे भी वहाँ ले जाना। आज सब सामान नए मकान में पहुँच जाना चाहिए।"

अग्निदत्त का लड़का, जो कि पहले से ही हरकली के व्यवहार को महसूस करने लगा था, यह तमाशा बरदाश्त न कर सका। सिरों पर गमले ढोना उसे पसन्द नहीं था। उसे अपने यार-दोस्तों के सामने सिर पर सामान ढोने में शर्म आती थी। यह काम वह नहीं करना चाहता था। उसने स्पष्ट कह दिया, "जीजी, चाहे बुरा मानो या भला, मैं ये गमले सिर पर ढोकर उस मकान में नहीं ले जाऊँगा। मेरी तबियत ख़राब है, मैं यह काम नहीं करूँगा।"

इतना कहना था कि हरकली आग-बबूला हो उठी। उसके क्रोध का पारावार नहीं रहा। परन्तु अग्निदत्त के लड़के ने इसकी किंचित-मात्र भी चिंता न की। उसने सोचा कि चाहे यहाँ रहना हो, या न हो, परन्तु यह काम वह नहीं करेगा।

"तो फिर यह सामान कौन ढोयेगा ?" हरकली ने क्रोध में भरकर पूछा।

"मैं नहीं जानता। यह आपका काम है, आप जानें।" संक्षेप में अग्निदत्त का लड़का बोला।

"यह मेरा काम है? इस सामान को मैं सिर पर रख कर ढोती फिरूँगी? क्यों? अगर ऐसा ही लाट साहब बनना है तो चाचा जी से कहो कि एक नौकर भेज दें।" खिसियाकर हरकली बोली।

"भेज दें, या न भेज दें, यह तुम जानो, वह जानें, परन्तु मैं ये गमले सिर पर नहीं ढो सकता। मैं बस इतना ही जानता हूँ।" स्थिरता के साथ उसने कहा। और आज उसकी दृढ़ता में किंचितमात्र भी बल नहीं था, ख़म नहीं था।

"नहीं ढो सकता, तो निकल जा घर से! मैं ऐसे नालायक बच्चे को घर में रखना पसंद नहीं करती।" हरकली ने क्रोध में भर कर कहा।

अग्निदत्त का लड़का "बहुत अच्छा, जीजी!" कहकर घर से चल दिया। उसने आज मज़बूती के साथ सोच लिया था कि वह हरकली के नीचे दबकर अब नहीं रहेगा।

उसे पता था कि यहाँ का आधा ख़र्च उसका पिता देता है। ये चार चार खाते हैं और वह अकेला। फिर जैसा खाने को उसे दिया जाता था है, वह भी उससे छिपा नहीं था। यों कहता वह कभी किसी से कुछ नहीं था, परन्तु जानता भी नहीं था, यह बात नहीं थी।

अग्निदत्त के लड़के को घर से हरकली ने निकाल तो दिया, परन्तु वह अन्दर-ही-अन्दर थरथरा उठी। उसने मन से अपनी भूल अनुभव की कि उनका सबका आधा ख़र्च अग्निदत्त भेजता है।

परन्तु हरकली के भाई ज्ञानव्रत ने उसके काम का समर्थन ही किया। पैसे की इस गहराई तक अभी उसका दिमाग़ नहीं जाता था। उसके नये ख़ून में अभी वह पैठ नहीं थी जो हरकली के ख़ून में थी।

अग्निदत्त का लड़का खरामा-खरामा रेलवे स्टेशन की ओर

हो लिया और बेफ़िक्री के साथ जाकर उस रेल में बैठ गया जो संध्या को यहाँ से चलकर रात्रि के नौ बजे सहारनपुर पहुँचती थी। अग्निदत्त अब सहारनपुर में था। सर्दी के दिन थे। ठंडी हवा चल रही थी। आकाश बादलों से आच्छादित था। पत्थर के कोयलों की अंगीठी जली रखी थी और उसके दोनों ओर अग्निदत्त और उसकी स्त्री बैठे आग ताप रहे थे। अग्निदत्त ने कमर पर कम्बल ओढ़ा हुआ था। दोनों में बातचीत चल रही थी।

"जेठजी का मन बेईमान हो चुका है। वह अपने बच्चों की बातों का हमारी बातों से अधिक यकीन करने लगे हैं।" अग्निदत्त की स्त्री ने कहा।

"यह बात नहीं है देवी! तुम्हारा ख़याल ग़लत है। भाई साहब चाहे अपने बच्चों की कितनी ही बातें क्यों न मानने लगे हों, परन्तु वह बेईमानी नहीं कर सकते। जिसका जो हक़ है, उसी को वह देंगे।" अग्निदत्त ने दृढ़तापूर्वक कहा।

भगवान जाने। परन्तु मेरा विश्वास तो अब उठता जा रहा है उन पर से।" अग्निदत्त की स्त्री बोली।

"ऐसा मत समझो देवी! भाई साहब बेईमान नहीं हो सकते। उनकी ईमानदारी में मैं अविश्वास नहीं कर सकता", अग्निदत्त ने कहा।

ये बातें चल ही रही थीं कि इसी समय किसी ने बाहर के दरवाजे का कुंडा खटखटाया और साथ ही 'बीबी-बीबी' कहकर आवाज़ दी। वह जाड़े से थरथरा रहा था, उसके दाँत किट-किटा रहे थे। आज शात बहुत अधिक था और पिछले ही दिन पहाड़ों पर इतनी ज़बरदस्त बर्फ़ पड़ी थी कि उसका असर यहाँ के वायुमंडल पर छाया हुआ था।

अग्निदत्त की स्त्री ने पहचान कर कहा, "जरा कुण्डी तो खोलो, राजू की आवाज़ मालूम देती है।" और वह स्वयं भी दरवाज़े की तरफ लपकी।

"राजू की आवाज़ !" आश्चर्यचकित होकर अग्निदत्त बोला। और वह तुरन्त कुण्डी खोलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

दरवाज़ा खुला तो राजू सामने खड़ा ठंड में थरथरा रहा था। अग्निदत्त ने अपना कम्बल तुरन्त उसके चारों ओर लपेट कर उसे गोद में उठा लिया। अग्निदत्त की स्त्री भी उसी ओर लपकी और उसने दरवाज़े की कुण्डी चढ़ा दी, जिसके अन्दर से सर्दी की काटखाने वाली हवा घुसी चली आ रही थी।

राजू का इस प्रकार अकेले चले आना कोई बड़ी बात नहीं थी। इस समय तो वह दर्जा सात में पढ़ रहा था और आया भी अकेला ही था। अग्निदत्त की स्त्री की आँखों में उसका वह दिल्ली आने का चित्र घूम रहा था, जब वह पांचवीं कक्षा में पढ़ता था और उसकी उम्र केवल दस वर्ष की थी। बिल्कुल यही समय था, जब उसने दिल्ली के क्वार्टर का दरवाज़ा खटखटाते हुए "बीबी" कह कर आवाज़ दी थी।

उस दिन भी आज की तरह बिजली कड़कड़ा रही थी और बादल आसमान में घिरे हुए थे। नन्हीं-नन्हीं बूँदें बरस रहीं थीं और सर्द हवा शरीर को सुन्न करती हुई फर्राटे भर रहा थी। उस दिन वह अपने अंधे फ़फाजी को लेकर आया था और आया भी था, बिला टिकट। बिला एक पैसा किराये का दिये हुए ही मुंशी चतुर्रसिंह जैसे क़ाबिल आदमी ने इस बच्चे को भेज दिया था, क्योंकि रेल में उनका भाई मुलाज़िम था, एक बाबू यानी अफसर था ; मालिक था वह रेल का। उस दिन भी चतुर्रसिंह की इस लापरवाही और राजू के साथ की गई अव्यावहारिक घटना को लेकर अग्निदत्त और उसकी स्त्री में काफी देर चर्चा हुई थी और उसी विषय को लेकर आज भी काफी देर तक बात-चीत चलती रही।

राजू खाना खा-पी कर सो गया। उसके लिए यह जीवन की हरकली पर एक विजय थी। उसने हरकली को नीचा दिखलाया था, और वह अब उसकी हक़ूमत में पैर रखना नहीं

चाहता था ।

राजू की पढ़ाई को लेकर अग्निदत्त और उसकी स्त्री में रात को फिर कितनी ही देर तक बातें चलती रहीं। वर्ष का यह बीच था, सन् तीस की बात रही होगी । साल के बीच में किसी अन्य स्कूल में भर्ती कराना भी एक समस्या थी, और फिर वहाँ पढ़ कर पास होना भी बहुत कठिन कार्य था ।

उधर हरकली और ज्ञानव्रत ने मिलकर अपने पिताजी चतुर्सिंह को एक लम्बी-चौड़ी चिट्ठी लिखी, जिसमें राजू की बुराइयों का एक पूरा चिट्ठा पेश किया गया । परन्तु फिर भी अन्त में ज़ोर हरकली ने इसी बात पर दिया कि चाचाजी को कहिए कि वह राजू को मेरठ छोड़ जायें, जिससे उसकी शिक्षा में हानि न हो । हरकली का यह समझदारी का पत्र था। वह जानती थी कि राजू की हानि के साथ उनकी अपनी हानि भी थी, क्योंकि उन सबका आधा खर्च अग्निदत्त दे रहा था ।

चतुर्सिंह का तीसरे ही दिन अग्निदत्त के पास पत्र पहुँच कि यदि राजू वहाँ पहुँच गया हो तो वह उसे तुरन्त मेरठ छोड़ जाये, जिससे उसकी शिक्षा में हानि न हो । यह पत्र देख कर अग्निदत्त उस पूरे सिलसिले को न समझ सका, परन्तु एक बात निश्चित ही थी कि वह स्वयं भी राजू को इस वर्ष मेरठ ही तालीम के लिए रखना चाहता था ।

अग्निदत्त को छुट्टी नहीं मिल सकी । अग्निदत्त की स्त्री ही राजू को लेकर मेरठ गई । यों ऊपर से हरकली और ज्ञानव्रत ने चाची जी को आदर ही दिया, परन्तु अन्दर-ही-अन्दर उनका दिल एक जलन सी महसूस कर रहा था । न जाने क्यों वे चाचीजी का चाचीजीपना स्वीकार करना नहीं चाहते थे। उनसे रुपया लेने की तो इच्छा उनकी हर समय रहती थी, परन्तु उन्हें उचित आदर देते हुए उन्हें अपने अन्दर कुछ हीनता का अनुभव होने लगता था ।

: १२ :

पिता का देहान्त हो जाने पर रामदयाल ने जब इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई तो उसने अपने अर्थात शक्तिसिंह के परिवार में देखा कि एक उसका छोटा भाई था, जिसकी तालीम का उसे प्रबन्ध करना था; एक छोटी बहन और माँ थे, परन्तु उनके खाने-पीने की उसे चिन्ता नहीं थी। वे उसके नाना के यहाँ रहते थे, और वे ही नाना की सम्पत्ति के पूरी तरह अधिकारी थे। उनके ख़र्चे के लिए वहाँ काफ़ी था, कोई कमी नहीं थी किसी प्रकार की।

रामदयाल अपने इलाक़े का एक नामी दीवान था। जिस थाने में भी वह चला जाता था, वहाँ का दारोग़ा फीका पड़ जाता था। इलाक़े भर का मानो वह मालिक था। इलाक़े के सब बदमाश उसके कान पकड़े चेले हो जाते थे। कानून का वह पाबन्द था, परन्तु बदमाशों के परिवार वालों के साथ बहुत ही रहम-दिली का बर्ताव करता था। यही कारण था कि जो बदमाश उसके हाथों सज़ा भी पा जाते थे, उन्हें भी जेल से लौटने पर अपने परिवारों में रामदयाल की भलाई का ही वातावरण मिलता था। इस प्रकार वह सरकार और बदमाश, दोनों का मीठा बनकर रहने का गुर जानता था।

आमदनी उसे अच्छी खासी होती थी। पीने-पिलाने का वह शौकीन था। चौधरी चतुरसिंह के आर्य समाजी चरित्र से जहाँ उसके पिता ने केवल इतना ही विद्रोह किया था कि वह हुक्का पीते थे, वहाँ रामदयाल उनसे कई क़दम आगे बढ़ चुका था। वह केवल शाकाहारी सीमा में भी अपने को सीमित

न रख सका। माँसाहारी भी वह हो गया। अफ़सरों को दावतें उसे देनी पड़ती थीं और इन दावतों की प्रधान वस्तु सेब और अंगूर न होकर शराब और शिकार होते थे। जो चीज़ें रामदयाल अपने अफ़सरों के शौक के लिए पेश करता था, उनका शौक वह आप न करे, यह भला कैसे सम्भव होता।

रामदयाल की स्त्री, एक सीधी-सादी गाँव की स्त्री थी। जीवन के प्रथम विकास-काल में ही उसे तपेदिक़ की बीमारी ने घेर लिया था और उसका सेब जैसा लाल चेहरा रामदयाल के देखते-देखते हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया।

रामदयाल ने अपनी आय का काफ़ी रुपया उसकी बीमारी में व्यय किया, परन्तु वह उसका स्वास्थ्य वापस न ला सका। उसके कई बच्चे भी हुए, परन्तु दुर्भाग्यवश उनमें से एक भी जीवित न रहा। इस प्रकार रामदयाल लावल्द ही था।

बीच-बीच में रामदयाल के दूसरे विवाह का भी प्रश्न सामने आया और उसकी माँ ने इस बात पर काफ़ी ज़ोर दिया, परन्तु यह बात रामदयाल ने मंज़ूर नहीं की। दूसरी शादी करके वह एक नई मुसीबत में अपना गला फँसाने को तैयार नहीं था और अपनी स्त्री की स्मृति को दिल से निकाल कर उसके स्थान पर दूसरी स्त्री को बिठाने को वह तैयार नहीं था।

अपने छोटे भाई धर्मप्रकाश को वह तालीम दिला रहा था। धर्मप्रकाश बोर्डिंग में रहकर पढ़ता था, मेरठ के एक हाई स्कूल में। पढ़ने-लिखने की ओर धर्मप्रकाश का अधिक ध्यान नहीं था। वह पूरा शाहजी बना हुआ था। मलमल के कुर्ते पर तेहमद बाँधकर जब वह घूमने निकलता था तो उसकी चौकड़ी के लड़के उसे 'शाहजी' कह कर पुकारते थे। एक लाठी भी वह हाथ में रखता था, चौधराहट की। शायद यह वही लाठी हो जिसे कभी चौधरी शक्तिसिंह लेकर चला करते थे।

धर्मप्रकाश भी अपने पिता जी की ही तरह खुले जी का लड़का था। मिजाज़ उसने भी शौकियाना और आशिक़ाना

पाया था। खेल-तमाशों का उसे शौक था। खाली सिनेमा भर देखकर उसकी तृप्ति नहीं होती थी। वह जीते-जागते दृश्य देखना अधिक पसन्द करता था। मेरठ के आस-पास जहाँ कहीं भी साँग-तमाशे की सूचना उसे मिल जाती थी, वह अवश्य जाता था; एक नामवर चौधरी के लड़के की तरह शामिल होता था उसमें और नाचने-गाने वाले लौंडों को दो-चार रुपये देकर मजलिस में शोहरत भी हासिल करता था।

मेरठ में धर्मप्रकाश का यह ठाट-बाट ज्ञानव्रत और हरकली की दृष्टि से छिपा न रह सका। उसकी दशा को देखकर दोनों ने अंदाज़ लगाया कि ये सब अलल्ले-तलल्ले रामदयाल की कमाई के ही कारण हैं। भाई रुपया भेजता है और यह यहाँ ऐश करता है। धर्मप्रकाश का ऐश हरकली के दिल में चुभता था। एक दिन संध्या को एकात में हरकली ज्ञानव्रत से बोली, "ज्ञानव्रत आज तुझे एक काम की बात बताती हूँ।"

"बतलाइये जीजी!" ध्यानमग्न होकर ज्ञानव्रत ने पूछा।

"देखो ज्ञानव्रत! इस समय रामदयाल के पास बहुत पैसा है। तुम जानते हो क्यों?" बहुत ही गम्भीरता पूर्वक हरकली ने अपने को इस कथन की अधिकारिणी समझकर कहा।

"मैं तो नहीं जानता, जीजी!" ज्ञानव्रत बोला।

"मैं बतलाती हूँ तुझे। पुलिस में रिश्वत खूब चलती है। यह रिश्वत का ही पैसा है जो धर्मप्रकाश की मस्ती में दिखाई दे रहा है। फिर एक बात और भी तुम जान लो। अग्निदत्त चाचा जी को तो पिता जी पहले ही खोखला कर चुके हैं। उन्होंने तो आज तक जो कुछ भी कमाया है, पिता जी के साथ मिलकर परिवार के पुराने कर्ज़ में दे दिया परन्तु रामदयाल पर अभी तक दाँव नहीं गठ सका है अपना। मैं तुम से कहती हूँ कि तुम वहाँ जाओ और उसके पेट में घुस जाओ। और उसके पेट में घुसकर उसकी थाह लो कि उसके पास कितना पसा है।"

"बात तो तुमने बहुत पते की कही जीजी! अब देखना तुम

कि मैं किस कमाल के साथ यह काम करता हूँ।" प्रसन्नतापूर्वक ज्ञानव्रत बोला। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ अपनी बहन के इस गुरु-मंत्र को पाकर।

"और देखो, एक ख़ास बात बतलाती हूँ तुम्हें। रामदयाल के सामने अग्निदत्त चाचा जी और चाची जी की खूब जी खोल-कर बुराई करना और कहना कि हम लोगों का तो मन तुम्हारी तरफ़ से उन्हीं ने फाड़ रखा था। वरना हमारे दिलों में तो तुम्हारे लिए इतना प्यार भरा हुआ था कि कुछ कहने की बात नहीं। बीच-बीच में, कभी-कभी, चचा शक्तिसिंह का प्रसंग छेड़कर चार आँसू भी बहा देना और यह भी बतलाना कि वह हमें कितना प्यार करते थे। और हमारे हृदय में उनके लिए कितना आदर है।"

"समझ गया जीजी!" उसकी सहानुभूति को अपनी ओर खींच कर उसे उल्लू बनाने की बात है। आज तक दूर-ही-दूर नाचता रहा है। गले में फंदा नहीं पड़ने दिया। अब मुझ देखना है कि वह मेरे हाथों से बचकर कहाँ भागता है मियाँ मिट्ठू। उसके पास पहुँच कर वह जाल फैलाऊँगा कि मियाँ चारों खाने चित्त आ गिरे उसमें। और यह बात तो मैं जीजी आपको सोलह आने मानता हूँ कि रामदयाल के पास पैसा अवश्य एकत्रित होगा। यह बात तुमने बहुत पते की खोज कर निकाली है।"

हरकली और ज्ञानव्रत इस समय बहुत प्रसन्न थे। यह पासा उनका यदि सीधा पड़ा, तो रामदयाल ने आज तक पुलिस की नौकरी में ईमानदारी या बेईमानी से जो कुछ भी कमाया है वह सब उनके पल्ले में आ गिरेगा और फिर ऐश की छनेगी।

चचा अग्निदत्त को तो पिता जी स्वयं ही उल्लू बनाते चले आ रहे हैं, अब रामदयाल को उल्लू बनाने का समय है।

ज्ञानव्रत ने अपनी यात्रा का साज़ो-सामान तैयार कर लिया और एक दिन वह सीधा रामदयाल के पास जा पहुँचा। राम-दयाल ने अपने छोटे भाई ज्ञानव्रत को देखते ही छाती से लगा

लिया । ज्ञानव्रत की भाभी ने भी अपना प्यार-दुलार उस पर फेरने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी ।

ज्ञानव्रत के लिए नये-नये कपड़े सिलवाये गये । उसके खाने-पीने का भी सुन्दर प्रबन्ध किया गया । अर्थात् उसकी आवभगत में कोई कसर उठा नहीं रखी गई । परन्तु रामदयाल ने ज्ञानव्रत से कोई विशेष बातें नहीं कीं । ज्ञानव्रत की जो भी बातें हुईं, वे सब उसकी भाभी से ही हुईं, और उन्हीं के द्वारा वे बातें रामदयाल तक पहुँचीं ।

रामदयाल पुलिस का माना हुआ दीवान था । ज्ञानव्रत जैसे चपरक़नाती बच्चों को वह दिन-रात चलाता और रास्ते लगाता था । ज्ञानव्रत जो कुछ भी कहता था, उसकी जड़ों में क्या राज़ छुपा है, उसे वह भली प्रकार समझता था । वह रोज़ाना दूध अवश्य पिलाता था इस सपोलिये को परन्तु शक्तिसिंह के वे अन्तिम शब्द आज भी उसके कानों में बज रहे थे, "बेटा रामदयाल ! तू मेरे भाइयों को कुछ न कह । अग्निदत्त और उसकी स्त्री ने मेरी वह सेवा की थी कि मेरा जी-जान से इलाज कराया था और यह हो नहीं सकता था कि भाई साहब चतुरसिंह मेरी ख़बरगीरी के लिए न आते; परन्तु उनकी औलाद ने उन्हें नहीं आने दिया । ज्ञानव्रत और हरकली एक दिन इस परिवार की आबरू को मिट्टी में मिलाकर दम लेंगे । लेकिन रामदयाल परिवार का सर्वनाश करने वाला न बनना, गाँव छोड़ देना, देश छोड़ देना परन्तु भाइयों के साथ झगड़ा न करना । मुक़दमा न करना, अदालत की सूरत न देखना ।"

रामदयाल आज, उसी समय जबकि ज्ञानव्रत और उसकी भाभी की लम्बी-चौड़ी बातें चल रही थीं, बीच में दरवाज़ा खोलकर अन्दर आ पहुँचा और अपनी लम्बी-लम्बी मूँछों पर ताव देता हुआ मुस्कराकर बोला, "हाँ तो गप्प-शप्प उड़ रही हैं देवर-भाभी की । कभी काम की बात भी तो किया करो, या इन्हीं हँसी-ठट्टों से ज़िन्दगी के काम चल जायेंगे ?"

"काम की बातें करने को तो आप हैं ही।" ज्ञानव्रत की भाभी ने मुस्कराते हुए कहा।

ज्ञानव्रत समझ ही न सका कि आख़िर काम की बातें क्या करनी हो सकती थीं।

रामदयाल ने ज्ञानव्रत के पास बैठते हुए कहा, "ज्ञानव्रत! तुम यहाँ आ गये, तुमने बहुत ही अच्छा किया। वरना मैं तो स्वयं ही ताऊ जी के पास आने की बात सोच रहा था। तुम जानते ही हो, मुझे तो कुछ आता-जाता नहीं और छोटी बहन की शादी सिर पर आ गई। सब कुछ ताऊ जी को ही करना है और तुम लोगों को करना है। हाँ रुपया सब मैं ख़र्च करूँगा। उसके लिए मैं ताऊ जी पर भार नहीं डालूँगा।"

यह बात रामदयाल ने इतनी संजीदगी से कही कि ज्ञानव्रत प्रभावित हुए बिना न रह सका। फिर इसी काम के लिए तो वह आया था कि वह रामदयाल का विश्वास प्राप्त कर सके। रामदयाल के मन में चतुरसिंह के प्रति श्रद्धा-भाव देखकर ज्ञानव्रत गद्‌गद् हो गया।

और मुक्त कंठ से बोला, "आप चिन्ता किस बात की करते हैं भाई साहब! आपकी छोटी बहन क्या मेरी छोटी बहन नहीं है? आप यहीं पर बैठे रहिए और वहाँ सब इन्तज़ाम ठीक हो जायगा। क्या मजाल जो कि किसी काम में भी बाल बराबर फ़र्क आ सके।" उत्साह के साथ ज्ञानव्रत ने कहा।

बस इसके पश्चात् रामदयाल ने ज्ञानव्रत से और कोई बात नहीं कही। दोनों समझ गये कि आपस का सम्बन्ध आगे बढ़ा।

चलते समय ज्ञानव्रत को रामदयाल ने सौ-सौ रुपये के दो करारे-करारे नोट दिये और शादी के लिए घी का प्रबन्ध करने को कह दिया।

"तुम प्रबन्ध करना ज्ञानव्रत! रुपये की जैसे-जैसे आवश्यकता होगी, देता रहूँगा।" रामदयाल ने ज्ञानव्रत को मोटर में बिठला कर कहा।

"उसकी आप चिन्ता न करें।" ज्ञानव्रत ने उत्तर दिया।

मोटर चल पड़ी, ज्ञानव्रत दो सौ रुपये की गर्मी को जेब में भरे, सीना उभार कर अपनी सीट पर मोटर में सबसे आगे बैठा था। दीवान जी की वह सवारी थी। किसी की क्या ताब थी जो उससे आँख मिला कर भी उस इलाके में देख सकता। बातें करना तो दूर की बात थी।

रामदयाल ने मोटर के चले जाने पर एक बार फिर मूछों को ज़ोर से मरोड़ी दी।

: १३ :

हरकली कूटनीति में अपने को महामंत्री चाणक्य का स्त्री-संस्करण मानती थी। ज्ञानव्रत का उपयोग अब वह पूरी तरह अपनी नीति के संचालन में कर रही थी। उसका छोटा भाई था ज्ञानव्रत, उसकी अपनी जीजी में बड़ी आस्था थी। जीजी की आज्ञा का पालन करना वह अपना धर्म समझता था।

रामदयाल के पास ज्ञानव्रत को गये बीस दिन हो गये थे और इस बीच उसे उसके दो पत्र मिले थे। दोनों में ही ज्ञानव्रत ने आशा प्रकट की थी कि उसका जादू रामदयाल पर काम कर जायगा। उसे विश्वास था कि वह रामदयाल का विश्वास प्राप्त करके ही लौटेगा।

हरकली एकांत में बैठी रामायण पढ़ रही थी परन्तु उसका मन ज्ञानव्रत में पड़ा था।

चचा अग्निदत्त ने दुबारा अपने लड़के को यहाँ ही भेज कर आधा ख़र्च देना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु अब यह रुपया लेना हरकली को अच्छा प्रतीत नहीं हुआ। हर महीने भीख सी माँगना और अपनी आर्थिक कमज़ोरी का अनुभव कराना, उसके हृदय को ठेस पहुँचाता था।

यह खेल जो वह इस समय खेल रही थी, कोई साधारण खेल नहीं था। साधारण घिस-घिस का खेल उसे पसन्द नहीं था। वह तो एक बार ही लम्बा-चौड़ा हाथ साफ़ करना चाहती थी। और यह हाथ इस समय रामदयाल पर ही साफ़ होना सम्भव था, क्योंकि उसके अनुमान से एक मुश्त रक़म इस समय रामदयाल के ही पास जमा मिल सकती थी।

हरकली इसी उधेड़बुन में लगी थी कि उसने देखा, ज्ञानव्रत सामने से कुली के सिर पर अपना सामान रखाये घर के अन्दर बढ़ा चला आ रहा है।

उसने आते ही बड़े आदर के साथ जीजी को नमस्कार किया और हरकली ने भी ज्ञानव्रत को छाती से लगाया, तथा प्यार का हाथ उसके सिर पर फेरा। अपने नाटे क़द के कारण उसे हाथ फेरने में कुछ असुविधा और कठिनाई अवश्य हुई, परन्तु वह अपने प्यार को दिल में ही समेट कर नहीं रख सकती थी।

कुली को पैसे देकर बिदा कर दिया गया और तब हरकली की ज्ञानव्रत के चकाचक नये कपड़ों पर दृष्टि गई। जेब में रखे हुए दो सौ रुपयों की रक़म को ज्ञानव्रत अधिक देर तक रोक कर न रख सका। उसके दिल का उत्साह उन्हें बाहर निकाल कर जीजी के हाथों में दे देने के लिए व्याकुल हो रहा था।

"लो जीजी! ये दो सौ रुपये। रामदयाल से ऐंठ कर लाया हूँ। और इस बार मैंने भी उस पर वह जादू किया है कि बच्चा याद ही रखेगा। इस बार ऐसा फंसाऊँ कि जीवन भर याद रखे।"

दो सौ रुपये के नोटों की गड्डी हाथ में लेकर हरकली उत्साह और प्रसन्नता से उछल पड़ी। वह लिपट ही गई ज्ञानव्रत से और प्यार से उसे कई बार चूम लिया। फिर ज़रा संभल कर बोली, "उस गाह के मुँह से ये रुपये तू निकाल लाया ज्ञानव्रत! बस तूने कमाल कर दिया। अब ज़रा यह तो बतला कि कैसे-कैसे बीती इतने दिन? भाई-भाई और देवर भाभी की क्या क्या बातें हुईं?"

ज्ञानव्रत ने जिस दिन वह वहाँ पहुँचा था उस दिन से आज तक की पूरी कहानी कह सुनाई, और हरकली ने वह ऐसे ध्यान देकर सुनी मानो वह रामायण का पाठ कर रहा था। अन्त में जब शादी का प्रसंग आया तो हरकली झल्ला कर बोली, "मैं

देखूंगी किस तरह सफलता मिलती है रामदयाल को इस शादी के करने में। ऐसा छीछालेदार करूँ कि बच्चू को छठी तक का खाया-पिया याद आ जाये। ऐसा खाऊँ और बरताऊँ कि पारस में खाली पत्तलें ही उड़ती नज़र आयें।"

"तुझे क्या पता है ज्ञानव्रत ! कि इसने तेरी शादी की जौनार को नाकामयाब बनाने के लिए जो कुछ किया था। तब तो अगर चाचा अग्निदत्त और उनके दफ़्तर का एक कर्मचारी अलबेल पारस पर न होते तो इसने पिताजी की बिरादरी में नाक ही काट देनी थी।"

हरकली की बात सुनकर ज्ञानव्रत को क्रोध आ गया और वह बोला :

"ठीक यही होगा जीजी ! काम तो सब हमारे ही हाथों में रहेगा। जब यह मेरी शादी में सब-कुछ करने से बाज़ नहीं आया था।" और फिर कुछ ठहरकर बोला, "मेरी शादी में चाचा जी ने पिताजी से सब चीज़ें इसे दिला दी थीं। यदि मैं उस समय कुछ और बड़ा होता, तो चाचा जी और पिता जी दोनों को एक ओर बिठला देता, और ज़रा भी खयाल नहीं करता इस बात का कि वह शादी में शरीक होता है अथवा नहीं।"

हरकली दाँत रगड़ कर बोली, "मैं अब इसके शामिल होने और न होने की किंचितमात्र भी चिन्ता नहीं करती। यह है किस खेत की मूली और इसे पूछता ही कौन है बिरादरी में। तू नहीं जानता ज्ञानव्रत ! इसका तो रिश्ता भी पिता जी के ही नाम पर हुआ है। पिता जी यदि न चाहें तो इनकी और चाचा अग्निदत्त के बच्चों की शादियाँ तक होनी बन्द हो जायें।"

"परन्तु, पार तो कुछ पिताजी पर नहीं बसाती हमारी। जो भी बात कहो, बस सत्य और धर्म की दुहाई देने बैठ जाते हैं। राम और लक्ष्मण की बात बघारते हैं। और मैं कहता हूँ कि अग्निदत्त की चालबाज़ी को तो वह एक से लाख तक नहीं समझ सकते। ऐसा मीठा घाघ है कि बस कुछ पूछो ही नहीं।

मीठी छुरी बनकर पिताजी के पेट में घुस गया है।" ज़रा कुढ़ कर ज्ञानव्रत बोला।

"तुम चिंता न करो ज्ञानव्रत! मैं सब देख लूंगी इन मीठी और पैनी छुरियों को। इन्हें भी मैंने खुट्टल करके एक ओर न रख दिया तो मेरा नाम भी हरकली नहीं। एक-एक की चालबाज़ियाँ देखनी हैं मुझे भी।" ज़रा सीने में उभार लाकर हरकली बोली।

उसे विश्वास था कि वह एक दिन इन चचा भतीजों के जालों को काट कर फेंक देगी, और अपने पिताजी के कच्चे-पक्के परिवार को भविष्य में आने वाली उस मुसीबत से मुक्त कर देगी जिसके चक्कर में उसके सीधे-सादे पिताजी उसे फँसाते जा रहे थे।

ज्ञानव्रत को हरकली की योग्यता पर पूर्ण विश्वास था। वह जो कुछ भी बात कहती थी, वह ज्ञानव्रत और उसके छोटे भाई के ही हित की बात होती थी इसलिए उसके अन्दर किसी भी प्रकार का अविश्वास होने का कोई कारण ही नहीं था।

रामदयाल की छोटी बहन की शादी का प्रबन्ध होना प्रारम्भ हो गया। प्रबन्ध करने वाले हरकली और ज्ञानव्रत के अपने आदमी थे। मुंशी चतुरसिंह ने भी हरकली और ज्ञानव्रत के कहने से विवाह में सक्रिय भाग लिया। गाँव में इस समय ज्ञानव्रत का बोलबाला था। घी का प्रबन्ध किया। ईंधन का प्रबन्ध किया, हलवाइयों का प्रबन्ध किया। छोटी-मोटी चीज़-बस्तों का प्रबन्ध किया।

और इन सब कामों को करते समय उसके पैर ऐसे उठ रहे थे मानों उनके नीचे को स्प्रिंग लगी हुई थी। दो सौ रुपया पेशगी रामदयाल ने दे दिया था। बाकी रुपये की उसके पास कमी नहीं थी। आज तक की कमाई में एक छोटी बहन का ही तो विवाह वह कर रहा था। फिर उसके नाना भी अच्छा-खासा भात भर के जायेंगे।

ज्ञानव्रत दौड़-दौड़ कर काम कर रहा था और हरकली फुदक-फुदक कर हिसाब का चिट्ठा तैयार कर रही थी। गाँव में आजकल इन्हीं दोनों का तहत था। चौधरी शक्तिसिंह के खाली किये हुए तख्तेताऊस पर इन्हीं का शासन विराजमान था। कमीन-काँटों पर इन्हीं का रौब था। इनका इरादा था कि इस शादी में गाँव के कमीनों को ये लोग रामदयाल के सिर निहाल कर देंगे। काम वे फिर साल भर इनका करेंगे और इनामात उन्हें दिये जायेंगे रामदयाल की न्योली खोलकर।

फिर दूसरे हिसाबों में भी हरकली बखूबी नौ दो ग्यारह कर सकेगी और इस तरह इस सहयोग में लाभ-का-लाभ और अहसान-का-अहसान होगा। अपने पास से न हल्दी लगानी पड़ेगी और न फिटकरी, और रंग अच्छा आयेगा। हर काम के लिये हरकली के कदम चाव से उठ रहे थे।

मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत्त को भी शादी में सम्मिलित होने के लिये पत्र लिखा और उसमें लिखा, "मुझे पता नहीं शादी किस तरह हो रही है, परन्तु अपना फर्ज़ समझकर मैं इसमें शामिल हो रहा हूँ, क्योंकि शक्तिसिंह का अन्तकाल हो चुका है और उसकी नामौजूदगी में शामिल न होना मैं ग़लत समझता हूँ।"

पत्र बाबू अग्निदत्त को मिला तो वह उसे पढ़ कर मुस्कराये यह पहला अवसर था उसके जीवन में जब उसने भाई चतुरसिंह के लिखे को गलत समझा और सचाई को अपनी अक्ल से परखा। पत्र शादी से एक दिन पहले ही पहुँचा।

अग्निदत्त ने सोचा शादी का सब प्रबन्ध ज्ञानव्रत और हरकली कर रहे हैं और भाई चतुरसिंह को यह भी पता नहीं कि शादी किस तरह हो रही है।

अग्निदत्त की स्त्री ने भी पत्र सुना और यह व्यंगपूर्ण स्वर में बोली, "आपके सत्यवादी हरिश्चन्द्र बड़े भाई का पत्र है। इसके एक भी शब्द को यदि आप ग़लत समझेंगे तो समझिये

कि जीवन में उससे बड़ा पाप फिर कभी नहीं होगा।"

अग्निदत्त को लज्जा आई अपने भाई के इस पत्र पर। उसके विचारों का क़िला तो पहले ही रड़-रड़ करके ढह चुका था। अपनी स्त्री के मस्तिष्क पर अपने बड़े भाई की ईमानदारी और सत्यवादिता की जो छाप उसने बिठलाई थी, उसकी प्रेत-छाया मात्र ही इस समय उन्हें दिखलाई दी।

उन्हें लग रहा था कि मानो उसका असली भाई चतुरसिंह, वह चतुरसिंह जिसने उसे पढ़ाया-लिखाया और उसकी बड़े बेटे के समान शादी की थी, मर चुका है और उसके स्थान पर उसका प्रेत आकर बैठ गया है। इस प्रेत के अन्दर बड़े भाई चतुरसिंह का एक भी गुण दिखाई नहीं देता। न वह सचाई ही रही और न वह धर्मपरायणता, न वह दूरदर्शिता ही रही और न वह सचाई को परखने की क्षमता। साधारण सी बातों में भी यह प्रेत भाई से झूठ बोल सकता है, अपने बच्चों के असर में यह इतना दब गया है कि इसका जीवन ही उनका दास बन गया है।

परिवार वह रूप जिसकी अग्निदत्त ने कल्पना की थी, जो कभी भी छिन्न-भिन्न होने वाला नहीं था, जिसके सब प्राणियों को एक जंज़ीर में गूंथ कर आगे बढ़ाने का ख़्वाब वह देख रहा था, जिसकी समृद्धि में उसे सभी का हित दिखलाई दे रहा था, आज वह सब मकड़ी के जाले के समान उसे प्रतीत हुआ और देखा कि एक छिपकली ने उसके ऊपर कूद कर उसके पुराने बाँधे हुए तारों को छिन्न-भिन्न कर दिया, उसके बीच में एक बड़ा सूराख़ कर दिया।

वह देख रहा था मकड़ी के उस जाले को, अपने उस परिवार को और उस पर कूदने वाली छिपकली को। उसने देखा कि वह छिपकली थोड़ी ही देर में हरकली बनी उसके सामने खड़ी मुस्करा रही थी और कह रही थी, "चाचा जी! आपका यह ताना-बाना मेरा एक भी वार सहन न कर सका। अब पिता

जी को आपके हाथों में और अधिक मैं नहीं खेलने दूँगी। अपने-अपने रास्ते पर चलिए। क्यों आप पिता जी के गले की जंज़ीर बने हुए हैं ?"

"ऐसा क्या जादू कर दिया भाई साहब के खत ने ?" अग्निदत्त की स्त्री ने उनका स्वप्न-सा तोड़ते हुए कहा, "भाई की ज़्यादा ग़ुलामी करने का यही फल निकलता है। मैं जानती थी कि एक दिन वह आयगा जब जेठ जी हमें दूध की मक्खी की तरह घर से निकाल कर फेंक देंगे।"

"फेंक देंगे !" ज़रा क्रोध में आते हुए अग्निदत्त ने कहा. "मैंने भी चूड़ियाँ नहीं पहनी हैं हाथों में। जब तक बड़ा भाई भाईपना निभाता है तभी तक वह छोटे भाई से भाईपने की आशा कर सकता है।"

"परन्तु अब तुम कर ही क्या सकते हो उनका ?" जले पर नमक मलते हुए अग्निदत्त की स्त्री ने कुढ़ कर कहा, "साँप निकल गया, अब लकीर को पीटा करो बैठ कर। जब खत्री का कर्ज़ देना था तो लाख खुशामदें करते थे। यदि वह गले में फँसा रहता तो, जीवन भर ग़ुलाम बने रहते हमारे। जितनी रुपल्लियाँ तनखा की पाते हैं उनसे तो उस कटक-दल का भी पेट न पलता जो उन्होंने पैदा कर लिया है।" इस समय अग्निदत्त की स्त्री का पारा ज़रा तेज़ था।

अग्निदत्त के सामने ऐसे शब्दों का प्रयोग पहले कभी चतुर-सिंह और उसके परिवार के लिए उसकी स्त्री द्वारा नहीं हुआ था और यदि होता भी तो वह बर्दाश्त करने वाला नहीं था; परन्तु आज ये शब्द कुछ ऐसे प्रतीत हुए मानो वे उसके अपने ही दिल के घावों पर मरहम-लेपन कर रहे थे। वह शांत भाव से सुनता रहा।

अग्निदत्त की स्त्री का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। उसे रह-रह कर अपने सभी वह काम याद आ रहे थे जो उसने चतुर्सिंह के बाल-बच्चों के लिए किए थे।

उसने सचमुच आज तक कभी अपने बच्चे और उनके बच्चों को दो नहीं समझा था। अपने छाती के टुकड़े, इकलौते बेटे को जेठजी के इन शब्दों से डर कर "एक है, सो इसे यह अवश्य ही बिगाड़ कर दम लेगी," अपने पास नहीं रखा। बार बार अपमानित होने पर भी अपने बच्चों को जेठजी के ही पास रहने दिया।

अपने आदमी की इतनी आमदनी में भी कभी ऐल-फैल नहीं किया। जो कुछ जोड़ा-जँगोड़ा वह इस परिवार की भट्टी में झोंक दिया। वरना झेरे में जाता यह आभाराम का परिवार और चतुरसिंह की नाक तथा वह जायदाद जिसका मालिक बना वह आज हमें यह ख़त लिख रहा है, वह तो ऐश करती।

उसके अपने और एक बेटे के लायक उसका आदमी काफ़ी कमाता था। वह मज़े से शहर में रहती और सोने से पीली बनी फिरती। परन्तु उस तरफ़ उसने कभी ध्यान नहीं दिया। एकांगी सुख और अपने छोटे परिवार के विषय में उसने कभी सोचा ही नहीं। अपने बच्चे को अपने पास रखती, तीन प्राणियों का परिवार बना कर बैठती, तो उसे भी आगे-पीछे का ख़याल होता।

आज अचानक ही उसके क्रोध का पारा अग्निदत्त के ऊपर उमड़ पड़ा। वह तनतना कर बोली, "इस अपमान और बरबादी की असल जड़ एक तुम ही हो। तुमने भाई का ग़ुलाम बन कर हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा।"

"चुप रहो बस देवी! और आगे न बोलना।" क्रोध में भर कर अग्निदत्त ने कहा।

परन्तु आज वह अपनी स्त्री के क्रोध को न दबा सका। उसकी स्त्री ने आज उसे कहनी और अन-कहनी कितनी बातें कहीं और उसे वे सब पी जानी पड़ीं। इस पी जाने का एक-मात्र कारण यही था कि वह अपने अन्दर कमज़ोरी देख रहा था। उसका स्वप्न टूट चुका था और आज वह स्पष्ट रूप से देख

रहा था कि उसके जीवन की आज तक की कमाई चतुरसिंह तथा उसके बाल-बच्चों के पेट में जा चुकी। यह सब उसी के विश्वास पर गई, क्योंकि चतुरसिंह उसी का भाई था और उसकी स्त्री ने भी उनका विश्वास उसी के कहने पर किया था।

यदि वह उनकी ईमानदारी की छाप अपनी स्त्री के मस्तिष्क पर न लगाता तो वह एक छदाम भी कभी उस कर्ज़ में न देने देती। अपना अलग से रुपया जोड़ती। तब देखती ऊँची नाक लेकर बोलने वाली बड़े ज़मींदार की बेटी हरकली की क्या दशा होती और वह स्वयं होती एक पैसे वाली औरत, जो गाँव में भी जाती तो एक ठसके के साथ जाती और यही हरकली उसे 'चाची जी-चाची जी' कहती न थकती।

"अब उन्हें कौन परवाह पड़ी है इन चाचा जी और चाची जी की। तमाम ज़मीन के मालिक बने बैठे हैं।" वह बोली, "अब सुन लो, आज तो यही चिट्ठी आई है। दस दिन बाद यह भी चिट्ठी आयगी कि सिरसे में तुम्हारा कुछ नहीं है। बाहर ही रहकर कमाओ और खाओ। यहाँ बसने के लिए आओ तो सर पर कफ़न बाँध कर आना।"

अग्निदत्त सरल स्वभाव से बोला, "मुझमें अब तुम्हारे इन शब्दों को ग़लत कह देने का साहस नहीं है। मैं अब अपने बड़े भाई चतुरसिंह से हर प्रकार की चिट्ठी की आशा कर सकता हूँ।" वह चुपचाप बैठा अपने अन्दर-ही-अन्दर बुड़बुड़ाता रहा।

आज पहली बार उसे अपने भाई चतुरसिंह के कर्मकाण्डी वेश के नीचे की सतह दिखलाई दी। गायत्री मंत्र का उच्चारण करने वाले, दोनों समय संध्या और नित्य हवन करने वाले, बलिवैश्य करके भोजन करने वाले, मस्तक पर अपने हाथ का घिसा चन्दन लेपने वाले, हर रविवार को आर्य समाज मन्दिर में :

हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये।
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिये।

लोभी और कामी, क्रोधी कोई भी हम में न हो।
सत्य कर्मों पर चलें और छोड़ देवें मोह को।

इन पंक्तियों का पाठ करने वाले; समाज, बिरादरी तथा सम्बन्धियों में आदर के पात्र, विद्वान् और ज्ञानी बड़े भाई चतुरसिंह के अन्दर उसने झाँक कर देखा, तो पाया कि वह ज़िन्दगी के रास्ते पर चलते-चलते कमज़ोर पड़ गये। जिन सिद्धान्तों को उन्होंने मूल मंत्र के रूप में ग्रहण किया था उनका ऊपरी ढाँचा मात्र इस समय उनके साथ चल रहा था, उसके अन्दर की जड़ें लोभ और बाल-बच्चों के झूठे प्रलोभनों ने खोखली कर दी थीं। वह बहक गये थे अपने रास्ते से।

परन्तु मुंशी चतुरसिंह कोरे मुंशी चतुरसिंह नहीं थे। वह एक भरे पूरे परिवार के सरपरस्त थे। अग्निदत्त ने सोचा, उनके बहक जाने का प्रभाव न केवल उनकी अपनी ज़ात पर पड़ेगा, वरन् उसका प्रभाव चौधरी आभाराम के रक्त से आगे आने वाले हर इंसान पर पड़ेगा। फ़ौज के एक सिपाही की ग़लती केवल उसी के विनाश का कारण बनती है और सिपहसालार की ग़लती से सारी फ़ौज और उसका देश तक तबाह हो सकते हैं।

चतुरसिंह हमारे परिवार के सिपहसालार हैं और आज वही अपने रास्ते से बहक रहे हैं। वह इस समय अपने परिवार की सीमा को संकुचित कर चुके हैं। हरकली, ज्ञानव्रत, इनकी माता जी, हरकली का छोटा भाई और उनके बाल बच्चों तक यह सीमा बन चुकी है। अग्निदत्त, उसका लड़का और स्त्री तथा शक्तिसिंह के बच्चों को उन्होंने परिवार की बेल से काटकर फेंक दिया है। बहुत ढो चुके थे वह उनका भार, अब और शक्ति नहीं थी उनके अन्दर उन्हें अपनी पीठ पर ढोने की।

अग्निदत्त जल-भुन गया था इस ख़त को पढ़कर। परन्तु फिर भी उसने संतुलित शब्दों में पत्र का उत्तर लिखा,

"आदरणीय भाई साहब! आज, आपका पत्र मिला। कल

बरात आने वाली है। इतने शीघ्र मुझे छुट्टी मिलनी असम्भव है। खेद है कि मैं शादी में शामिल नहीं हो सकूँगा। लड़के और लड़की को हम दोनों का बहुत-बहुत प्यार।"

: १४ :

रामदयाल शादी से पाँच दिन पहले सिरसे आया। आकर देखा तो सचमुच सब सामान तैयार था। किसी चीज़ की कमी नहीं थी। वह अन्दर-ही-अन्दर प्रसन्न हो गया यह सब देखकर। उस मन ने कहा, "इस बार क्या खूब उल्लू बनाया है इन अक्लमन्द के बच्चों को। चचा अग्निदत्त बीच में नहीं पड़े, इसी लिए यह कामयाबी मिल गई।"

हरकली और ज्ञानव्रत से रामदयाल ने खूब घुट-घुट कर सलाह की। सब शादी का देन-लेन उन्हीं की सलाह से हुआ और शादी खूब आनन्दपूर्वक समाप्त हुई।

हरकली घर की बड़ी बनी इधर-उधर "भगवान् तेरी लीला अपरमपार है" वाली पंक्ति को गुनगुनाती फिर रही थी। उसकी माँ भी अपनी बेटी की योग्यता को देख कर फली नहीं समा रही थी और चतुरसिंह तो लट्टू हो रहे थे अपनी बच्ची की चतुराई पर। जी में कई बार आया कि उसे उठा कर चूम लें, परन्तु भारतीय संस्कृति का ध्यान रखते हुए उन्हें अपने हृदय की उमंगों को हृदय में ही दबा लेना पड़ा।

आज रात बिदा होने को थी। तो रामदयाल ने ज़रा अपना रूप बदला। उस दिन वह सब कुछ कर्त्ता-धर्त्ता मानो स्वयं ही बन गया। न हरकली की उसे आवश्यकता थी और न ज्ञानव्रत की। किसी भी मामले में उनकी सलाह लेना उसने आवश्यक नहीं समझा।

पारस में जो मिठाई बची थी वह सब उसने बारातियों के साथ बाँध दी। अपने एक-आध मेहमान को भी उसी दिन बिदा

कर दिया, माँ को बैल ताँगा जुड़वा कर उसके पीहर भेज दिया।

दूसरे दिन ज्ञानव्रत, चतुर्रसिंह और हरकली ने देखा रामदयाल स्वयं भी वहाँ से चटंकी लगकर सीधा अपनी नौकरी पर पहुँच गया। उसका अब सिरसे में काम ही क्या बाक़ी था? वह तो दो दिन का मेला लगाने आया था, सो लगा चुका।

हरकली के हिसाब का बही-खाता उसकी बग़ल में ही दबा रह गया और चतुर्रसिंह ने जो शादी के लिए घी मँगवाया था उसका बाक़ी रुपया माँगने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला।

जब-जब भी प्रयत्न किया तो रामदयाल शादी के झमेले में में घिरा हुआ मिला। ऐसी स्थिति में उसके सामने हिसाब लेकर बैठना अच्छी बात भी नहीं थी। फिर वह डरते भी थे हरकली से कि कहीं वह यह न कह बैठे कि आख़िर ऐसी जल्दी ही क्या थी? शादी के बाद सब वह अपने आप ही दे देगा।

शादी की लकड़ी, थी तो अपने ही जंगल की ही, परन्तु काटने और ढोने वालों की मज़दूरी देनं बाक़ी थी। वह भी ज्ञानव्रत के ही सिर पर रह गई। इसी प्रकार की और भी बहुत सी छोटी-छोटी रक़में यों ही उलझी हुई छूट गईं।

"चौबेजी चले थे छब्बे बनने, दूबे भी न रहे" वाली मिसाल हो गई ज्ञानव्रत और हरकली की रामदयाल दोनों को चकमा दे गया, यह इन लोगों ने तीसरे दिन महसूस किया। रामदयाल की आख़री दिन की चुप्पी और मुस्कराहट का राज़ इन पर आज जाकर खुला। परन्तु अब पछताये क्या होता था जब चिड़िया चुग गई खेत।"

हरकली अन्दर-ही-अन्दर उफन रही थी। काम यह ज्ञानव्रत और हरकली दोनों की सलाह से हुआ था। इसलिए किसी अन्य को दोष भी नहीं दिया जा सकता था। मुंशी चतुर्रसिंह के दिल पर भतीजे के इस व्यवहार से गहरी ठेस लगी। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि यह सब होगा। अपने भाग्य को ही उन्हें दोषी ठहराना पड़ा। हरकली और ज्ञानव्रत की

चालों का उन्हें कुछ पता न चला।

शक्तिसिंह की ना-मौजूदगी में उसके बाल-बच्चों के साथ हमदर्दी का व्यवहार करने का उन्होंने यह फल पाया। चतुरसिंह का दिल अपने भाइयों और उनकी औलादों की ओर से और भी खट्टा हो गया।

रामदयाल अपने पहलू पर मज़बूत था क्योंकि वह समझता था कि यदि उसने कुछ रुपया ही उनसे लगवा लिया तो क्या बात है? उसके हिस्से की ज़मीन भी तो वे ही लोग बो-जोत कर खा रहे हैं? क्या लगान दे रहे हैं वे उसकी ज़मीन का, या अनाज की बटाई करते हैं। मुफ्त का माल तो है नहीं जो ये खा-उड़ा रहे हैं। उसके पिता का उस ज़मीन में पूरा-पूरा हिस्सा है।

× × × ×

हरकली और ज्ञानव्रत की बचपन में मुंशी चतुरसिंह ने खूब पिटाई की थी। उस पिटाई की कसक अभी तक उनके दिलों में शेष थी। आज की रामदयाल द्वारा खाई हुई हार को वे पिताजी के ही सिर मढ़ना चाहते थे और उन्होंने मढ़ कर ही दम लिया।

हरकली ने संध्या को पिताजी के सामने झल्ला कर कहा, "अब देखते जाइये आप अपने भाई-भतीजों के कारनामे। यम तो बच्चे हैं आपके? सब कुछ बर्दाश्त करेंगे। परन्तु आपके भाई-भतीजों को आँच नहीं आने देंगे। हमारे शरीर की तो बोटी-बोटी भी आपकी आज्ञा का पालन करेगी। हमारे सामने तो आपने राम और दशरथ का आदर्श रखा है। परन्तु आप देख लेना, एक दिन ये भाई-भतीजे ही आपको दाने-दाने के लिए मुहताज न कर दें तो क्या बात है?"

चतुरसिंह को अपने भतीजे की कारगुज़ारी पर चुप रह जाना पड़ा। वह इस समय यह भूल ही गये कि आखिर उन्होने यह सब कब कहा था कि तुम रामदयाल की बहन की

पड़े। शादी के झमेले में जाकर पड़ो। उनके सिर पर तो इस समय उनके माँ-जाये सगे भाई शक्तिसिंह की भूतात्मा सवार थी और उनका पाजी पुत्र रामदयाल उनकी आँखों के सामने खड़ा था, जो इस प्रकार उनके नासमझ बाल-बच्चों को उनकी आँखों के सामने ठग कर ले गया।

उन्हें अफ़सोस हो रहा था कि क्या इसी दिन के लिए उन्होंने शक्तिसिंह की परवरिश की थी, उसकी और उसके लड़के रामदयाल की शादी की थी? अच्छा होता यदि उस बेल को वह वहीं पर सूख जाने देते। न उगता बाँस, न बजती बाँसुरी। फिर क्यों यह नौबत आती? और अन्त में उनका विचार आ कर टिक गया उन्हीं घी के रुपयों पर, जिन्हें देने का इस समय उनके पास कोई प्रबन्ध नहीं था और वह रुपया उनके गले को अपने फंदे में कसता जा रहा था।

"सब ग़लती मेरी ही है बेटी! मैंने ही तुम लोगों के रास्ते में काँटे बोये हैं।" गम्भीरतापूर्वक मुंशी चतुर्भुजसिंह ने कहा। "मुझे स्वप्न में भी पता नहीं था कि मेरे भाई और उनके बाल बच्चे ही तुम लोगों के मार्ग के काँटे बनेंगे।"

उनकी आत्मा इस समय अपने अन्दर ऐसा महसूस कर रही थी कि मानो उन्होंने कोई बहुत बड़ा अपराध किया है। अपने छोटे भाइयों को पढ़ा कर उनके विवाह किये, उन्हें खाने-कमाने योग्य बनाया, यह सब उन्होंने अपने बच्चों के साथ अन्याय किया।

चतुर्भुजसिंह ने अब अनुभव किया कि उनका अस्तित्व उनकी स्त्री और उनके बच्चों के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए लेशमात्र भी नहीं था। और यदि उन्होंने अपना उपयोग किसी अन्य के लिए किया तो उन्होंने अपने बाल-बच्चों के साथ अन्याय किया। हरकली और ज्ञानव्रत की दृष्टि में उन्होंने यह एक बहुत बड़ा अपराध किया था।

अपना यह अपराध मुंशी चतुर्भुजसिंह की दृष्टि में, जितना वह सोचते थे उतना ही और निखर कर सामने आता था।

शक्तिसिंह और अग्निदत्त द्वारा परिवार की उन्नति में दिये गए योग में उनका अपना कुछ नहीं था। वे दोनों थे ही क्या ? गाँव के अन्य नाचीज़ प्राणियों की तरह वे भी ज़मीन न रहने पर ढोर चराने वाले ग्वाले होते या किसी ज़मीन वाले की ज़मीन पर हल जोतने वाले मज़दूर। उन्हे इस योग्य बनाने का श्रेय मुंशी चतुरसिंह को ही है। इसलिए जो कुछ भी उन लोगों ने किया, उसमें उनका कोई अहसान नहीं था उन पर। उन्हें तो वह सब कुछ करना ही चाहिए था।

हरकली और ज्ञानव्रत के दिलों में रामदयाल से इस प्रकार मारखाजाने की जलन कुछ कम न थी, परन्तु आज हरकली ने जो क़िला फ़तह किया था उसकी प्रसन्नता से भी दोनों की बाँछे खिल रही थीं।

पिताजी से ये सब बातें कुए की मन पर बैठ कर जंगल के एकांत कोने में हुई। यहाँ से हरकली और ज्ञानव्रत पिताजी को वहीं बैठे छोड़ कर घूमने के लिए अपने बाग़ की तरफ़ निकल गये। पिताजी की नज़रों से दूर होते ही दोनों प्रसन्नता से उछल पड़े और ज्ञानव्रत ने छाती ठोंक कर कहा, "जीजी आज तो आपने बस कमाल ही कर दिया। रामदयाल हमें उल्लू बना कर चला गया, परन्तु इसे मैं उसकी कोई विशेष अक्लमन्दी नहीं समझता। उसने ऐसा करके अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली। हमारा रास्ता अब बिल्कुल साफ़ हो गया।"

"तुमने ठीक समझा ज्ञानव्रत ! आज की बातों ने पिताजी की आँखें खोल दीं। अब मेरे लिए रामदयाल और अग्निदत्त चाचाजी को समझ लेना कुछ कठिन नहीं रहा। उनके पतंग अब मैं जिस हत्थे पर चाहूँगी, काट दूंगी। काटना तो तनिक पिताजी का मुश्किल था।"

"लेकिन जीजी ! आज किया तुमने वास्तव में कमाल। ग़लती खाई हम लोगों ने और पड़ी बेचारे पिताजी के सिर।" फिर दोनों भाई बहन हाथ-में-हाथ डाल कर खिलखिलाकर हँस

परन्तु जंगल का वायु-मण्डल प्रफुल्लित न हो सका। वह उसमें अपना हृदय न मिला सका।

घोर अंधकार छाता हुआ चला जा रहा था और जंगल में रात्रि को इधर-उधर निकल कर घूमने वाले जानवरों के शब्द सुनाई देने लगे थे। उन्होंने सुना कि एक गीदड़ बुरी तरह रोता हुआ दौड़ा चला आ रहा है। ज्ञानव्रत ने घबराकर भी अपनी वीरता का परिचय दिया, परन्तु हरकली का दिल थर-थर काँप रहा था।

"अब वापस चलें ज्ञानव्रत! और आगे बढ़ना व्यर्थ है।" हरकली बोली।

"क्यों जीजी, क्या भय लग रहा है? इस ज़रासे गीदड़ से डर गई। पिताजी जैसे शेर का मुक़ाबिला करने वाली मेरी बहन इस नाचीज गीदड़ का रोना सुन कर काँप उठेगी, यह तो मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता।"

परन्तु, हरकली और आगे न बढ़ सकी। ज्यों ही वे वापस लौटे तो सामने आसमान में चाँद मुस्करा रहा था। मानो कह रहा था, "वाह रे पहलवानो! तुमने आज अपने पिता पर विजय प्राप्त की है। तुम महान् हो, आदर के पात्र हो। मैं तुम दोनों के सामने नतमस्तक होता हूँ।"

और वास्तव में चाँद ने एक छोटी सी बदली में अपना मुँह छिपा लिया। इन वीर भाई-बहनों के मुख-मण्डल का तेज वह सहन नहीं कर सकता था। उसे भय था कि कहीं उसके अन्दर का काला धब्बा उनके तेज से और फैल कर पूरे चाँद को न ढक ले।

: १५ :

सन् तीस का नमक-क़ानून तोड़ने वाला गाँधी जी का आन्दोलन चल रहा था। सभी जगह उसका ज़ोर था। मेरठ, जोकि सन् सत्तावन के विद्रोह का प्रथम केन्द्र था, वह भला उससे पृथक् कैसे रह सकता था। एक आँधी उठ रही थी आन्दोलन की, और ऐसा प्रतीत होता था कि यह आँधी अंग्रेज़ी सरकार को अपने वेग में उड़ाकर भारत से सात समन्दर पार लेजाकर उनके अपने टापू पर पटक देगी।

समाज का कोई वर्ग ऐसा नहीं था जिसमें जोश नहीं था। स्कूल के विद्यार्थियों में तो जोश का कोई ठिकाना ही न था। उन्होंने तो सोच लिया था कि अब गुलाम देश में रह कर वे गुलामी की तालीम हासिल नहीं करेंगे।

नित्य नये-नये जुलूस निकलते थे। सत्याग्रहियों के जत्थे नमक-क़ानून तोड़ने के लिए जाते और बन्दी बनते थे। मेरठ के स्त्री और पुरुष उन्हें आदर, प्रेम और श्रद्धा के साथ बिदा करते थे। देवियाँ उनके गलों में मालायें पहनाती थीं। नगरवासी अपने घरों के सामने उनके नाश्ते तथा फल-फलौरी का प्रबन्ध करते थे और बाद में कुछ दान-दक्षिणा भी देते थे।

उनके विचार से ये ही आने वाली सरकार के वे होने वाले सिपाही थे जिनके हाथों में नई सरकार की बागडोरें सँभाली जाने वाली थी।

हरकली भी इस देश-भक्ति के मामले में किसी से पीछे नहीं थी। वह जुलूसों में शामिल होती थी, तिरंगे झंडे का गान गाती थी, थाल में हल्दी लेकर वीर सत्याग्रहियों को तिलक

चढ़ाती थी, परन्तु कुछ देने-लेने के नाम पर मौन रहती थी। आख़िर वह बेचारी देती भी क्या ? अबला होकर इतना सब कुछ देश के लिए कर रही थी, यही क्या कुछ कम वीरता और त्याग की बात थी उसके लिए?

अपने छोटे भाई ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत को उसने ताकीद कर रखी थी, "ख़बरदार जो इन झमेलों में हिस्सा लिया। एक परिवार से देश-भक्ति में हिस्सा लेने के लिए एक ही आदमी काफ़ी होता है।" और यह काम वह स्वयं पूरा कर रही थी।

अग्निदत्त के लड़के राजू को उसने खुली छूट दे रखी थी। और राजू स्वयं भी किसी के कहने की कोई चिंता नहीं करता था। नमक-क़ानून तोड़ने के लिए जाने वाले जत्थों को जब वह देखता था तो उसका दिल उमंगों से भर जाता था, जब उनके गलों में मालाएँ पड़तीं उसे दिखाई देती थीं तो उसकी छाती आगे को फूलने लगती थी, जब स्वयंसेवकों के मस्तकों पर नगर की देवियाँ अपने कोमल कर-कमलों से तिलक करती थीं तो उसका मस्तक आप-से-आप आगे को उभर जाता था और जब उन स्वयंसेवकों के क़दम आगे बढ़ते थे तो राजू के क़दम भी पीछे नहीं रह पाते थे। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ कर उनकी क़तारों में मिल जाता था।

इस प्रकार वह कई बार उनकी पंक्ति में मिला और कई बार खिसक कर बाहर आ गया। कुछ दूर तक जुलूस के साथ इसी प्रकार आगे बढ़ता गया और उसके दिल की भावना धीरे-धीरे मज़बूती पकड़ती गई। थोड़ी देर पश्चात् उसने अपने को उस जत्थे के बीच पाया और उसने देखा कि उसके गले में भी फूल-मालाएँ पड़ रही थीं, उसके मस्तक पर भी वीर ललनाएँ तिलक चढ़ा रही थीं, और वह भी घर-घर पर होने वाले जलपानों का मेहमान था।

हरकली भी इस जुलूस में शामिल थी। वह भी जत्थे के वीर सत्याग्रहियों का तिलक करती थी और उसने अपने भाई

राजू का भी प्रसन्नतापूर्वक तिलक किया और कहा, "वीर तथा साहसी रहना राजू !" उसका एक भाई देश पर बलिदान होने जा रहा था, इसकी उसे हार्दिक प्रसन्नता थी ।

राजू जत्थे में भर्ती हो गया, और रात को घर नहीं आया। हरकली ने उसी दिन अपने चचा अग्निदत्त को पत्र लिख दिया, "राजू बहुत बिगड़ता जा रहा है । वह किसी का कहना नहीं मानता । हमारे लाख मना करने पर भी वह काँग्रेस में भर्ती होकर नमक-क़ानून तोड़ने चला गया ।"

यह सूचना मिलते ही अग्निदत्त और उसकी स्त्री के दिलों में खलबली मच गई। हरकली की चालों से अब वे अपरिचित नहीं थे। अग्निदत्त ने दफ़्तर से छुट्टी लेने का प्रयत्न किया, परन्तु छुट्टी न मिल सकी। छुट्टी न मिलने का भी एक कारण था और वह यह कि इस समय अग्निदत्त की वह दिल्ली वाली रौब-दौब की नौकरी नहीं चल रही थी। वह यहाँ बदल कर आया था तो यों वेतन में कोई कमी नहीं हुई थी, परन्तु नौकरी रात-दिन की देनी पड़ती थी। दफ़्तर में बिजली के पंखे के नीचे बैठने और अपने ही हाथ से अपने आफ़िस के हेड को नचाने का काम अब उसका नहीं था ।

यह यातना बाबू अग्निदत्त को अपने आर्यसमाजी चरित्र के कारण भुगतनी पड़ रही थी, जिसका कि सबक़ उन्हें मुंशी चतुरसिंह ने ही पढ़ाया था। आर्यसमाज के प्रधान की हैसियत से आपने बहुत सी मुसलमान लड़कियों को शुद्ध करके उनके हिन्दू घरानों में विवाह कराये थे। उनकी इन हरकतों ने उन्हें स्टाफ़ के मुसलमानों का शत्रु बना दिया था। परन्तु बाबू अग्निदत्त का रौब इतना अधिक था कि कोई सामने आँख मिलाकर नहीं बोल सकता था।

अग्निदत्त अपनी अक्ल के सामने हल्के-मोटे इंसान को कुछ समझता नहीं था। अपने इन्चार्ज और इंसपेक्टरों को तो वह उंगली पर नचाता था। उसके काम का रेकाड आलीशान था

और आज तक एक भी चेकर दफ़्तर में ऐसा नहीं आया था जो अग्निदत्त की तारीफ़ लिखकर न गया हो। अग्निदत्त का यह रेकार्ड उसकी एक ज़बरदस्त ढाल थी, जिस पर वह बड़े-से-बड़े वार को मुस्करा कर सँभाल सकता था। अंग्रेज अफ़सरों पर उसकी छाप थी।

परन्तु जो अधगोरे अफ़सर इस बीच में आये, यानी जो अंग्रेज़ तो थे नहीं और हिन्दुस्तानी भी उन्हें नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उन्होंने ईसाई धर्म क़बूल कर लिया था, और उनके माता या पिता में से एक शायद अंग्रेज़ भी रहा हो, उनके साथ अग्निदत्त की पटरी नहीं बैठती थी।

अभी-अभी जो एक इंसपेक्टर आया, उसे स्टाफ़ के मुसलमानों ने मिलकर डाली दी, और बाबू अग्निदत्त के बारे में शिकायत की कि वह स्टाफ़ के आदमियों से रिश्वत लेता है। इंसपेक्टर महोदय ने अपने पद के रौब में बात की जाँच किये बिना ही बाबू अग्निदत्त का वहाँ से तबादला लिख दिया।

अग्निदत्त को यह आर्डर मिला तो वह ठगा सा रह गया। कुछ समझ में न आया थोड़ी देर, कि वह क्या करे? तबादले की उसे चिंता नहीं थी, चिंता थी उसे अपमान की, कि जिसे वह उन आदमियों के सामने अनुभव कर रहा था, जिन्होंने वह करवाया था।

अग्निदत्त चुपचाप रात की ही गाड़ी से दिल्ली गया और डिवीज़नल आफ़ीसर के बंगले पर पहुँच कर सलाम झुकाते हुए केवल इतना भर कहा, "हुज़ूर! अभी तक तो हम लोगों को पता था कि हम सुपीरियर स्टाफ़ के मुलाज़िमों का तबादला सरकार ही कर सकते हैं। परन्तु क्या अब ये हक़ूक भी आपने अपने मातहतों को दे दिये हैं?"

"बिलकुल नहीं बाबू! साफ़-साफ़ कहो, क्या बात है?" अंग्रेज़ अफ़सर ने अपनी तौहीन समझते हुए अग्निदत्त से पूछा।

अग्निदत्त ने कुछ कहा नहीं, केवल अपने तबादले का आर्डर

अफ़सर के सामने पेश कर दिया।

आर्डर को देखना था कि अफ़सर आग बबूला हो उठा। उसने गुस्से में पैर पटका और कड़क कर बोला, "डैमफ़ूल, नॉनसेन्स, ईडियट।"

और तुरन्त अपनी जेब से फाऊंटेनपेन निकाल कर उसी तबादले के आर्डर पर लिख दिया, 'ट्रॉंसफ़र कैंसिल्ड' और नीचे कर दिये अपने हस्ताक्षर।

बाबू अग्निदत्त ने साहब को सेल्यूट किया।

अफ़सर द्वारा प्रदान की गई इस अमोघ शक्ति को जेब में रखकर बाबू अग्निदत्त दूसरे ही दिन नौकरी पर पहुँच गये और तीसरे दिन दफ़्तर में सुबह-ही-सुबह जाकर मेज़ पर बैठ कर नित्य का काम करने लगे।

बाबू अग्निदत्त नित्य की भाँति शांतिपूर्वक काम कर रहे थे। उनके मुख़ालिफ़ लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि बाबू के माथे पर एक भी शिकन नहीं और न ही उन्हें किसी प्रकार की परेशानी है। वह तो इस तरह काम कर रहे हैं मानो तबादला हुआ ही नहीं।

तमाम स्टाफ़ में सनसनी थी। चारों ओर कानाफसी चल रही थी। इंसपेक्टर को डाली देने वाले लोगों ने उसे जाकर बाबू की इस हरकत की सूचना दी तो वह सब काम छोड़कर सीधा दफ़्तर की ओर आया और बिला इस बात को सोचे कि उसे इंचार्ज के दफ़्तर में बैठकर बाबू अग्निदत्त को बुलाना चाहिए वह सीधा ही बाबू अग्निदत्त के दफ़्तर में पहुँच गया।

"तुमने अभी तक चार्ज नहीं दिया बाबू ?" उसने पूछा।

अग्निदत्त ने तपाक के साथ खड़े होकर सलाम झुकाते हुए जेब से वह पर्चा निकाल कर साहब के सामने पेश कर दिया जो वह दिल्ली से लिखा कर लाया था।

पर्चे पर इंसपेक्टर की नज़र पड़ी तो वह सन्न रह गया। उसके पैरों के नीचे से ज़मीन निकल गई और वह उलटे ही

पैरों बिना एक शब्द कहे वहाँ से अपनी कोठी की तरफ़ चला गया। परन्तु चलते समय उसकी दृष्टि उस क़साई के समान थी जिसके सामने ज़िबह करने लिए गाय तो खड़ी हो परन्तु उसका ज़िबह करने का औज़ार टूट गया हो।

ज्योंही इंसपेक्टर ने गर्दन मोड़ी त्योंही अग्निदत्त मुस्कराया और उसकी मुस्कराहट के व्यंग्य को आस-पास के चपरासियों, नम्बरटेकरों, क्लर्कों और अन्य सभी लोगों ने अनुभव किया। जिस तेज़ी के साथ अग्निदत्त के तबादले की बात हवा में फैली थी उसी तेज़ी के साथ उसके कैंसिल होने की भी बात हवा में फैल गई।

दफ्तर के इंचार्ज ने भी सुना तो उसने अग्निदत्त को शाबाशी देते हुए कहा, "टुमने टीक किया बाबू! आज का डिन टुमारा बाट टा, कल का डिन अमारा बाट बी ओ शकटा ए। ए बौट केराब बाट टा कि सुपीरियर स्टाफ़ का आडमी को इन्सपेक्टर टबाडला करे।"

यार लोगों ने तो अग्निदत्त को हाथों-हाथ उठा लिया इस घटना पर, और शाम को क्वार्टरों के सामने लोगों ने चन्दा करके पेड़े भी आपस में तक़सीम किये।

ये सभी सूचनाएँ मुख़ालिफ़ लोगों ने ज़ाकर इंसपेक्टर को दीं तो उसके तन-बदन में आग लग गई।

आज यह अग्निदत्त की विजय अवश्य हुई परन्तु वह आख़िर था तो एक अदना-सा बाबू ही।

अपनी गुस्ताख़ी का फल उसे एक दिन भोगना ही पड़ा और उसे बदल कर क्लर्की से नीचे नम्बरटेकरी पर सहारनपुर से भी छः मील दूर ख़ान आलमपुरा गुड्सयार्ड में रात-दिन की नौकरी बजाने के लिए भेज दिया गया।

कहते हैं कि भगवान् जब मुसीबत देता है तो एक ओर से नहीं देता। चारों ओर से इम्तहान लेता है। जहाँ एक और यह नम्बर-टेकरी का परीक्षा-काल चल रहा था वहाँ दूसरी ओर हरकली

भी अपने जौहर दिखा रही थी। ज्ञानव्रत भी अपनी करनी से बाज़ नहीं आ रहा था, और भाई साहब, वह तो दास हो चुके थे हरकली और ज्ञानव्रत के।

उन्हें रह-रह कर क्रोध आ रहा था हरकली पर कि हो-न-हो उसकी ही लापरवाही से राजू पढ़ना-लिखना छोड़कर नमक क़ानून तोड़ने की राह पर लग गया है।

अग्निदत्त को छुट्टी न मिली तो उनकी स्त्री ही मेरठ पहुँची और वहाँ जाकर उसे पता चला कि राजू काँग्रेसी जत्थे में शामिल होकर ग़ाज़ियाबाद चला गया है। बड़ी मुश्किल से ज्ञानव्रत को लेकर वह ग़ाज़ियाबाद गई तो क्या देखा कि राजू सत्याग्रह आश्रम में बीमार पड़ा था। कोई उसकी सुध-बुध लेने वाला नहीं था। एक सौ तीन डिग्री बुखार था, और शरीर जल रहा था। अग्निदत्त की स्त्री ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया।

राजू को वह वहाँ से वापस ले आई, परन्तु राजू बीमारी में भी आने को तैयार नहीं था। वह जेल जाना चाहता था, नमक-क़ानून तोड़कर।

: १६ :

सिरसे के मकानात और जंगल की ज़मीन पर हरकली पूरी तरह काबिज़ हो चुकी थी। ज्ञानव्रत ने खेती का कारोबार संभाल लिया था। गाँव के चौधरी लोगों में वह अपना विशेष स्थान समझता था और आस-पास की बिरादरी में भी मूँछों पर ताव देकर बातें करता था। चार पसलियों का यह जवान लड़का जीदारी और दिलेरी में रुस्तम से कम ताक़त वाले इंसानों की बातें करना अपनी हिमाक़त समझता था। जब कोई उसके सामने आने पर कह देता, "अरे आज तो सिरसे की चौधर ही चली आ रही है।" तो वह फूलकर कुप्पा हो जाता था।

ज्ञानव्रत कभी-कभी हरकली से कहता था, "अब मैं सिरसे की जायदाद का सोलहों आने मालिक हूँ। शक्तिसिंह और अग्निदत्त की पीढ़ियाँ सिरसे से समाप्त हो चुकी है। क़ानून से उनका जायदाद में एक बटा बारहवाँ हिस्सा निकलता है, सो वह मैं मुक़दमे के खर्चे की डिग्री में नीलाम करा लूँगा।"

घर से दो फर्लांग के फ़ासले पर गाँव के दक्षिण-पूर्व की दिशा में इनका कुआ था और उसी के पास इनकी वह जरखेज़ जमीन थी जिसे लहलहाती हुई देखकर चौधरी आभाराम के मुँह में पानी भर आया था और वह अपने पाँचों बेटों को लेकर उस पर क़ब्ज़ा करने के लिए बाज़ की तरह टूट पड़े थे। उसी पर अब ज्ञानव्रत और हरकला की खेती लहलहा रही थी। ज़मीन यह सोना उगलती थी। जो कुछ भा बो दिया जाता था, पौबारह हो जाते थे।

हरकली मस्ती में अपने कुए के इर्द-गिर्द झूमती और इठ-

लाती हुई फिर रही थी। ज्ञानव्रत भी उसके साथ-साथ घूम रहा था। हरकली मस्करा कर बोली, "ज्ञानव्रत! तुम्हें पता है पिता जी अब फिर तबादला होकर मेरठ में आ रहे हैं।"

"कब जीजी! कब?"

"दो ही महीने में। बस फिर वही रौब रहेगा। राजू का पत्ता में काट ही चुकी हूँ। अब कोई इधर-उधर की अलाय-बलाय हमारे गले में आकर नहीं फँस सकती। तुम लोगों के रास्ते में पिताजी ने जो काँटे बिछा रखे थे, मैंने वे सब साफ़ कर दिये हैं।"

ज्ञानव्रत कृतज्ञता पूर्वक बोला, "जीजी! तुम न करतीं तो ये मुसीबतें हमें आइन्दा बड़ा दुःख देतीं। और एक बात यह भी अच्छी हा हुई कि चचा शक्तिसिंह जल्दी ही मर गये। यदि वह न मरते तो हमें सिरसे की ज़मीन पर कब्ज़ा करने में दिक्कत होती।" और फिर अपनी लहलहाती हुई खेती की तरफ़ इशारा करके बोला, "यह ज़मीन जो सोना उगलती है, उन्हीं के पेट में समाई रहती, हमें एक खूड भी न मिलता।"

"भगवान् भी तो आख़िर कोई चीज़ है ज्ञानव्रत! मैं कहती हूँ भगवान् में विश्वास करो। मैं भी तो वही कहती हूँ जिस बात की भगवान् मुझे प्रेरणा देते हैं। चचा शक्तिसिंह के मर जाने से हम लोगों का रास्ता साफ़ हो गया। कुछ दिन में सिरसे के लोग-बाग यह भी भूल जायेंगे कि यहाँ शक्तिसिंह नाम का कोई आदमी रहता भी था या नहीं।" हरकली ने कहा।

"भूल क्या जायेंगे जीजी, भूल गये। सब लोग आज यहाँ तुम्हारे भाई का गुण गाते हैं। अभी तुम देखोगी कि आस-पास के देहात में तुम्हारे ही भाई का डंका बजेगा। किसी की क्या मजाल जो सामने भी पड़ सके। और रही बात रामदयाल, धर्मप्रकाश और राजू की, सो उन्हें तो मैं नाखून के मैल के बराबर भी नहीं समझता।" गर्व से सीना उभार कर ज्ञानव्रत बोला।

"क्यों नहीं! मुंशी चतुर्रसिंह का नाम तुम्हीं को तो रौशन करना है। उन्हीं की बंसवेल को आगे बढ़ाना है। तुमसे मुझे

यही आशा है।"

"रामदयाल और अग्निदत्त चाचाजी, इस समय सिरसे आने वाले नहीं हैं। नौकरियाँ छोड़कर ये लोग यहाँ आकर नहीं बस सकते। धर्मप्रकाश और राजू अभी भुनगे ही हैं, फूँक मार दोगे तो उड़ जायेंगे। इसी बीच में मैं वह क़ानूनी दाँव-पेंच पिताजी से फैलवाती हूँ कि कहीं खेवट और खतौनी में उनके नामों का इन्द राज ही न मिले" हरकली गम्भीरतापूर्वक बोली।

"बस बात तो दरअसल तभी बनेगी जीजी! उससे पहले तो मुझे यह सब हवा का सा ही बवूला नज़र आता है।" उसी तरह संजीदगी के साथ ज्ञानव्रत बोला। मानो वस्तुस्थिति की गम्भीरता को वह थोड़ा-थोड़ा समझने का प्रयास कर रहा था।

"तुम चिन्ता न करो इसकी। मैं तुम्हारे सिर पर बैठी तो हूँ इन बातों की चिंता करने के लिए। तुम लोग तो खाओ-पीओ और मस्त रहो। अपने शरीर की ताक़त को बढ़ाओ। अपने छोटे भाई को पहलवानी के दाँव-पेंच सिखाओ। उसके अन्दर वीर भैंसे की शक्ति भर दो कि जिससे वह तुम्हारे और मेरे संकेत पर, जहाँ भी आवश्यकता पड़े, भिड़ जाये। अक्ल से काम लेने को मैं काफ़ी हूँ।" हरकली ने कहा।

"तुमने बहुत ठीक सोचा जीजी! छोटा भाई हमारा पूरी तरह फ़रमाबरदार है। वह ताक़त में भी किसी से कम नहीं है। और जीजी! तुम सच समझो, ताक़त की तो मेरे इन भुजदण्डों में भी कमी नहीं है।" वह छटाँक भर का पिदना सा आदमी अपने भुजदण्डों को रस्सी की तरह ऐंठता हुआ बोला, "रामदयाल, धर्मप्रकाश, राजू और अग्निदत्त जैसे नाचीज इंसानों को मैं मकड़ी और मच्छर से अधिक और कुछ नहीं समझता।"

ज्ञानव्रत की दिलेरी की बातें सुनकर हरकली का हौसला बढ़ा और उसका साहस दुगना हो गया। उसने गर्व के साथ अपने भाई की उभरती हुई जवानी की तरफ़ देखा और समझा कि वह वाक़ई कुछ कर सकेगा।

"परन्तु जीजी, सच पूछो तो मुझे अभी तक पिता जी पर भरोसा नहीं हो रहा। और तुम देख लेना कि हमारे विचारों और उम्मीदों की किश्ती अगर कभी डगमगाये या डूबेगी, तो पिता जी की ही वजह से डगमगाये या डूबेगी।" आशंकित होकर ज्ञानव्रत बोला।

ज्ञानव्रत की इस बात से हरकली भी सहमत थी। अपने पिता जी की कमज़ोरियों को वह जानती थी और इसी लिए उनकी सब कमज़ोरियों को वह धीरे-धीरे अपने हाथ में लेती चली जा रही थी।

हरकली को अपने पिताजी की सब ओर से नाकाबन्दी करनी पड़ती थी। पिताजी के अन्दर उसे चारों तरफ़ न जाने कितने छेद दिखलाई देते थे और ये सभी उनकी कमजोरियों के सूराख़ थे, जिनके अन्दर से उनके परिवार के सगे-सम्बन्धी उनके अन्दर घुस बैठते थे। हरकली इन सभी सूराख़ों पर प्लास्टर करती चली जा रही थी। वह उनके शरीर, दिल और दिमाग़ में कोई भी ऐसा सूराख़ नहीं छोड़ना चाहती थी कि जिसके रास्ते से उनके परिवार के किसी सगे-सम्बन्धा की आवाज़ उनके पास तक पहुँच सके। वह उनके अन्दर केवल एक ही सूराख़ रहने देना चाहती थी, जिसके द्वारा उसकी अपनी बात उनके पास तक पहुँचे और इस सूराख़ पर हरकली अपना पहरा रखती थी। इस सूराख़ को वह जहाँगीर के घंटे की ज़ंज़ीर नहीं बना देना चाहती थी कि जो चाहे उसे हिलाये और शाह के पास तक अपनी बात पहुँचा दे।

इसके दूसरे माने यह थे कि हरकली मुंशी चतुर्भुजसिंह के चारों तरफ़ अपने ख़यालातों की एक दीवार खड़ी करती हुई चली जा रही थी और इस दीवार का यह एक ऐसा सुदृढ़ क़िला बना देना चाहती थी कि जिसके अन्दर का वातावरण हर समय हरकली-ही-हरकली बोले, हरकली-ही-हरकली सुने।

"मैं एक क़िला बना रही हूँ ज्ञानव्रत! तुम चिंता न करो

और फिर देखना कि पिताजी को उसके अन्दर बंद करके कितने आराम के साथ रखती हूँ। परिवार और रिश्तेदारों की जिन उलझनों में वह फँस चुके हैं उनसे एक ही झटके में उन्हें खींच कर बाहर ले आऊँगी। मैं उनका बुढ़ापा परिवार की परेशानियों में ख़राब नहीं होने दूँगी। मुझे देखना है कि अब कौन इस क़िले के अन्दर घुस पाता है।" यह कहते हुए हरकली की भँवें तनती जा रही थीं और उसके दृढ़ विश्वास तथा कर्मठता के सामने ज्ञानव्रत खड़ा-खड़ा नतमस्तक हो रहा था।

"इस विकट कार्य को तुम अवश्य कर सकोगी जीजी और इसके बिना निस्तार भी नहीं है। रामदयाल ने शादी के घी का रुपया पिता जी को न देकर सच जानो हमें अपने काम में आगे बढ़ने का बहुत सुन्दर अवसर दिया। एक ज़माना वह भी था जब पिता जी को रामदयाल से अधिक घर में कोई प्यारा ही नहीं था। वह प्यार आज सब हवा हो गया। परन्तु अभी तक, चाहे जो कुछ भी तुम कहो, अग्निदत्त चाचा जी का असर उनके मस्तिष्क पर से नहीं उतरा है।" ज्ञानव्रत गम्भीरता पूर्वक बोला।

और यह बात सच थी। इस बात की सचाई के सामने हरकली को नतमस्तक होना पड़ा। वह ज्ञानव्रत की बात को फौरियों पर नहीं उड़ा सकती थी, उसमें भारीपन था।

यह सच था कि अग्निदत्त के मुंशी चतुरसिंह पर जमे हुए प्रभाव की जड़ें वह काफ़ी हद तक अपने पैने नाखूनों से कुरेद चुकी थी, उस मज़बूत पेड़ के तने को अपने तेज़ दाँतों से रगड़-रगड़ कर अधकटा कर चुकी थी, परन्तु वह अभी वहीं, अपने ही स्थान पर, मज़बूती के साथ लगा था। मन से हरकली यह जानती थी कि वह बेलाग टहना है और मुंशी चतुरसिंह का सहारा पाकर नहीं खड़ा है। वह खड़ा है अपनी जड़ों पर। और वे जड़ें भी काफ़ी मज़बूत हैं। उन्हें नोचकर यों साधारणतया उसका उखाड़ फेंकना उसके लिए सरल कार्य नहीं है।

हरकली एक बहुत मज़बूत इरादे की स्त्री थी और जो

कुछ उसने स्याह या सफेद करने की ठान ली थी उसमें बाल बराबर भी अन्तर आने वाला नहीं। उसमें खम नहीं पड़ सकता, उसका रास्ता नहीं बदल सकता।

वह गम्भीरता पूर्वक बोली, "ज्ञानव्रत ! तुम चिंता किसी बात की न करो। परमात्मा पर भरोसा रखो। वह सब ठीक ही करेगा। पिता जी का दिमाग़ खुद-ब-खुद रास्ते पर आ जायेगा। समय अपने आप बतला देगा कि हम लोग उनके हित की बातें करते हैं या उनके भाई भतीजे। और तुम देखोगे कि बहुत ही जल्द पिता जी का मन उन सब लोगों की तरफ़ से फिर जायगा।"

बातों का वातावरण तनिक गम्भीर हो उठा था। इसलिए इस बात को यहीं पर छोड़कर दोनों अपने खेत के डौलों पर से होते हुए आगे निकल गए। खेत के दूसरे किनारे पर जाकर देखा कि उनकी आलू और अरबी की खेती लहलहा रही थी।

आलू और अरबी की ज्ञानव्रत ने नये तरीके से खेती की थी। सोसायटी से खाद लाकर डाला था। गाँव में कुछ माली लोग आलू-अरबी सब्जी के लिए, ज़रूर बोते थे, परन्तु खेती के रूप में यह पहला ही प्रयास था सिरसे के जंगल में, और उसके आसार बहुत ही अच्छे दिखाई दे रहे थे।

"ज्ञानव्रत यह सब्ज़ी की खेती हमें बहुत अच्छा पैसा देगी।" हरकली ने कहा।

"हाँ हाँ जीजी ! इसकी बड़ी भारी पैदावार है। हापुड़ के आस-पास इसकी ज़बरदस्त खेती होती है। कई लाला लोगों ने काश्त कराई है और बड़ा धन कमाया है। भगवान् ने चाहा तो कुछ ही दिनों में हमारे भी लाखों के वारे-न्यारे होंगे।" ज्ञानव्रत ने दिल में उमंग लेकर कहा।

लाखों से कम की बातें इन दिनों ज्ञानव्रत के दिमाग़ पर चढ़ती ही नहीं थीं। उसकी इन बातों को सुनकर न केवल हरकली वरन् मुंशी चतुरसिंह का मस्तिष्क भी उन्नति के उच्च-

तम शिखर पर पहुँच जाता था। उन्हें भी अपने भविष्य का स्वर्ण-युग दिखाई देने लगता था और अपने ऊपर भी गर्व होता था कि उन्होंने ऐसे नर-रत्न को जन्म दिया जो सिरसे की इस ज़मीन से, जिससे शक्तिसिंह कभी ठीक तरह अपना पेट भी न भर सका, लाखों रुपयों की न्योंलियाँ भर-भर कर एक दिन उनके सामने लगा देगा।

ज्ञानव्रत की माता जी को तो यह सब एक ख़्वाब सा दिखाई देता था। लाख को हज़ार और हज़ार को लाख कह कर वह अपने मन-ही-मन दुहरातीं और प्रसन्न होती थीं। बस अन्त में वह इतना ही समझती थीं कि उनका लाल ज्ञानव्रत रुपयों की खेती कर रहा है जिससे जब जितने भी रुपये चाहें उखाड़ लिये जायँगे।

आनन्द का साम्राज्य छाया हुआ था जिसमें हर ओर मंगल-ही-मंगल था। आमदनी की कुछ थाह नहीं थी। घर-ख़र्च करके भी काफ़ी बचत हो रही थी। ज़मीन-जायदाद सब अपनी छाती के तले थी। बाल-बच्चों के शादी-विवाह के फर्ज़ की सरिता को चतुरसिंह तैर कर पार कर चुके थे। केवल एक छोटे लड़के की शादी करनी शेष थी, सो वह साधारण बात थी।

घर भर की आँखें इस समय ज्ञानव्रत की बहू की ओर लगी हुई थीं। मुंशी चतुरसिंह पिता से बाबा बन जाना चाहते थे। कई वर्ष हो चुके थे ज्ञानव्रत की शादी हुए और घर में बहू को रहते, परन्तु भगवान् ने उनकी अभी तक यह प्रार्थना नहीं सुनी थी।

चतुरसिंह को नित्य सुबह-शाम संध्या करते समय इस बात की याद आजाती थी और एक बार ही नहीं कई बार भगवान् के सामने मस्तक झुका कर वह पोते की मनोकामना प्रकट करते थे, यज्ञ में पोते के नाम की आहुति देते थे। आँच-वन करते समय भी उन्हें ज्ञानव्रत की वह गोरी-गोरी पतली-पतली बहू और उसकी गोद में कोई कुलमुलाता हुआ जीव

देखने की कामना रहती थी।

ज्ञानव्रत की माता जी तो अधीर ही रहती थीं इस बात को लेकर। उन्हें तो बल्कि चिन्ता भी होने लगी थी कि आखिर इतने दिन शादी को हो जाने के पश्चात भी अभी तक फल क्यों नहीं लगा।

गाँव भर की बड़ी-बूढ़ियों में चर्चा होती थी तो वे सब सामने सहानुभूति प्रकट करती हुई कहती थीं, "हरकली की माँ! अभी देर ही क्या हो गई है? भगवान् सब देगा, आखिर देगा क्यों नहीं? जब बेल है तो उस पर फल ज़रूर लगेंगे।"

फिर गाँव की दूसरी बहुओं की मिसालें पेश करके कहती "फलांनी के शादी के चार साल बाद बच्चा हुआ था, फलांनो के पाँच साल बाद और फलांनी के तो पूरे दस साल बाद बेटे ने जन्म लिया था।"

यह सुनकर हरकली की माँ का मन आशा से भर जाता था। उसे भी आशा बँध जाती कि किसी दिन उसकी बहू की भी गोद अवश्य भरीपूरी होगी।

हरकली और ज्ञानव्रत की कार्य-कुशलता से इस समय मुंशी चतुर्रसिंह के घर का वातावरण आनन्दमय था। हरकली अपने मन-ही-मन बुआ जी बन जाने के लिए उत्सुक थी।

इस प्रकार मुंशी चतुर्रसिंह का परिवार अपने अन्दर, धन और बाल-बच्चों की दिशा में, फलने-फूलने की कामना लिए उन्नति के पथ पर अग्रसर था।

: १७ :

ज्ञानव्रत का आज कल परिवार में बोलबाला था और वास्तव में घर का सिरताज आज मुंशी चतुरसिंह न होकर ज्ञानव्रत ही था। मुंशी चतुरसिंह भारत की प्राचीन संस्कृति के कायल थे। ज्ञानव्रत अब भाई का नाता प्राप्त कर चुका था। ज्ञान और विद्या में तो वह चतुरसिंह से कहीं आगे था। उसका स्वप्न भी चतुरसिंह से बड़ा था। उसमें साहस भी उनसे अधिक था।

मुंशी चतुरसिंह ने जहाँ हज़ारों के ख्वाब देखे थे, वहाँ ज्ञानव्रत लाखों से कम की तो बातें करता ही नहीं था और कभी-कभी तो जोश में आकर करोड़ों पर भी ज़बान घुमा जाता था। मुंशी चतुरसिंह के मँह में भी पानी भर आता था बेटे के इन ख़याली पुलावों पर।

घर में हरकली ने और बाहर ज्ञानव्रत ने, सम्पूर्ण सुख, शान्ति और समृद्धि का वातावरण बिछा दिया था। ज्ञानव्रत की बातें सुनकर तो लोग-बाग दाँतों तले उँगली दबाते थे। उनकी समझ में ही नहीं आता था कि उसकी इस छोटी सी खोपड़ी में आख़िर इतनी बड़ी अक्ल कैसे समाई हुई है।

ज्ञानव्रत का रौब जहाँ अपने पिताजी, माताजी, छोटे भाई और पत्नी पर था, वहाँ अपनी ससुराल वालों पर भी उसका दबदबा जमता जा रहा था। उसकी अक्ल का लोहा उसके ससुर भी मानने लगे थे।

अपने ससुर से बातें करता तो कहता, "हमारा तो सब कुछ पिताजी ने चौपट कर दिया है। वरना आज न जाने

कितना रुपया होता अपने पास। भाई-भतीजों के लिए ही मरते-मरते ये दिन आ गये और उनका पूरा न पड़ सका।"

"तुम्हारा खयाल ठीक है ज्ञानव्रत! इन परिवार वालों का पेट कभी भरता ही नहीं। मैंने भी न जाने कितना कुछ किया है किस-किस के लिये परन्तु ऐसा समझो कि बस रेत को पानी दिया है। और फिर तुम्हारा चचा अग्निदत्त एक नम्बर का मक्कार आदमी है। उसके सवाल का तो कुछ जवाब ही नहीं, उसका काटा पानी नहीं माँग सकता। जैसा ऊपर से स्याह है वैसा ही अन्दर से स्याह है।" ज्ञानव्रत का ससुर अपने दिल के अन्दर एक पुरानी कसक लेकर बोला।

"अजी वे दिन हवा हुए जब ख़लीलखाँ फ़ाख्ता उड़ाया करते थे। अब तो सब के पर क़ैंच होते जा रहे हैं। हरकली जीजी ने सब की नसें ढीली कर दी हैं। और तो क्या उन्होंने पिताजी के भी इधर-उधर बहकने को रोक दिया है। अग्निदत्त चाचाजी के ज़हर को भी अब देखना वह कैसे निकाल कर फेंकती हैं। जीजी का कहना है कि उस साँप को यदि उन्होंने बरसाती केंचुआ न बनाकर छोड़ा तो उनका नाम हरकली नहीं।" तनिक सीना उभार कर ज्ञानव्रत बोला।

"अच्छा! तो यह बात है।" मुस्कराते हुए ज्ञानव्रत के ससुर बोले। उनके दिमाग का ज्ञानव्रत के इन शब्दों से बहुत सन्तोष मिला।

"अब हम लोग तक़सीम दायर कराने वाले हैं पिताजी से। कुल जमीन के दस हिस्सों पर कानूनन पिताजी का नाम है और उन दोनों फरीकों को सिर्फ़ एक बटा बारहवाँ हिस्सा मिलना है। यदि सीधी तरह मान गए तो मान गये, वरना वह हिस्सा भी हम लोग अपने खर्चे की डिग्री में नीलाम करा लेंगे।" ज़रा अकड़कर ज्ञानव्रत ने अपनी दो-चार बालों वाली मूंछों को मेंठते हुए कहा।

ज्ञानव्रत के ससुर ने आज अपने मन में अपनी लड़की के

लिए वर छाँटने की दानिशमन्दी की सराहना की और देखा कि उसकी लड़की रानी बनी बैठी है सिरसे के इस परिवार में।

यह स्वप्न ज्ञानव्रत के ससुर ने उस दिन भी देखा था जब वह अग्निदत्त को उनका पुराना कर्ज उतारने के लिए नया कर्ज देने गया था। परन्तु उस दिन उसकी यह चाल नहीं चल सकी थी। आज उसके मस्तिष्क की वह ख़लिश आप-से-आप भगवान की कृपा से भरती हुई दिखाई दी।

ज्ञानव्रत के साथ उसका छोटा भाई भी आया था। ज्ञानव्रत के ससुर की दृष्टि उसकी ओर गई। उनके परिवार की एकाँकी स्थिति पर गई। उसकी तन्दुरुस्ती पर गई और फिर अपनी छोटी लड़की पर गई तो उसे घर बैठे-बिठाये ही अच्छा खासा दामाद मिल गया।

ज्ञानव्रत दूसरे दिन चला आया, परन्तु छोटे भाई को उस के ससुर ने नहीं आने दिया। कह दिया, "दो चार दिन और रहकर यह आ जायगा। तुम जाओ, तुम्हें घर का काम-काज देखना होगा।"

ज्ञानव्रत ने इसे मंजूर कर लिया। वह वहाँ अधिक दिन नहीं ठहर सकता था क्योंकि उसके सामने परिवार के अहम प्रश्न उलझे हुए पड़े थे ओर उन्हें जाकर उसे सुलझाना था। ये प्रश्न अन्दरूनी और बाहरी दोनों प्रकार के थे। अन्दरूनी मामलात का सम्बन्ध केवल उसके अपने परिवार और उसमें भी मुंशी चतुरसिंह की रोक-थाम और उनकी नाकेबन्दी से था।

चतुरसिंह को अपने भाई और भतीजों की तरफ बहने से रोकना, उनके जा और बेजा गुस्से को इसलिए सहन करना कि दुधाल गाय की लातें भी बर्दाश्त की जाती हैं, परन्तु साथ ही जिस प्रकार दूध निकालते समय गाय की टाँगों में घँगना बाँध देते हैं उसी प्रकार अपने पिताजी की भी स्वतंत्र चाल पर बंदिश लगाना, गाँव की खेती को खेती मात्र न रखकर एक बड़ा फ़ार्म बनाना; नये बाग़ात लगाना, कुएँ खुदवाना; गाँव

में एक ऊँट की चक्की लगाना; साथ-ही-साथ उसका विदेश जाने का भी जोड़-तोड़ चल रहा था। ज्ञानव्रत बहुत रुपया कमाना चाहता था। मामूली रुपये से उसका काम नहीं चल सकता था।

उसे अपनी बिरादरी का ही नहीं, हिन्दुस्तान का एक अजीबोग़रीब इंसान बनना था। एक अदना इंसान से वह हिन्दुस्तान का विख्यात पूंजीपति बन जाने की कितनी ही कहानियाँ सुन चुका था।

उसने सुना था कि अफ्रीका में सोने और चाँदी की खानें हैं और उसका विचार था कि यदि वह वहाँ पहुँच गया तो अवश्य किसी सोने या चाँदी की खान का पता लगा लेगा। फिर पसे की क्या कमी रहेगी। जितना चाहेगा ज़मीन से खोद लिया करेगा।

ज्ञानव्रत ने अपनी बिरादरी के किसी महाशय की खोज-खबर निकाली, जो अफ्रीका में नौकरी करते थे और उनसे ताल-मेल लगाकर अफ्रीका जाने के पासपोर्ट के लिए भी अर्जी दे डाली।

ससुराल से लौट कर मेरठ आया तो उसका अफ्रीका का खत आया हुआ पड़ा था। हरकली ने मुस्कराते हुए लाकर वह पत्र उनके हाथों में दिया और बोली, "लो मिठाई खिलाने की बात है ज्ञानव्रत ! परन्तु मेरा मन नहीं चाहता कि तुम अफ्रीका जाने की बात ठानो। यहाँ ही तुम्हारे पास किस बात की कमी है जो समुद्रपार की यात्रा करना चाहते हो। देश-विदेश में तो वे मारे-मारे फिरते हैं जिनके घर पर खाने-कमाने का कोई साधन ही नहीं होता।"

हरकली की यह बात सुनकर और इसे अक्ल से ज़रा छोटी समझकर ज्ञानव्रत मुस्कराया और मीठे स्वर में गम्भीरता पूर्वक कहा, "जीजी ! आदमी के पास जो कुछ है उसी पर संतोष करके नहीं बैठना चाहिए। संतोष आदमी की तरक्की को रोक देता है। आदमी तभी तक तरक्की करता है जब तक उसके

अन्दर अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति असंतोष बना रहता है।"

हरकली आज तक संतोष की ही महिमा का बखान सुनाती आई थी। मंशी चतुरसिंह भी सर्वदा संतोष को ही बड़ी चीज़ मानते थे, परन्तु आज जब हरकली ने गहरी दृष्टि से देखा और पैनी अक्ल से कुरेदा तो वास्तव में उसे ज्ञानव्रत की बात में ठोस सचाई दिखलाई दी।"

ज्ञानव्रत मुस्कराकर बोला, "जीजी आज मैंने आपसे जो बात कही, वह दक़ियानूसी पुरानी रूढ़िवादी चाल की बात नहीं है। यह तरक्की पसंद लोगों की बात है। जो लोग दिन-दूनी और रात चौगुनी तरक्की करते चले जा रहे हैं वे जो कुछ कर लेते हैं उसी पर संतोष करके नहीं बैठ जाते। ज़रा आप ही सोचो कि यदि आप जो कुछ पिता जी ने किया था उसी पर संतोष करके बैठ जातीं तो क्या यह सिरसे की लहलहाती हुई खेती आज नज़र आती? तुम और मैं परिवार की पुरानी जज़ीरों में बंधे-बंधे अग्निदत्त चाचाजी की गुलामी में ज़िन्दगियाँ काट देते। पिताजी के बाद वह ही तो परिवार की बागडोर सँभालते। परन्तु तुम्हारे मन में उस पुरानी लकीर पर चलने के प्रति असंतोष हुआ और तुमने उस लकीर को काट डाला।"

हरकली अपनी प्रशंसा की बात ज्ञानव्रत के मुँह से सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। ज्ञानव्रत बोला "आखिर मैं पूछता हूँ जीजी! कैसा परिवार? पिताजी की कमाई और पिताजी के नाम की शौहरत पर लल्लू-पंजू चचा-भतीजे ऐश करें और हम संतोष का सहारा लेकर बेवक़ूफ़ों की तरह उनका मुँह ताकें, यह कहाँ की अक्लमन्दी है? हम ऐसा कदापि नहीं होने देंगे।"

ज्ञानव्रत थोड़ा-सा बहक गया अपनी बात से। विषयान्तर हो गया, परन्तु इस विषयान्तर से हरकली को कोई परेशानी नहीं हुई। क्योंकि ज्ञानव्रत के शब्द हरकली की कार्य-प्रणाली को बल दे रहे थे, उसे साहस प्रदान कर रहे थे। वह रस ले रही थी इन बातों में। उसने मन-ही-मन ज्ञानव्रत की बुद्धिमत्ता

की दाद दी और उसके तर्क की सराहना की। पिताजी की हज़ार बातों को काट डालने का मानो ज्ञानव्रत ने उसे एक हथियार दे दिया।

अंदरूनी मामलात के बाद ज्ञानव्रत को बाहरी पेचीदगियाँ सुलझानी थीं। इन बाहरी पेचीदगियों का सम्बन्ध अग्निदत्त और शक्तिसिंह की सन्तान के साथ अपने उन मामलात को देखना था जिनसे कि मुंशी चतुरसिंह की सन्तान के हक़-हक़ूक़ टकराते थे। ज्ञानव्रत की दृष्टि में मुंशी चतुरसिंह का अग्निदत्त और शक्तिसिंह की सन्तान को अपने परिवार में मानना नासमझी और बेवक़ूफ़ी की बात थी। उसकी दृष्टि में उसका परिवार केवल मुंशी चतुरसिंह और उनकी सन्तान तक ही सीमित था। लम्बे-चौड़े परिवार की भावना उसके विचार से एक व्यर्थ का जाल-जंजाल था, जिसमें फँसा रहकर कोई अपने फ़र्ज़ को समझ ही नहीं सकता था, कोई उन्नति कर ही नहीं सकता था।

"क्या यही परिवार है जीजी! कि जिसमें एक भाई अपनी हड्डियाँ पेलता-पेलता चुवानों तक पहुँच जाय और दूसरे के कानों पर जूँ तक न रेंगे। घर का बड़ा तो अपना फ़र्ज़ निभाता-निभाता अपने बाल-बच्चों का गला घोंटता चला जाय और छोटे भाई ऐश करते रहें, उनके बाल-बच्चे मौज उड़ाते रहें और अपनी आमदनियों को अलहदा जोड़ते रहें।"

ज्ञानव्रत ने हरकली के सामने कुर्सी पर बैठते हुए कहा। उसके तन-बदन में आग भभक उठती थी जब वह रामदयाल और उसके पिता शक्तिसिंह की बातों को लेकर बैठ जाता था।

आज यकायक रामदयाल की याद आ जाने पर उसकी आँखों में खून उतर आया। अभी कल का ही तो क़िस्सा था कि जब वह अपने पिताजी मुंशी चतुरसिंह के साथ मेरठ के सर्राफ़े बाज़ार से गुज़र रहा था। वह सर्राफ़, जिसके पास चतुरसिंह ने ज्ञानव्रत की बहू के दस्तबन्द गिरवी रख कर रामदयाल की बहन की शादी में ख़रीदे हुए घी के रुपयों का भुगतान किया

था, रास्ता रोक कर खड़ा हो गया और उसने सख्त स्वर में कहा, "मुंशीजी ! आपके सब वायदे ग़लत हो चुके। अब मेरी रक़म मुझे मिल ही जानी चाहिए। मैं इससे अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता।"

मुंशी चतुर्रसिंह ने वे दस्तबन्द अपनी बहू के लिए कब-कब और कैसे-कैसे रुपया जोड़कर बनवाये थे, यह पूरा चित्र उनकी आँखों के सामने था आ गया। उन्हें वे दस्तबन्द बहुत प्यारे थे; परन्तु इस समय वे फँसे थे उस सर्राफ़ के चंगुल में। रुपया देने के लिए उनके पास था नहीं। तो करें क्या ?

आख़िर ज्ञानव्रत ने दिल पर पत्थर रख कर कह ही दिया, "कोई चिंता की बात नहीं पिताजी ! दस्तबन्द फिर बन जायँगे। आप इस समय इन्हें बेच डालिये और इनका रुपया देकर बाकी रक़म ले लीजिये।"

"कहिये मुंशीजी ! क्या काट डालूँ दस्तबन्दों को ?" सर्राफ़ ने स्थिरता के साथ पूछा।

मुंशीजी ने दिल पर पत्थर रख कर कहा, "काट डालिये, इसके अतिरिक्त और चारा ही क्या है। आप भी कहाँ तक इन्तज़ार कर सकते हैं।"

हरकली को अभी तक पता नहीं था इस बात का। जब ज्ञानव्रत ने उसे यह घटना सुनाई तो वह आधे पाव की औरत भँभीरी की तरह नाच उठी। कुर्सी पर बैठा रहना उसे कठिन हो गया और हाथों को लचकाती हुई तनिक तेज़ आवाज़ से बोली, "तो कट गये दस्तबन्द ?"

उसके दिल पर भी दस्तबन्दों के कट जाने की गहरी ठेस लगी। गाँव की औरतों को जब उसने वे दस्तबन्द दिखाये थे तो उनकी तारीफ़ के पुल बाँधने में जो-जो कुलाबे भिड़ाये थे, वे सब इस समय हरकली को एक स्वप्न के समान दिखाई दिये।

"तुमने सच कहा भय्या ज्ञानव्रत ! बड़े भाई के अहसानों को छोटे नहीं समझ सकते, बल्कि वे तो उल्टा उसे सटक कर अपने

पेट में उतारने की बातें सोचते हैं। चाचा शक्तिसिंह के लिए क्या-क्या नहीं किया पिताजी ने ? जितने दिन जिये, कभी एक फली नहीं फोड़ कर दी। अच्छा खाया और अच्छा पहना, जितने दिन जिये, खूब गुलछर्रे उड़ाये ··।"

"गुलछर्रे ही नहीं जीजी ! खूब अय्याशियाँ कीं हैं उन्होंने।" बीच ही में ज्ञानव्रत कड़ककर बोला, "तुम्हें अभी बहुत कम बातों का पता है जीजी ! मैं गाँव में रहा हूँ और मुझी को उनकी सब पोलें मालूम हैं। चचा क्या थे एक नम्बर के अय्याश थे। पिताजी के सामने आने पर दूध के धुले बन जाते थे। मानो कुछ जानते ही नहीं थे।"

"हमारे पिताजी, सीधे-सादे, मिट्टी के माधो, फूलकर एकदम कुप्पा हो जाते थे कि उनका छोटा भाई कैसा आज्ञाकारी है।"

"बस रहने ही दो भय्या ! मैं सब कारनामे सुन चुकी हूँ। पिताजी इतने सीधे न होते तो हमारी यह दशा ही क्यों होती ? उन्हें तो केवल हम पर क्रोध करना और हमारी चमड़ी उधेड़ना आता है। इनसे कोई घर लुटाने को कह दे, तो घर की एक भी चीज़ कल घर में नज़र न आये। वह तो भगवान् ने पिताजी की नौकरी भली लगा दी जो हम लोगों का पेट भर गया, वरना सच यह है कि पेट भी न भरता।" हरकली ने क़िस्मत पर हाथ मारते हुए कहा।

शक्तिसिंह और रामदयाल का नज़ला धीरे-धीरे मुंशी चतुर्रसिंह पर ढलना हो गया था। मुंशी चतुर्रसिंह भी अब जब कभी एकांत में बैठकर सोचते हैं तो उन्हें अपनी ज़िन्दगी के अधिकांश कामों में अपनी ही भूल नज़र आती है। अपनी सन्तान के लिए ही अब वह सब कुछ आगे से करेंगे, किसी अन्य के लिए नहीं, ऐसा विचार उनका बनता जा रहा है। अभी कल दस्तबन्दों के कट जाने से उनके दिल और दिमाग़ पर एक भारी सदमा पहुँचा और वह सोच ही नहीं पा रहे थे कि आख़िर क्या करें ?

हरकली समय पर चूकने वाली औरत नहीं थी। अपने तप और त्याग से इस समय वह मुंशी चतुर्रसिंह के परिवार में सब की पूज्यनीय बनी हुई थी। मुंशी चतुर्रसिंह के दिल में उसका स्थान एकाकी बन चुका था। उनके परिवार के घर-गृहस्थी के सभी कामों का संचालन वह कर रही थी।

ज़रा ग़मगीन सा चेहरा-मोहरा बनाकर बैठक में बैठे पिताजी के पास जाकर कुर्सी पर बैठ गई और उसी संजीदगी के साथ, जैसा वहाँ का वातावरण बना हुआ था, बोली, "ज्ञानव्रत से पता चला कि कल सर्राफ़ ने भाभी के दस्तबन्द काट डाले क्या यह सच है ?"

"हाँ हरकली ! वह बेचारा कहाँ तक रुकता ? हमारे सभी वायदे ग़लत हो चुके थे और हम रुपये का कोई प्रबन्ध नहीं कर सके ?" गम्भीरतापूर्वक मंशी चतुर्रसिंह ने जवाब दिया।

"ठीक है !" गम्भीर मुख-मुद्रा लिए हरकली ने भी एक लम्बा साँस खींचकर कहा।

"शक्तिसिंह और शक्तिसिंह की सन्तान दोनों ही नालायक और खुदगर्ज़ निकले।" रंजीदा मन से मुंशी चतुर्रसिंह ने कहा।

"नालायक !" आश्चर्य प्रकट करते हुए हरकली बोली, "इसे आप नालायकी कह रहे हैं ? यह तो धोखेबाज़ी और बदमाशी है पिताजी।"

हरकली की आवाज़ में आज ग़ज़ब की कड़क थी। उसके छोटे से मुँह से बातें ऐसे निकल रही थीं जिस तरह गैस की नली से आग निकलती है। वह कहती ही गई, "आपने शुरू से ही आस्तीनों में साँप पाले हैं पिताजी ! आपने साँप के बच्चों को दूध पिलाया है। यह वही रामदयाल है जिसे आपने पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, शादी की और उसी ने आपको आज यह दिन दिखाया। यदि इसका फन बचपन में ही मसल देते और चार हरुफ़ न पढ़ाते, जिनकी बदौलत यह आज दीवानजी बना बैठा है, तो कहीं गाँव में ही तिक-तिक अहाँ-अहाँ करता नज़र आता।

यह नौबत ही न आती जो कल सामने आई।"

"तुम ठीक कहती हो बेटी ! अपनी करनी का फल भोग रहा हूँ। अपनी ग़लती का ख़मयाज़ा भुगतना पड़ता है। आज मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं कितनी बड़ी ग़लती करता चला आ रहा हूँ।" मन मार कर भारी आवाज़ में मुंशी चतुर-सिंह ने अपने भाव व्यक्त किये।

हरकली मन-ही-मन प्रसन्न थी कि वह पिताजी की ग़लती उन्हें जतला सकी और साथ ही उन्होंने स्वीकार भी करली अपनी वह ग़लती।

: १८ :

मुंशी चतुर्रसिह के जीवन की विचारधारा जीवन के अंतिम दिनों में व्यापक होने के स्थान पर उल्टी संकुचित होती जा रही थी। उनके जीवन के सामाजिक कार्यक्रम, उनके पारिवारिक कार्यक्रमों के अन्दर समाते हुए चले जा रहे थे। जहाँ पहले वह अपने पूरे परिवार की बात सोचते थे, वहाँ अब केवल अपने और बाल-बच्चों तक ही उनका जीवन सीमित हो गया था।

इन दिनों उनकी शारीरिक, मानसिक तथा हर प्रकार की शक्ति अपने बाल-बच्चों की बेहतरी के विषय में ही विचारने तथा कार्य करने में लगी थी। ज्ञानव्रत और हरकली के इर्द गिर्द ही उनके विचारों का केन्द्र स्थापित हो चका था, और वे भी हर समय अपने और अपने पिताजी के विषय में ही सोचते और सलाह देते थे। बहुत सी छोटी-छोटी चीज़ों को, जिन्हें कभी जीवन में उन्होंने उसूल समझकर निभाया था, आज ज्ञानव्रत और हरकली के अकाट्य प्रमाणों के आधार पर मुंशी चतुर्रसिह उन्हें अपनी मूर्खता और नासमझी के प्रमाण मान चुके थे।

मुंशी चतुर्रसिह के भाँजे, यानी उनकी सगी बहन के लड़के ने, उन्हीं के पास रहकर मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की। जब वह शिक्षा पा रहा था तो उसका खाने-पीने का ख़र्च भी मुंशी चतुर्रसिह ही करते थे। हरकली तो छोटी ही थी उस समय, परन्तु यह समझने में उसने ग़लती नहीं की कि मुंशी चतुर्रसिह यह अपने बच्चों का हिस्सा उनसे छीन कर अपनी बहन के लड़के को दे रहे हैं। हरकली ने उस समय भी गुप्त रीति से मुंशी चतुर्रसिह के भांजे से, उसके खाने के लिए अनाज मँगा कर छोड़ा

था। हरकली के दुर्भाग्य से तब यह सूचना मुंशी चतुर्रसिंह को मिल गई और वह एकदम आग बबूला हो उठे। उस समय उनके इस क्रोध की शिकार हरकली को बनना पड़ा था।

परन्तु आज पुराना ज़माना नहीं था जब हरकली की किसी भी गुस्ताखी के लिए उसके गाल पर तमाचा रसीद कर दिया जाता। आज वह मुंशी चतुर्रसिंह के संकेत पर चलने वाली ना-समझ लड़की नहीं थी, वरन् मुंशी चतुर्रसिंह उसके संकेत पर चलने वाले एक वृद्ध पिता थे, जिन्होंने अपनी विचारधारा का इस योग्य संतान की विचारधारा के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था।

मुंशी चतुर्रसिंह के पास उनके इसी भाँजे का पत्र आया कि उनकी दशा इस समय गाँव में बहुत खराब हो चुकी है। वह देहली जाकर कुछ कारबार करने का विचार कर रहा है। इस-लिए कुछ दिनों को यदि वह अपनी बहन को अपने पास रख सकें तो इस कठिन समय में उसकी भारी सहायता हो जायगी।

पत्र मुंशी चतुर्रसिंह ने पढ़ा और उनका मन अपनी बहन की कठिनाई पर द्रवित हो उठा। परन्तु इस पत्र का जवाब वह इस समय बिना हरकली और ज्ञानव्रत की सलाह के नहीं दे सकते थे।

हरकली के सामने प्रश्न आया तो उसने कोरा जवाब दे दिया, "ये फ़िज़ूल की इल्लतें मुझे पसंद नहीं हैं। आप लिख दीजिये कि हरकली की माताजी की तबियत बहुत ख़राब है। मेरे भी रिटा-यर होने के दिन अब क़रीब हैं बहन का यहाँ लाना सम्भव नहीं। ऐसी दशा में तुम बहन के लिए अग्निदत्त से बातचीत करो। वह सहारनपुर ले जायगा बीबी को। उसके पास कोई ख़र्च भी नहीं है किसी तरह का।"

ज्ञानव्रत ने हरकली की बात का समर्थन करते हुए कहा, "जीजी की राय बिलकुल ठीक है। हमने ही तो ठेका नहीं ले लिया है सबको पढ़ाने-लिखाने और उन्हें फिर अपने पास रखकर पूरा ख़र्च बरदाश्त करने का। हमें अपने भी काम करने हैं।

रिश्तेदारों के लिए अपने को मिटा भी दो, तब भी कोई नहीं पूछता। कल को भगवान न करे हम पर कोई कठिन समय आ गया तो कोई कटी उँगली पर पेशाब करने वाला भी नज़र नहीं आयेगा।"

एक भारी भरकम बेटे की यह राय थी जिससे ऊपर उभर कर मुंशी चतुरसिंह का दिमाग़ कोई स्वतंत्र राय क़ायम नहीं कर सकता था।

मुंशी चतुरसिंह के हस्ताक्षरों से यह पत्र का उत्तर उनके भाँजे के पास रवाना कर दिया गया।

हरकली अब साधारण विद्यार्थी मात्र नहीं रह गई थी। अब वह एक अध्यापिका थी और उसे हर महीने तीस रुपया वेतन मिलता था। यह वेतन भी वह अपने भाई बहनों के लिए ही व्यय करती थी और इस प्रकार मुंशी चतुरसिंह का वह तीसरा बेटा बन गई थी, कमाऊ बेटा भी। इस कमाई ने हरकली की इज्ज़त और अक्ल को और भी चार चाँद लगा दिये। उसकी क़द्र अब घर में पहले से अधिक होने लगी। भैया, भावज, माँ, पिता सभीकी वह सिरताज बन गई। अब उसकी इच्छा के विरुद्ध परिवार में पत्ता भी नहीं हिल सकता था।

ज्ञानव्रत का छोटा भाई ध्यानव्रत शरीर का हृष्ट-पुष्ट था, परन्तु पढ़ने-लिखने में वह प्रारम्भ से ही कुछ कमज़ोर था। अग्निदत्त के लड़के राजू के साथ पढ़ता था। उसकी पढ़ाई की ओर मुंशी चतुरसिंह, हरकली और ज्ञानव्रत ने काफ़ी ध्यान दिया, परन्तु वह ऊँची तालीम न पा सका। दसवीं कक्षा में फेल होने पर ही उसने पढ़ना छोड़ दिया।

इसी समय शादी का शौक भी उसके सिर पर सवार हो गया।

हरकली और ज्ञानव्रत ने देखा कि वह पढ़ने से जी चुराता है तो उन्होंने भी उस ओर से ध्यान हटा कर घर की खेती पर ही उसे तैनात कर दिया। हरकली ने ज्ञानव्रत से कहा, "मैं

कहती हूँ आखिर क्या होगा और अधिक पढ़कर। जब उसका मन ही नहीं है पढ़ने में तो समाप्त कर दो पढ़ाई। अपने काम लायक़ तो वह काफी पढ़-लिख लिया है। गाँव की खेती सँभालने को भी तो एक आदमी की आवश्यकता है। कौन नौकरी करानी है हमें। पिताजी की खरीदी हुई इतनी जायदाद को आखिर कौन सँभालेगा ?"

"आपका विचार ठीक है जीजी ! ध्यानव्रत को गाँव में ही रखना चाहिए। मैं कहता हूँ उसे खूब खिलाओ-पिलाओ और पहलवान बना दो; ऐसा कि उसके नाम से वह बदमाश रामदयाल थर्राने लगे और इधर आकर सिरसे के सिवाने में क़दम रखने का भी साहस न कर सके," ज्ञानव्रत ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"यही किया जायगा ज्ञानव्रत भय्या ! मैं भी यही सोच रही हूँ। मुझे यह दिखाई दे रहा है कि कहीं किसी दिन वह पाजी सिरसे में न आ घुसे।" कुछ भयभीत से स्वर में हरकली बोली।

हरकली और ज्ञानव्रत काफ़ी मज़बूती के साथ रामदयाल के विरुद्ध सोचते थे, परन्तु वह भी क्या खूब इंसान था कि उनकी खोपड़ी पर हर समय भूत की तरह सवार रहता था।

ये रामदयाल से लोहा लेने के लिए अपने को मज़बूत बना रहे थे, परन्तु उसकी ताक़त, उसकी मक्कारी, उसकी चाल-बाज़ी, उसकी गुण्डाई का रौब इन पर कम नहीं था। राम-दयाल के पुलिस के हथकंडे इनके मस्तिष्क पर हर समय छाये रहते थे।

यों कब्ज़ा उन्होंने इस समय सिरसे की पूरी ज़मीन पर किया हुआ था, परन्तु न जाने क्यों इनका दिल हर समय किसी भावी आशंका से घबराया-सा रहता था। अपनी मज़बूती और मुस्तैदी के बारे में लाख सोचने पर भी कहीं कमज़ोरी की रेखा इन्हें दिखाई देती थी, और इनका मस्तिष्क यह कह उठता था कि, 'तुम लोगों ने जो यह बालू के महल पर प्लास्टर करके एक

आलीशान इमारत बनाई हुई है, इसमें बहुत गहरी दराड़ है, जो एक मज़बूत ठोकर पड़ने पर तमाम इमारत को ज़मीन पर गिरा देगी ।'

हरकली ज्ञानव्रत पर अपने दिन का राज़ खोल देती थी । अपने दिल की शंकाओं को भी वह उसके सामने रखकर विचार करती थी । ध्यानव्रत को सिरसे की खेती के काम पर तैनात करके हरकली ने ज्ञानव्रत से कहा, "अब मुझे अपने यहाँ के कब्जे पर पहले से कहीं अधिक मजबूती दिखाई देती है ।"

"आपका विचार ठीक है जीजी ! अब हम लोगों का दब-दवा जमता जा रहा है । ध्यानव्रत गाँव की राजनीति में अच्छी चाले चल रहा है । उसके पैंतरे मुझे पसन्द हैं । यहाँ रहकर गाँव के गुण्डा कहलाने वाले लोगों में मिलकर चलना चाहिए । चचा शक्तिसिंह का जो रवैया था, यह ठीक है कि हम पूरी तरह उस पर नहीं चल सकते परन्तु रामदयाल जैसे मक्कार आदमी का समय पड़ने पर मुकाबला इन गुण्डों की शक्ति से ही किया जा सकेगा ," ज्ञानव्रत ने दिमाग़ी दाव-पेंच भिड़ाकर कहा ।

हरकली ने माथे पर सलवटें डालते हुए इस गम्भीर बात का गम्भीरता के साथ उत्तर दिया, "तुमने बिलकुल ठीक सोचा ज्ञानव्रत ! ऐसे लोगों को अवश्य अपने हाथ में रखना होगा ; वरना ये लोग समय पड़ने पर रामदयाल से जा मिलेंगे और हम लोगों के सामने गुण्डाई करने पर आमादा हो जाएंगे ।"

"तुम देखती जाओ जीजी ! आपके भाई ने वह मस्तिष्क पाया है कि जिसके संकेत पर बेचारा रामदयाल तो क्या, पूरा सिरसा नाचेगा । यहाँ की पूरी चौधर आपके भाई के द्वार पर आकर नाक रगड़ेगी और ये गुण्डा कहलाने वाले लोग हमारे मेहमानों की चिलमें भरेंगे । दरबार लगा करेगा तुम्हारे भाई का ," सीने में उभार लाकर ज्ञानव्रत ने कहा ।

हरकली का साहस दोबाला हो गया । अपने भाई के मस्तिष्क और उसकी जीदारी पर अब हरकली का गहरा

और खेलने-कूदने की रविश में तुरन्त ही बह जाती थी, खो जाती थी ।

हरकली ने अपने घरेलू प्रबन्ध के समय में रसोई के बढ़ते हुए ख़र्च को सँभालने का प्रयत्न किया । अपने भाई के साले के घी में से कभी-कभी मौका पाकर उसकी आवश्यकता से अधिक घी निकाला और उसमें पूरे घर भर का साग छौंका और वह सबने खाया। घर की अर्थ-व्यवस्था में हरकली का यह योग कोई महत्वपूर्ण योग नहीं था, परन्तु उसने अपने मन से उस काम को करके अपनी चतुराई का प्रमाण प्रस्तुत किया । उसका यह काम हरकली की माता की दृष्टि में महत्वपूर्ण हो सकता था परन्तु चतुरसिंह को इसकी कभी सूचना नही मिली ।

नहीं हुई। शुरू से ही एक भैंस छोड़ दी जानी चाहिए थी ऐसे होतड़ बालक के लिए तो। फिर देखते क्या ग़जब का पट्ठा निकलता। आस-पास में डंका पिट जाता ध्यानव्रत की पहलवानी का। परन्तु एक भैंस कहाँ से छूट जाती ध्यानव्रत के लिए। पिताजी ने तो पालने के लिए एक रेवड़ इकट्ठा किया हुआ था। ऐसे भैंस छूटती तो एक राजू के लिए चाहती और एक उनके भांजे के लिए और···" वह रुक गई कहते-कहते। तीसरा नाम उसके सामने ज्ञानव्रत के साले का था, और वह नाम वह लेना नहीं चाहती थी ज्ञानव्रत के सामने।

हरकली और ज्ञानव्रत अपनी गाँव की स्थिति को हर प्रकार से दृढ़ बनाते चले जा रहे थे। घर, घेर और जंगल की ज़मीन, सभी उनके कब्ज़े में थे। सभी में खूब रैल-फैल कर मुंशी चतुरसिंह का परिवार फिरता था, खेलता था, कूदता था और मौजें ले रहा था जीवन।

गाँव के साधारण लोग-बागों को इस बात से कोई सरोकार नहीं था कि उन मकानों में शक्तिसिंह का परिवार रहता है या चतुरसिंह का। अग्निदत्त का तो सिरसे के अब तक के इतिहास में कहीं नाम ही नहीं था। चन्द पुराने आदमियों को छोड़कर नई पीढ़ी के लोग तो उसे भूल ही चुके थे।

परन्तु गाँव के वे लोग जिन्हें शक्तिसिंह के यहाँ रहने में लाभ था, यानी कमीन-काँदू कहलाने वाले लोग, उनकी बख्त-बेबख्त याद अवश्य कर लेते थे। शक्तिसिंह की दरियादिली की दाद देते थे और सराहना करते थे उनकी रहमदिली की। हरकली और ज्ञानव्रत इस दाद और सराहना के आधार पर शक्तिसिंह को घर-उजाड़ू, घर-लुटाऊ और अय्यार तथा अय्याश की पदवी पर आरूढ़ करते थे और अपने पिताजी को खोल-खोल कर समझाते थे, "अब सुन लीजिये अपने छोटे भाई साहब के कारनामे। आप तो परदेस में खून-पसीना एक करके कमाते थे, और वह यहाँ इस तरह बेदर्दी से उसे लुटाते थे।"

मुंशी चतुरसिंह को शर्म आती थी इस प्रकार अपनी सन्तान के मुंह से अपने भाई के कारनामे सुनकर, और वह गर्दन झुका कर कहते थे, "मैं शक्तिसिंह का चरित्र ऐसा होने पर भी कभी उसे परख न सका। उसकी सहायता करता रहा अपना सगा भाई मानकर। आज मुझे अपने ऊपर ही शर्म आ रही है कि मैंने क्यों ऐसे नालायक भाई की सहायता की ?"

इस पर हरकली और ज्ञातव्रत मुस्करा कर कहते "कारनामे हैं ये आपके सगे भाइयों के।" और फिर गम्भीर हँसी से मुस्कराते।

"बेटा मुझे वास्तव में शर्म आती है आज शक्तिसिंह के ये कारनामे सुनकर। मुझे स्वप्न में भी कभी खयाल नहीं था कि उसका चलन इतना खराब है," गम्भीरता पूर्वक मुंशी चतुरसिंह कहते।

"पिताजी! जैसे चचा शक्तिसिंह थे उनसे चौचन्द उनके सुपुत्र रामदयाल हैं। मुझे तो आप से कहते लज्जा आती है उन बातों को जो ज्ञानव्रत उनके पास रहकर देख आया है," हरकली ने कहा।

"और क्या-क्या देख आया है ज्ञानव्रत बेटी ?" उत्सुकता के साथ मुंशी चतुरसिंह ने पूछा।

"क्या देख आया है, अब क्या सुनकर करोगे पिताजी! एक नम्बर का शराबी हो गया है वह," हरकली ने कहा।

"ओम्: ओम्: ओम्: !" कानों पर हाथ रखते हुए मुंशी चतुरसिंह ने कहा। उन्होंने अपने कान ढक लिए। उनके परिवार में एक शराब पीने वाले व्यक्ति ने जन्म लिया, इससे लज्जा की और कोई बात हो ही नहीं सकती थी। वह तो प्याज खाना भी पाप समझते थे। वही रामदयाल, जिसके उन्होंने संस्कारविधि के अनुसार कई संस्कार कराये थे, आज शराब पीने लगा।

चतुरसिंह के बच्चे उन्हीं की तरह सुबह-शाम संध्या करते थे, रविवार को उनके साथ आर्य-समाज-मंदिर में जाते थे, हवन पर भी कभी-कभी आसन बिछाकर साथ बैठते थे और

कंठस्थ किए हुए हवन-मंत्रों का जाप करते थे। शराब के नाम से उन्हें चिड़ थी। हुक्का तम्बाकू के वह पास तक नहीं फटकते थे।

"अब और सुनकर क्या करोगे पिता जी! रामदयाल केवल शराब ही नहीं पीता, वरन् माँस-मिट्टी भी खाता है। जुआ खेलता है वह और लोगों को खिलाता है," हरकली ने गम्भीर मुख-मुद्रा बनाकर कहा।

"बस रहने दो बेटी, रहने दो। अब और कुछ न कहो। वह भ्रष्ट हो चुका। हमारे परिवार को उसने कलंक लगा दिया," हार्दिक वेदना के साथ मुंशी चतुर्रसिंह बोले।

"हमारे परिवार में?" आश्चर्य सूचक ध्वनि में हरकली बोली, "हमारे परिवार का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है पिताजी! आप फिर वही भूल कर रहे हैं। आपके परिवार की इस परिभाषा को मैं क़तई नहीं मानती। परिवार की यह पुरानी रूढ़िवादी परिभाषा यदि मान भी ली जाय कि कोई वस्तु है, तो यह केवल माता-पिता और उनके बच्चों तक ही सीमित रहती है। इससे आगे परिवार की संस्था को खींच कर ले जाना केवल भ्रम मात्र है। इसी भ्रम में पड़कर आपने अपनी और अपने बाल-बच्चों की तरक्की को रोका है," दृढ़ता के साथ हरकली ने कहा।

मुंशी चतुर्रसिंह आज हरकली के शब्द-शब्द से सहमत थे। पीढ़ी-दर-पीढ़ी सम्मिलित परिवार के चलने की बात आज उन्हें भी एक उपहास मात्र ही दिखाई दे रही थी। बिना हिसाब-किताब के एक परिवार में रहकर कुछ लोगों का बैठे-बैठे ऐश करना और कुछ का जिन्दगी भर पिलते जाना, उनके मस्तिष्क में मूर्खता प्रतीत हो रहा था।

आखिर यह कैसी सम्मिलित परिवार की व्यवस्था हिन्दू लॉ में की गई है? मेहनत एक कर रहा है और हिस्सा सबको बराबर पहुँचता है।

यह ग़लत था उनके दिमाग़ से। हर इंसान को उसकी अपनी ही मेहनत का हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है। बिना मेहनत

किये हुए किसी को हिस्सा पाने का अधिकार नहीं।

सहसा उनका दिमाग़ आज अपने परिवार की उस परिस्थिति पर चला गया जिसमें उन्होंने उसे सँभाला था !

हरकली अब उनकी सबसे बड़ी सलाहकार थी और वह उनके पास बैठी हुई थी। उन्होंने हरकली से कहा, "जिस दिन मैंने इस परिवार की बागडोर सँभाली थी, उस दिन मेरी उम्र अठारह वर्ष की थी। आज मैं चव्वन वर्ष का हो गया हरकली! इस बीच में एक जमाना बदल गया। जो आज देख रहा हूँ वह उस दिन एक स्वप्न था। ख़याल भी नहीं किया जा सकता था किसी दिन हमारे परिवार का इतनी सम्पन्नता का दिन भी आ सकेगा, जो मैं आज देख रहा हूँ। हम तीनों ही भाइयों की सन्तानें अपने-अपने रास्ते पर सफ़ाई के साथ चल रही हैं, खुशहाली के साथ चल रही हैं !"

हरकली ध्यान देकर अपने पिताजी की बातों को सुन रही थी।

"जब ताऊजी ने वह कर्ज़ और ज़मीन मेरे गले मँढ़ी तो मैं काँप रहा था। परन्तु भगवान ने सहायता की और वह ज़मीन हमारे नाम हो गई। फिर चचाज़ात भाई ने अपनी ज़मीन पर इतना कर्ज़ कर लिया कि हमारे घर के अन्दर एक दूसरे कर्ज़दार ने घुसने का प्रयत्न किया। वह भी हमने ख़रीदी और उस ख़तरे से भी इस परिवार को बचाया। उसका भी सब रुपया अदा हो गया, केवल अठारह सौ रुपया और देना है। परन्तु इन कामों में शक्तिसिंह या रामदयाल ने कभी एक छदाम की भी मदद नहीं की," चतुरसिंह गम्भीरता पूर्वक बोले।

हरकली गम्भीरतापूर्वक सुनती और हाँ-हूँ करती जा रही थी। अभी मानो उसके बोलने का समय ही न आया था।

"सिरसे की ज़मीन से कभी कोई विशेष आमदनी हमें नहीं मिली, और यह सब रुपया मैंने और अग्निदत्त ने अपनी बाहर की कमाई से ही अदा किया।" चतुरसिंह कहते जा रहे थे।

मुंशी चतुरसिंह के मस्तिष्क में कुछ बात थी आज जिसे वह

कहना चाहते थे, परन्तु वह कहते-कहते रुक गये। उन्होंने और एक शब्द भी आगे न कहा। हरकली भी कुछ न समझ पाई कि आखिर उसके पिताजी अब क्या कहना चाहते थे। वह उसी प्रकार कुछ सोचते हुए वहाँ से उठकर चले गये।

हरकली अकेली बैठी रह गई और वह कितनी ही देर तक पिताजी की कही गई बातों पर और उनके कारणों पर विचार करती रही। ज्ञानव्रत के आने पर उससे भी उसने वे सभी बातें कहीं परन्तु वे दोनों मिलकर भी चतुरसिंह के मस्तिष्क में उठने वाली तलाबेली को न समझ सके।

: १६ :

छोटी बहन की शादी करके रामदयाल ने निश्चितता की साँस ली क्योंकि यही एक भार था जिसे शक्तिसिंह उसके ऊपर छोड़-कर मरे थे। छोटे भाई की शादी कोई ऐसी समस्या नहीं थी, जिसकी उसे चिंता करने की बात थी।

ऐश और रौब का जीवन चल रहा था रामदयाल का। अंग्रेज़ी सल्तनत के ज़माने का वह एक छटा हुआ पुलिस-दीवान था। जिस इलाक़े में भी वह पहुँच जाता था, क्या मजाल जो सरकार के ख़िलाफ़ कोई परिन्दा भी पर मार जाये। उसके इलाके के काँग्रेसी कारकुनों की तो बस शामत ही आ जाती थी। उनका कोई जल्सा होना या जुलूस निकलना असम्भव हो जाता था। इलाक़े भर के गुण्डे उसका साथ देते थे और जनता की आवाज़ को कुचलने के लिए जहाँ उसके पास थाने के चंद सिपाही रहते थे, वहाँ इलाक़े भर के गुण्डे भी उसका साथ देते थे। वह गुण्डों का सिरताज था।

वे ही दस नम्बरी बदमाश, जिन पर रोज़ाना पुलिस की आवाज़ें पड़ती थीं और जिन्हें वह एक-एक दो-दो बार सज़ा भी करा चुका था, उसकी चौकड़ी के यार थे। उन्हीं के साथ उसका खाना-खिलाना और पीना-पिलाना चलता था।

रामदयाल के हाथों से एक-दो बार जेल चले जाने का उन्हें कुछ मलाल नहीं रहता था, क्योंकि वे जानते थे कि आख़िर दीवान जी की भी तो सरकारी नौकरी है, उन्हें भी अपना रिकार्ड दिखाना है। जेल इन लोगों के लिए ससुराल थी, जहाँ रहकर छै महीने या साल भर काट आना कोई विशेष बात नहीं

थी। जेल के अफ़सरों से भी उसका याराना रहता था।

रामदयाल के सामने इस समय जो समस्या थी वह थी अपने छोटे भाई धर्मप्रकाश को किसी काम पर लगाने की। ध्यानव्रत की ही भाँति यह महाशय भी पढ़ाई से जी चुराने लगे थे।

नवीं जमायत की खंदक को कई बार छलांग मार कर पार करने का प्रयत्न किया, परन्तु सफल न हो सके। रामदयाल समझ गया कि यह पढ़ेगा नहीं।

उसे पुलिस कॉंस्टेबिलों में भी भर्ती कराने का प्रयत्न किया, परन्तु उसका क़द इतना कम था कि पुलिस की भर्ती में वह आ ही नहीं सकता था।

फिर घर की जायदाद पर कब्ज़ा करने और अपनी ज़िन्दगी का अन्तिम सहारा उसे बनाने की ओर रामदयाल का विचार गया।

रामदयाल ने मन में निश्चय कर लिया कि अब वह छोटे भाई को सिरसे ले जाकर खेती में ही लगायेगा। यह निश्चय कर लेने के पश्चात् रामदयाल ने महकमे से दस दिन की छुट्टी ली और वह सीधा अपने नाना के यहाँ पहुँचा। गर्मी की छुट्टियों में धर्मप्रकाश भी वहीं था।

माँ ने रामदयाल को प्यार से पुकार कर बिठाया। एक गिलास भर कर दूध दिया पीने को और फिर उसकी तथा बहू की कुशलता के विषय में पूछा।

जब सब बातें हो चुकीं तो अन्त में रामदयाल बोला, "माँ! मेरा ख़याल है कि इस साल धर्मप्रकाश को सिरसे लेजाकर खेती पर लगाऊँ। पढ़ना-लिखना इसके बसका नहीं है।"

"जैसा तू ठीक समझे बेटा!" सीधी-सादी माँ ने कहा।

"यह तुमने ठीक सोचा रामदयाल! इसे किसी काम पर लगाओ। पढ़ना-लिखना इसके बसका नहीं है। इस साल फिर फ़ेल हो गया यह। और फिर मैं इस साल इसकी शादी भी करना चाहता हूँ। कान्ता की शादी मेरी आँखों के सामने

हो गई। इसकी भी हो जाय तो मैं बेफिक्र हो जाऊँ।" रामदयाल के बूढ़े नाना ने कहा।

शक्तिसिंह के मर जाने के पश्चात् यह नाना ही अब इस परिवार का सब से बड़ा हमदर्द रह गया था। हमदर्दी की असल बात पैसा थी, जिसकी गर्मी में कभी-कभी वह सख्त-सुख्त बातें रामदयाल को भी कह लेता था। परन्तु यह होता था सभी कुछ प्यार में। प्यार में आदमी मार भी सह लेता है।

दूसरे दिन सवेरे ही एक बैल-ताँगा जुड़वाया गया और उसमें रामदयाल अपने भाई धर्मप्रकाश को बिठाकर सिरसे की तरफ़ रवाना हुआ। पाँच कोस का फ़ासला था सिरसे के तेज़ चलने वाले बैल थे, डेढ़ घण्टे में ही सिरसा आ गया।

रामदयाल मन-ही-मन सोचता आ रहा था कि सिरसे पहुँच कर कैसी बीतेगी उसके साथ। प्यार के व्यवहार की तो वह आशा कर ही नहीं सकता था, क्योंकि अपनी बहन कांता की शादी में जो चकमा वह ज्ञानव्रत और मुंशी चतुरसिंह को देकर गया था, उसकी याद अभी बहुत पुरानी नहीं पड़ी थी। फिर भी वह मुस्तैदी के साथ सिरसे में घुसा और उसका ताँगा जाकर सीधा अपने मकान के चबूतरे के सामने बैठक पर रुक गया।

ज्ञानव्रत और हरकली बैठक में बैठे घर की कुछ गम्भीर समस्याओं पर विचार कर रहे थे। सामने रखी हुई छोटी सी मेज़ पर मुक्का मार-मार कर ज्ञानव्रत कुछ कह रहा था, और हरकली कभी हाथ लचका कर और कभी ऊँगली उठाकर अपनी बात की प्रामाणिकता सिद्ध कर रही थी।

ताँगे का चबूतरे के सामने रुकना था कि ज्ञानव्रत के कलेजे पर धक्क से चोट लगी। आपत्ति का पहाड़ उसे अपने ऊपर टूटता हुआ दिखाई दिया। उसने ज़रा एड़ियाँ उचका कर देखा तो उसकी दृष्टि रामदयाल पर पड़ी और वह एक दम सतर्क होता हुआ बोला, "जीजी! लो आ गया गुण्डा रामदयाल। मकान

के दरवाज़े बन्द कर दो। ख़बरदार, यह नालायक घर में न घुसने पाये। ध्यानव्रत को यहाँ बुलाओ।"

ज्ञानव्रत के मुँह से ये शब्द निकले और हरकली चौकन्नी होकर एकदम बैठक के दरवाज़े पर पहुँच गई। बैठक का दरवाज़ा रामदयाल के लिए बन्द कर दिया गया। घर का दरवाज़ा भी बन्द कर दिया गया।

चौधरी आभाराम के मकान का दरवाज़ा उनके कुछ पड़पोते और पड़पोतियाँ उनके ही कुछ पड़पोते और पड़पोतियों के लिए बन्द कर रहे थे और उसमें न घुसने देने के लिए उनसे जंग करने को तैयार थे।

रामदयाल ने बैठक का दरवाज़ा बन्द होता हुआ देखा तो उसके माथे की सलवटें सख्त हो गई। उसकी त्योरियाँ क्रोध से चढ़ गई। यही वह दरवाज़ा था जिस पर आते ही शक्तिसिंह उसे आगे बढ़कर छाती से लगा लेता था और आज यही दरवाज़ा उसके लिए बन्द हो गया।

रामदयाल ने बहलवान को ताँगा आगे बढ़ाकर गलिहारे के दूसरी तरफ़ घेर की ओर चलने का संकेत किया। ताँगा उस ओर बढ़ गया और रामदयाल ने तेजी के साथ बैल-ताँगा घेर के सामने रोक कर बैलों के कन्धे से जुआ उतार दिया। वह बैलों को लेकर तेज़ी से मवेशियों के घेर में घुस गया।

उसे डर था कि कहीं उसे घर की तरह घेर में भी न घुसने दिया जाय। उसकी यह आशंका ग़लत नहीं थी। उसने देखा कि घर से निकलकर ज्ञानव्रत वगैरा उधर ही गद मद लपके चले आ रहे थे और हरकली उनमें सबसे आगे थी। रामदयाल भी ज़रा सँभालकर खड़ा हो गया। उसका भाई धर्मप्रकाश दिल में काँप ही उठा। यों देखने में वह कुछ ऐसा कमज़ोर नहीं नहीं जँचता था, परन्तु ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत को हरकली के साथ अपनी ओर तेज़ी आते देखकर उसका दिल बैठने लगा। उसका दिल धक-धक कर रहा था। रामदयाल की आँखों की लाल

त्यौरी की तरफ देखकर, वह इस तरह चुप-चाप खड़ा हो गया जिस प्रकार क़साई के सामने गाय खड़ी हो जाती है। परन्तु उसका मन अन्दर-ही-अन्दर कह रहा था कि भाई साहब ने आज अच्छा मौत के मुँह में लाकर फँसा दिया।

ज्ञानव्रत के घेर मे घुसते ही रामदयाल सर्तक होकर इधर-उधर टहलने लगा। गर्दन नीची ही करके वह टहल रहा था, परन्तु देख सब कुछ रहा था कि उनका क्या इरादा है।

"जिस खोर पर तुमने ये बैल बाँधे हैं, वहाँ हमारे मवेशी बँधते हैं।" ज्ञानव्रत ने सामने खड़े होकर कहा।

"ये भी तो तुम्हारे ही मवेशी हैं ज्ञानव्रत!" नज़र उठाकर ज़रा गम्भीरता पूर्वक रामदयाल बोला और उसने फिर उसी तरह घूमना प्रारम्भ कर दिया।

"परन्तु ये यहाँ बँधेंगे तो हमारे मवेशी कहाँ बँधेंगे?" ध्यानव्रत आगे बढ़कर कुछ तेज़ स्वर में बोला।

"इतना बड़ा घेर पड़ा है। कहीं पर भी बँध जायेंगे। जहाँ जी चाहो बाँध लेना!" रामदयाल ने सरलतापूर्वक कहा।

"नहीं, यह नहीं होगा। ये बैल इस खोर पर नहीं बँध सकते।" हरकली ज़रा अभिमान के साथ बोली।

"यही होगा हरकली! ये बैल इसी खौर पर बँधेंगे। इन्हें यहाँ से कोई नहीं हटा सकता।" घूमना बन्द करके रामदयाल कड़क कर बोला और वह तैयार था इन तीनों से लोहा लेने के लिए।

तनातनी हद को पहुँच गई। हरकली का पारा इस समय सातवें आसमान पर था। ध्यानव्रत को दूध पिला-पिला कर इसी दिन के लिए तो पाला जा रहा था। वह बर्दाश्त न कर सकी रामदयाल का यह आह्वान। कड़क कर ध्यानव्रत की तरफ संकेत करती हुई बोली "ध्यानव्रत देखता क्या है? बैलों को खोलकर घेर से बाहर खदेड़ दो और घेर का दरवाज़ा बन्द कर दो!"

ध्यानव्रत ज़रा आगे को बढ़ा तो रामदयाल कड़क कर बोला, "खबरदार जो बैलों के जेवड़ों की तरफ़ हाथ बढ़ाया। यह याद रखना कि अपने परों फिर घेर से बाहर नहीं जा सकेगा ध्यानव्रत !"

ध्यानव्रत ने हरकली की आज्ञा तो सुनी ही थी, रामदयाल की ललकार भी सुनी। वह कुछ सहमा और ठिठका परन्तु उसी समय ज्ञानव्रत कड़क कर बोला, "देखता क्या है ध्यानव्रत बैलों को पीटकर घेर से बाहर खदेड़ दे। मैं सब देख लूँगा इसकी पहलवानी।"

ध्यानव्रत का दिल अपने भाई के ज़ोरदार शब्द सुन कर दोबाला हो उठा। परन्तु वह ज्यों ही बैलों की तरफ़ बढ़ा रामदयाल ने उसे पकड़ कर एक तरफ हटा दिया और सच-मुच ही वह डर गया रामदयाल से।

इस तरह अखाड़े में हार के लक्षण देख कर ज्ञानव्रत भी आगे बढ़ गया; परन्तु उससे लिपटने के लिए रामदयाल का छोटा भाई धर्मप्रकाश भी काफी मजबूत था।

इस प्रकार एक तरफ ज्ञानव्रत और धर्मप्रकाश जूझने लगे और दूसरी तरफ़ ध्यानव्रत तथा रामदयाल। ज्ञानव्रत धर्मप्रकाश से मजबूत निकला और उसने उसका काफी भुर्ता बनाया, परन्तु दूसरी तरफ ध्यानव्रत का पाला रामदयाल के सामने हारता देख कर हरकली को भी धर्म-युद्ध में उतरना पड़ा। जब उसकी और कुछ पार न बसाई तो उसने मौक़ा पाकर रामदयाल की धोती ही खींच ली और इस प्रकार उसे अपना नंगापन बचाना कठिन हो गया।

यह मल्ह-युद्ध काफी देर तिक चलता रहा। परन्तु कोई निर्णयात्मक फल न निकला। रामदयाल और उसके बैल ज्यों-के-त्यों घेर में बने रहे, उन्हें हरकली, ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत बाहर न निकाल सके।

यहाँ यह कुहराम मचा तो गाँव भर में बात फैल गई। वे

सभी लोग जो शक्तिसिंह के फरमाबरदार थे, सुन-सुन कर वहाँ इकट्ठे हुए और सभी ने रामदयाल की जीदारी की दाद दी। उनके इकट्ठा होने से धर्मप्रकाश का भी ज़रा हौसला बढ़ा और उसके उतरे हुई चेहरे पर मुस्कराहट दिखाई दी।

भाई को मुस्कराता हुआ देख कर रामदयाल का भी मन खिला और मुस्कराते हुए बोला, "धर्मप्रकाश ! ज़रा जाकर एक चिलम तम्बाकू तो भर ला।"

उसका यह कहना था कि धर्मप्रकाश लपक कर खड़ा हो गया। उसका अब साहस बँधता जा रहा था और उसे विश्वास होता जा रहा था कि उसका भाई उसकी जड़ों को सिरसे में गहरी पाताल तक पहुँचा देगा ।

रामदयाल के मुख पर मुस्कराहट थी, परन्तु ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और हरकली के मुखों पर चिंता छाई हुई थी। दिन में रात के बारह बजे थे उनके चेहरों पर । तीनों-के-तीनों घेर से निकल कर घर में चले गये और एक लम्बे अर्से तक मंत्रणा हुई । फिर तीनों एक सलाह हो गये और ध्यानव्रत को सीधा पिता जी के पास दौड़ा दिया।

ध्यानव्रत ने वहाँ जाकर अपने पिता जी से पूरी कहानी कह सुनाई और बताया कि किस प्रकार उनके रोकने पर भी रामदयाल घेर में घुस गया।

ध्यानव्रत से यह सुनकर मुंशी चतुरसिंह का पारा सातवें आसमान पर जा पहुँचा और वह कड़क कर बोले, "उस कमीने की यह मजाल ! उसने हरकली पर भी हाथ उठाने की जुरत की।"

हरकली पर रामदयाल ने हाथ नहीं उठाया था, उल्टी उसी की धोती हरकली ने खोल कर उसे नंगा कर देने का प्रयत्न किया था, परन्तु यह बात विशेष रूप से पिता जी से कहने के लिए ध्यानव्रत को हरकली ने ताकीद की थी।

यह बात हरकली की कही हुई थी, इसलिए इस पर विचारने की मुंशी चतुरसिंह को कोई आवश्यकता नहीं थी ।

मामला काफ़ी संगीन हो चुका था। रामदयाल के मुँह लग कर मुंशी चतुरसिंह अपना अपमान नही कराना चाहते थे। इसलिए अवसर की नज़ाकत को ध्यान में रख कर उन्होंने तार देकर अग्निदत्त को बुलाया और उसे बतलाया कि किस प्रकार रामदयाल हरकली के साथ पेश आया।

अग्निदत्त सिरसे पहुँचा तो उसने दोनों ओर की बातें सुनीं। सब बातों को सुनने के पश्चात् उसने मन में यही धारणा बनाई कि ग़लती अधिक ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और हरकली की थी। सिरसे का घर और ज़मीन अभी तक बंटे नहीं थे। उन पर परिवार के हर प्राणी का अधिकार था और अग्निदत्त की दृष्टि में परिवार का अर्थ भी मुंशी चतुरसिंह, उनकी स्त्री और उनकी सन्तान मात्र नहीं था। वह शक्तिसिंह और मुंशी चतुरसिंह की सन्तान को एक तराजू पर तौल कर देखता था।

अग्निदत्त ने इस समय के झगड़े का निपटारा करा दिया। आधा-आधा मकान और आधा-आधा घेर दोनों को बाँट दिया। जंगल की ज़मीन भी दोनों को मिल गई, परन्तु रही कुछ मुंशी चतुरसिंह के ही बच्चों पर ही अधिक।

अग्निदत्त का अपना तो अभी इस घर, घेर तथा जंगल की ज़मीन से कोई सम्बन्ध था ही नहीं। वह तो बाबू था रेल का। छुकाछुक-छुकाछुक बढ़ता जा रहा था जीवन में। अभी स्टेशन पर तो उसकी दृष्टि गई ही नहीं थी। उसका जीवन ठीक चल रहा था, संतोष के साथ चल रहा था। फिर वह खेती भी नहीं कर सकता था यहाँ रह कर। ध्यानव्रत और धर्मप्रकाश ने पढ़ना छोड़ दिया था। उन्हें ज़मीन की आवश्यकता थी और वे खेती के काम में लग जाने चाहिए थे। यही दृष्टिकोण था अग्निदत्त का।

यह खेती की व्यवस्था शक्तिसिंह की खेती की व्यवस्था नहीं थी। उस समय बीजवाता, रखाता, और कटवा कर घर में शक्तिसिंह भरता था और उसे बेचते मुंशी चतुरसिंह थे। जो

रुपया उन्हें मिलता था वह कहाँ जाता था उनसे यह पूछने को किसी को भी अधिकार नहीं था। और कोई उसकी आवश्यकता भी नहीं समझता था और न किसी में अक्ल ही थी यह जानने की।

परन्तु आज की यह व्यवस्था बिल्कुल भिन्न थी। परिवार के सब लोग जो कुछ भी कर रहे थे अपने-अपने लिए कर रहे थे। परिवार निश्चित रूप से तीन भागों में विभाजित हो चुका था और तीनों का एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं था। आपसी छीन-झपट की चालें चली जा रही थीं, जिनमें अग्निदत्त कोई हिस्सा नहीं ले रहा था। वह दूर परदेश में बैठा अपने बड़े भाई साहब और अपने भतीजों की कार्यवाहियों का अध्ययन कर रहा था। देख रहा था कि ज़माना किधर-से-किधर को जा रहा है उसमें कितना परिवर्तन होता जा रहा है।

अग्निदत्त एक दिन की छुट्टी लेकर आया था। अधिक वह ठहर नहीं सकता था। उसमें उसने जो कुछ भी किया वह इसी बात को ध्यान में रखकर किया कि आपसी भेद-भाव कम हों, लड़ाई-झगड़े की नौबत न आये और दुनिया उसे नाइंसाफ़ी भी न कह सके।

परन्तु अग्निदत्त ने जो कुछ भी किया वह ज्ञानव्रत की दृष्टि में सख्त नाइंसाफ़ी था, उसके हक़ूकों को उसने छीनकर रामदयाल के हवाले कर दिया। ज्ञानव्रत क़ानूनन मालिक था उस सब ज़मीन का जो उसके हल के नीचे से निकाल कर रामदयाल ने ले ली। और रामदयाल अग्निदत्त का कोई ख़ास अहसानमंद नहीं था क्योंकि उन्होने जो कुछ भी उसे दिलाया वह उसका हक़ था, उसे मिलना ही चाहिए था।

रामदयाल का पक्का इरादा था कि यदि वह न दिलाता तो वह ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और हरकली जैसे पिदनों से मार पीटकर छीन लेता। वह अपने इलाके के चार ऐसे गुण्डों को लाकर कुए की मन पर बिठला देता कि जिनके सामने आकर जंगल की ज़मीन पर हरकली, ध्यानव्रत और ज्ञानव्रत का पैर रखना

भी हराम हो जाता।

रामदयाल उसके बाद सिरसे में जम गया। धर्मप्रकाश को उसने हर प्रकार से मज़बूत कर दिया और मेरठ के प्रसिद्ध लीले पहलवान के दो पट्ठे उसके हर समय संरक्षण के लिए छोड़ दिए। जब वह दस दिन की छुट्टी पूरी करके चला तो धर्मप्रकाश से कहता गया, "किसी हरामज़ादे की परवाह न करना। अगर तेरा बाल भी बाँका हो गया तो एक-एक की बोटी-बोटी उड़वा दूँगा। और दोनों पट्ठों को हमेशा अपने साथ सुलाना। उनको भाई की तरह मानना, खाने पीने का ख्याल रखना।"

रामदयाल की ये बातें हरकली, ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत तीनों ने सुनीं और उनके दिल सहम गये। अभी तक जो कुछ वे रामदयाल के चले जाने के पश्चात धर्मप्रकाश के साथ करने की सोच भी रहे थे वह भी उन दो पट्ठों के सिरसे में धर्मप्रकाश के साथ रहने की बात सुनकर, काफ़ूर हो गई।

इन पट्ठों की नज़रों से नजरें मिलाना, ध्यानव्रत और ज्ञानव्रत के लिए कठिन था। कहते हैं वे कई खून भी कर चुके थे और आख़िरी खून करने के अपराध से उन्हें दीवान रामदयाल ने ही बचाया था। इसीलिए वे दीवान जी की उखड़ी हुई जड़ों को सिरसे में जमाने की क़सम खाकर यहाँ आये थे।

रामदयाल चलते समय थाने में जाकर वहाँ के दीवान जी से मिला और अपने छोटे भाई को उनका ही छोटा भाई बतलाकर हर तरह की देखभाल करने के लिए कह गया। इससे धर्मप्रकाश का दिल और भी मज़बूत हो गया और उसी दिन से उसने गाँव में आने वाले सिपाहियों की चापलूसी तथा उनके खाने-पीने का प्रबन्ध भी शुरू कर दिया।

: २० :

मुंशी चतुर्रसिंह अपने परिवार के जिस पतंग को उड़ा रहे थे उसके दो कन्नों में से एक को काट कर हरकली और ज्ञान-व्रत साफ़ कर चुके थे। शक्तिसिंह और उसकी औलाद के लिए अब मुंशी चतुर्रसिंह के दिल में कोई स्थान शेष नहीं रह गया था। पतंग का दूसरा कन्ना अग्निदत्त था और इसी को काटने के लिए अब ये दोनों अपने सब प्रकार के हथियारों का प्रयोग कर रहे थे।

मुंशी चतुर्रसिंह के परिवार का पतंग एक कन्ने के कट जाने से हवा में बुरी तरह चकरा रहा था। एक भंवर से में वह फँस गया था। मुंशी चतुर्रसिंह के हाथों की रील ढीली पड़ती जा रही थी और उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा था कि मानो उनका पतंग उड़ाने का खेल ही समाप्त होना चाहता है। उनकी समझ में इसका राज़ नहीं आ रहा था। उनकी झुंझ-लाहट के शिकार हिर-फिर के वे कन्ने ही बनते थे जो कट चुके थे या कटने जा रहे थे। उन्हें काटने वाले की तरफ़ कभी उनका ध्यान ही नहीं जाता था।

जब कभी कोई नास्तिक उनसे भगवान् के अस्तित्व के विषय में बहस करता था तो वह अपना अकाट्य प्रमाण लाकर उसके सामने रखते थे, "भाई कर्त्ता के बिना कार्य नहीं हो सकता। इसलिए ब्रह्माण्ड की रचना भी बिना बनाने वाले के नहीं हो सकती।"

परन्तु आज उनके परिवार के पतंग के कन्ने बिना कर्त्ता के कटते चले जा रहे थे। वह समझ ही नहीं पा रहे थे उस कर्त्ता

को कि जो न केवल उनके पारिवारिक पतंग के कन्ने काट रहा था वरन् उनको भी उनकी जीवन-शक्ति और जीवन-साथियों से विमुख करता जा रहा था।

हरकली की दृष्टि के सामने थी यह लड़खड़ाती हुई गुड्डी, जिसका एक कन्ना अभी तक पतंग की तीली से बँधा था। वह इसे जल्द-से-जल्द काट कर अपनी नई गुड्डी आसमान में उड़ाना चाहती थी।

कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। सर्दी यह कह रही थी कि तुझे जितना पड़ना है तू आज ही पड़के निपट ले। बड़े दिन की छुट्टियों के दिन थे। अग्निदत्त की इच्छा अपने बड़े भाई मुंशी चतुरसिंह से मिलने की हुई। उसने किसी प्रकार अपनी स्त्री को भी चलने के लिए राज़ी कर लिया। अग्निदत्त का लड़का राजू भी छुट्टियों में उन्हीं के पास आया हुआ था। इस छोटे बच्चे की सलाह का तो कोई अर्थ ही नहीं था।

सहारनपुर से रात को नौ बजे की गाड़ी से अग्निदत्त अपनी स्त्री तथा बच्चे के साथ इस शीत-रात्रि में भाई से मिलने चला। छोटी लाइन में सफ़र करने का यह पहला ही अवसर था। गाड़ी अग्निदत्त ने शुरू से आख़ीर तक देखी, परन्तु एक भी डिब्बा ऐसा न मिला जिसकी सब खिड़कियाँ सही सलामत हों। अग्निदत्त की स्त्री ने स्टेशन से ही लौट चलने की सलाह दी, क्योंकि उस शीत-रात्रि और टूटी खिड़कियों की ठंडी हवा से बचने के लिए उनके पास काफ़ी कपड़ा नहीं था। परन्तु अग्निदत्त अपनी ज़िद पर डटा रहा।

आख़िर एक डिब्बे में ये लोग बैठ ही गये। गाड़ी चली तो खिड़कियों से सांय-सांय हवा ने अन्दर आना प्रारम्भ किया। डिब्बे में कुल गिनी-गिनाई पाँच सवारियाँ थीं। क्योंकि छोटी लाइन पर लोग-बाग रात को सफ़र करना पसंद नहीं करते थे। वह गाड़ी इतनी मंदी चलती थी कि कोई भी ज़रा तेज़ दौड़ने वाला इंसान उसके साथ मीलों दौड़ सकता था। इसी-

लिए आम तौर पर इस लाइन में ख़तरनाक हादसे होते रहते थे।

भाई से मिलने का प्यार आज अग्निदत्त का ज़ोर मार रहा था। उनसे मिले काफ़ी दिन हो गये थे। जबसे उन्होंने मेरठ छोड़ा था तब से भेंट ही नहीं हो पाई थी। भाभी जी के भी दर्शन नहीं किये थे। बड़ौत कुछ ऐसी जगह थी कि जो रास्ते से हटी सी हुई थी; आम रास्ते पर नहीं पड़ती थी।

काफ़ी दिन का बिछड़ा हुआ यह छोटा भाई न जाने क्या-क्या विचार अपने मस्तिष्क में लिए इस ढिचर-पिचर करने वाली छोटी लाइन के डिब्बे की उस सीट पर बठा था जिस पर पूरी तरह बैठ सकना भी दूभर हो रहा था।

डिब्बे की सीटें लेट सकने के बिलकुल क़ाबिल नहीं थीं। फिर भी अग्निदत्त ज़रा अपनी स्त्री को प्रसन्न करने के लिए बोला "तुम लेट जाओ देवी! और राजू को भी लिटा लो अपने पास। मैं जाग रहा हूँ।"

अग्निदत्त की स्त्री अपने पति के इस फुसलाने पर ज़रा मुस्करा कर बोली, "यहाँ लेटने की जगह कहीं दीख रही है तुम्हें। बैठा तक तो जा नहीं रहा है ठीक से। नाहक़ की ज़िद सवार हो जाती है तुम्हें। अच्छे ख़ासे बैठे-बिठाये और नहीं तो बड़ौत जाने की ही ठान ली। जब वहाँ जाकर फटकारें खाने को मिलेंगी तो कहोगे कि इससे तो न आते तभी भला था।"

"फटकारें किस बात की मिलेंगी देवी!" अग्निदत्त बोला। "क्या फटकारें खाने के लिए मैं ही रह गया हूँ? मैंने क्या क़सूर किया है उनका?"

"सिर्फ़ तुम ही नहीं, मैं भी हूँ। भगवान् ने तुम्हारे साथ ब्याह दिया है न मुझे।" कह कर अग्निदत्त की स्त्री ने खिड़की से बाहर उस शीत-रात्रि में चमकते हुए चन्द्रमा की तरफ़ देखा।

अग्निदत्त अपनी स्त्री के इस व्यंग्यपूर्ण उपहास का आनन्द लेकर बोला, "देवी! उस दिन सिरसे का क्या हाल सुनाऊं

तुम्हें कि हरकली ने तो लड़कों के भी कान काट लिये। रामदयाल की धोती खींचकर खोल डाली उसने और नंगा कर दिया उसे।"

हरकली का नाम आते ही अग्निदत्त की स्त्री में भी ज़रा जान पड़ गई। और वह सुधरती हुई बोली, "वह कनकटी! जो कुछ भी न कर ले, वही थोड़ा है। वह क्या नहीं कर सकती, यह कहो। ईंट-से-ईंट भिड़ाकर न छोड़े तुम्हारे परिवार की तो तब कहना।"

"हरकली वाक़ई बहुत छोटे विचारों की लड़की है। उसके सामने हर समय उसके पिताजी, उसकी माताजी, उसके भाई और उसकी बहनें ही रहती हैं। वरना जैसे वह बेवा हो गई है, उसके लिए सब बराबर होने चाहिए थे। उसे रामदयाल, धर्मप्रकाश, ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और राजू में कोई अन्तर नहीं समझना चाहिए था। ऐसा करती तो सब उसका मान करते। परन्तु उसने अपने को बहुत ही छोटी सीमा में बाँध लिया है।"

"बस रहने दो इन बातों को। तुम जिन बातों को लेकर चल रहे हो उनमें एक दिन देख लेना तुम ही खता खाओगे। सब अपना-अपना सोचते हैं। तुम्हारी तरह नहीं कि जो कुछ भी करेंगे बड़े भाई साहब ही करेंगे। उनसे डरा-डरा कर तुमने हमें कहीं का नहीं छोड़ा।" दुखित मन से अग्निदत्त की स्त्री ने कहा।

"तुम सब कहीं की हो देवी! तुम्हें कोई चिंता नहीं करनी चाहिए। हमने जो कुछ भी किया है अपने परिवार की इज्ज़त के लिए किया है।" मन में धैर्य लेकर अग्निदत्त बोला।

"तुम्हारे परिवार की इज्ज़त ने ही तो हमें इस दीन का कर दिया। अब जा तो रहे हो दुम हिलाते हुए उनके पास। और मैं कहती हूँ, चाहे इस कान सुनो या उस कान, वह तुम्हारी रत्ती भर भी परवाह नहीं करते। उन्हें तुम्हारा अपने पास आना भी गवारा नहीं।" भन्नाकर अग्निदत्त की स्त्री ने कहा।

"बस रहने भी दो देवी ! तुम तो हमेशा ऐसी ही जली-कटी बातें करती हो और इधर मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारी यह आदत और भी ज्यादा बढ़ती जा रही है। मैं चुपचाप सुनता जाता हूँ तो तुम सिर पर सवार होती चली जा रही हो।" ज़रा गर्म होकर अग्निदत्त ने उत्तर दिया।

फिर दोनों चुप हो गये। अग्निदत्त की स्त्री ने अग्निदत्त की तरफ़ से मुँह फेर लिया। राजू को उसने अपनी गोद में सुलाया हुआ था। गाड़ी फकाफक-फकाफक आगे बढ़ती चली जा रही थी।

छोटे-छोटे बहुत से स्टेशनों पर रुकती हुई गाड़ी आगे बढ़ रही थी। यह लगभग सन् १९३२ का ज़माना था। ये स्टेशन भी क्या थे, मामूली टीन डाल लिये गये थे और प्लेटफ़ार्म के स्थान पर लाल बजरी बिछा दी गई थी। टिकट बटने का भी प्रबन्ध स्टेशनों पर बहुत कम था। गार्ड ही टिकट बाँट देता था और वही गाड़ी से उतरने वाले मुसाफ़िरों से टिकट ले लेता था। इस तरह इस काम के कारण भी ट्रेन काफ़ी ठहर-ठहर कर चल रही थी।

सर्दी की इस रात में अग्निदत्त और उसकी स्त्री आपस में कमर-से-कमर लगाए सटे बैठे थे, परन्तु अब थे दोनों ही मौन। एक शब्द भी कोई एक-दूसरे से नहीं बोल रहा था।

सुबह के चार बजे बड़ौत का स्टेशन आया। स्टेशन पर कोई सवारी नहीं थी क़स्बे तक जाने के लिए। तीनों प्राणी पैदल-ही-पैदल ख़रामा-ख़रामा क़स्बे में पहुँचे। अभी रात का सन्नाटा ही था, गो साढ़े पाँच बज चुके थे वहाँ पहुँचते-पहुँचते। किसी से स्कूल का रास्ता पूछा तो उसने बतला दिया।

क़स्बे का यह बड़ा स्कूल था, उसे कौन नहीं जानता। और मुंशी चतुरसिंह के नाम से तो यहाँ का हर व्यक्ति परिचित था। अग्निदत्त पौने छः बजे अपने भाई साहब के दरवाज़े पर अपनी स्त्री तथा लड़के को लेकर पहुँचा, परन्तु उसे देखकर मुंशी चतुर-

सिंह के मुख पर कोई प्रसन्नता के आसार नुमाया नहीं हुए।

आज नमस्ते भी ठीक से नहीं ली मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत्त की। उनके मस्तक पर और बल पड़ गये, अग्निदत्त को देखकर। अग्निदत्त समझ न सका इस व्यवहार को, परन्तु इतना अवश्य ताड़ गया कि कुछ दाल में काला अवश्य है।

दो घंटे पश्चात् बातों का सिलसिला छिड़ा। चतुरसिंह तो किसी बात को दाब कर रख ही नहीं सकते थे और जो उनके मन में आती थी उसे अवश्य कहते थे। बला से सुनने वाले का दिल उन्हें सुनकर बचा रहे, या टूट जाये, चकनाचूर हो जाये उसकी उन्हें चिन्ता नहीं थी। अग्निदत्त की तरफ़ देखते हुए बोले, "क्यों बाबू साहब! अब तो आप बाप-बेटों का भी पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो गया है?"

"कैसा पत्र-व्यवहार?" सीधे-सादे स्वर में अग्निदत्त ने पूछा।

"कैसा पत्र व्यवहार?" यह भी आप मुझी से पूछना चाहते हैं। राजू से आप कुछ नहीं पूछ सकते? उसने तुम्हें क्या-क्या और किस-किस तरह के ख़त लिखे हैं, यह भी तुम नहीं जानते?" आश्चर्य के साथ अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मुंशी चतुरसिंह बोले।

"मुझे राजू ने कोई इस तरह का पत्र नहीं लिखा।" गम्भीरता पूर्वक अग्निदत्त ने कहा।

"नहीं लिखा! हरकली!" हरकली को आवाज़ देते हुए चतुरसिंह बोले, "बुलाओ ध्यानव्रत को।"

फिर क्या था? हरकली का पढ़ा-लिखा कर, पुख़्ता किया हुआ यह नाटक का पात्र मंच पर आ गया। अपनी गोल खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए पहले तो इसने अपने चाचाजी को तपाक से नमस्ते की और फिर पिताजी की तरफ़ मुख़ातिब होकर बोला, "क्या आपने बुलाया है मुझे?"

"हाँ मैंने ही बुलाया है। ज़रा अपने चाचाजी को बता तो

दे कि राजू ने क्या-क्या लिखा था उस ख़त में ।"

ध्यानव्रत ने हरकली का पढ़ाया हुआ पूरा बयान सुना डाला। यह बयान अग्निदत्त आज पहली बार सुन रहा था। राजू ने कभी उन्हें इस प्रकार का पत्र नहीं लिखा। वह समझ गया कि भाई चतुरसिंह का मन उसकी ओर से फेरने के लिए हरकली ने यह गहरी चाल चली है। परन्तु वह कर भी क्या सकता था इसके विरुद्ध।

अग्निदत्त ने मुस्कराकर ध्यानव्रत से पूछा, "तुमने यह ख़त कैसे पढ़ा ?"

"पहले राजू ने इसे एक काग़ज़ पर लिखा था और फिर पोस्टकार्ड पर उतारा था। वह काग़ज़ मेरे हाथ लग गया।" ध्यानव्रत ने कहा और हरकली मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी कि उसके भाई ने नाटक की भूमिका पूरी सफलता के साथ अभिनीत की।

"ज़रा वह पर्चा मुझे भी दिखला दो। मैं भी तो देख लूँ उसमें क्या लिखा है और वह पर्चा वास्तव में है भी राजू का लिखा हुआ या नहीं।"

"वह तो मैंने हरकली जीजी को पढ़ाकर तभी फाड़ दिया था।" ध्यानव्रत सतर्कता के साथ बोला।

अब अग्निदत्त ने उससे और बातें करना बेसूद समझा और मंशी चतुरसिंह से साफ़ शब्दों में कह दिया, "यह सब गलत है।"

परन्तु इस पर मुंशी चतुरसिंह अग्निदत्त से साफ़ शब्दों में बोले, "अग्निदत्त ! मैं बहुत मूर्ख बन चुका हूँ। अब और अधिक मुझे बनाने का प्रयत्न न करो। तुम अपने बच्चों का विश्वास करते हो, मुझे अपनों का करने दो। मैं अब अपने बच्चों के अलावा दूसरों का विश्वास नहीं कर सकता।"

अग्निदत्त प्रस्तर-शिला के समान खड़ा रह गया। उसके शब्द उसके होठों पर जड़ हो गये, पाषाण के समान। उनका अब और आगे बढ़ना निरर्थक था। वह अपने उन भाई

साहब को, जिन्हें वह दिमाग़ का पुतला समझता था, अपनी आँखों के सामने एक खिलौने के रूप में बैठा देख रहा था। कठपुतली के खेल का वह एक दाढ़ी वाला गुड्डा मात्र रह गया था जिसकी चोटी हरकली के हाथों में थी और जिससे वह जो चाहे बुलवा सकती थी, जो चाहे करा रही थी।

हरकली मुस्करा रही थी अपने पिताजी के पीछे खड़ी-खड़ी और अग्निदत्त यह तमाशा देखा रहा था। वह गम्भीरता पूर्वक बोला, "आज हरकली वाकई तुम्हारी जीत हुई। भाई चतुरसिंह के पतंग का एक कन्ना तो भगवान ने ही काट दिया और दूसरा तुमने काट दिया। परिवार का पतंग अब आसमान में बेसहारे हो गया और उसे लूटने के लिए कितने ही लोगों की भीड़ मुँह बाये आसमान पर ताक रही है।"

अग्निदत्त ने अब और एक शब्द भी अपने भाई साहब से कहना उचित न समझा। जिन्हें आज तक पिताजी के मरने के पश्चात् उसने पिता के स्थान पर देखा था और कभी उसने कोई झूठी बात नहीं कही थी, वह आज उससे कह रहे थे, "तुम अपने बच्चे का विश्वास करो और मैं अपनों का करूँगा। अर्थात सचाई कोई चीज ही नहीं रही और उसका निणय करना ही व्यर्थ हो गया आज भाई साहब को दृष्टि में।

अग्निदत्त अपनी स्त्री और राजू को लेकर रेलवे स्टेशन की ओर चल दिया। उसने बड़ौत को छोड़ दिया! उसने आज भाई के घर खाना नहीं खाया। भाभी से कह दिया, "मेरा पेट कई दिन से खराब हो रहा है। ज़रा भी कुछ खा लूँगा तो जाने कितने दिन खटिया की मेहमानी करनी पड़ेगी।"

: २१ :

मुंशी चतुरसिंह ने रामदयाल और अग्निदत्त, दोनों को एक ही लाठी से हाँकना आरम्भ कर दिया। हरकली की अब हर बात उनके मन में गुभी ही चली जाती थीं। वह आई और क़रीने के साथ उनके सामने आराम कुर्सी पर बैठ कर मुँह बिचकाते हुए बोली, "पिताजी! आप नहीं समझते, ये लोग सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं जैसा रामदयाल वैसे चचा अग्निदत्त।" और पिताजी ने अपनी नासमझी स्वीकार कर ली थी।

आजकल मुंशी चतुरसिंह भगवान् को लाख-लाख शुक्रिया भेजते थे कि उसने उन्हें हरकली जैसी क़ाबिल और लायक लड़की तथा ज्ञानव्रत जैसा योग्य बेटा दिया, जिन्होंने समय पर ही उनकी आँखें खोल दीं, वरना बाद में पछतावा-ही-पछतावा रह जाता।

"देखा नहीं था आपने, उस दिन चाचा जी कैसे तुनक कर यहाँ से गये थे। चोरी और सीनाज़ोरी! अपने राजू को तो दूध का धुला हुआ सत्यवादी समझ रहे थे और हमारे भोले-भाले ज्ञानव्रत को झूठा साबित करने के फ़िराक़ में थे।

मैं कहती हूँ मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था वह परचा। आख़िर सँभाल कर रखने के लिए क्या वह कोई नक़दी की दस्तावेज़ थी जो उसे तिजोरी में बन्द करके रखती।" हरकली ज़रा बातों की पेचीदगी पैदा करती हुई फिर उसी विषय पर अपने पिताजी को ले आई।

ज्ञानव्रत भी एक तरफ़ कुर्सी पर बैठा था। वह लपक कर हरकली की बात हाथों-हाथ सँभालता हुआ बोला, "वही पीले-पीले से कापी के फटे हुए पन्ने की बात है न जीजी! वह

तो आपने मुझे भी दिखाया था। राजू की लिखत भी क्या हम लोग नहीं पहचानते ?"

"तुमने भी देखा था ज्ञानव्रत वह परचा ?" मुंशी चतुरसिंह ने ज्ञानव्रत की ओर देखते हुए पूछा। मानो वह अपने विचार को और दृढ़ कर लेना चाहते थे। शायद उनकी अन्दर की आत्मा अभी तक पत्थर के समान कठोर बन कर उस परचे की सचाई पर स्थिर नहीं हो पाई थी।

"जी पिता जी ! मैंने देखा ही नहीं, पढ़ा भी था मैं राजू की लिखत खूब पहचानता हूँ। वह परचा राजू के ही हाथ का लिखा हुआ था। उसमें आपके और माताजी के विरुद्ध ज़हर उगला गया था। मैं तो उस परचे को पढ़ने से पहले कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि वह राजू, जिसे आज तक आप ध्यानव्रत से भी अधिक छाती से लगाते चले आ रहे हैं, आपके विरुद्ध ऐसी बातें चाचा जी को लिखने का साहस कर सकता है।" गम्भीर मुख-मुद्रा बना कर ज्ञानव्रत बोला।

मुंशी चतुरसिंह को ज्ञानव्रत से उस पत्र की यह कहानी सुन कर हार्दिक क्लेश हुआ। उन्होंने मन-ही-मन कहा, "दुनिया में बस छल-ही-छल भरा है। कोई किसी का भाई, भतीजा, सगा, सम्बन्धी नहीं है। सब मतलब के साथी हैं। अगर अपने कोई हैं तो वे अपने बाल-बच्चे ही हैं।" मुंशी चतुरसिंह का मन इस समय बहुत भारी था।

कितनी मज़ेदार बात थी कि जिस ख़त को लेकर मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत्त को अपना अंतिम निणय सुना दिया, कि वह भविष्य में अपने बच्चों को छोड़कर अन्य किसी का विश्वास नहीं करेंगे, उसका मजमून आज तक उन्होंने नहीं सुना था। वह पत्र अग्निदत्त ने भी नहीं देखा था और हरकली, ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत ने तो उस पत्र को जन्म ही दिया था, परन्तु देखा उन लोगों ने भी नहीं।

आज एकांत में जाकर ज्ञानव्रत और हरकली की काफ़ी

देर तक बातें हुईं। दोनों ही बहुत प्रसन्न थे। ज्ञानव्रत प्रसन्नता-पूर्वक बोला, "जीजी ! अब तुमने सचमुच वह क़िला भी फ़तह् कर लिया जिसकी मुझे ज़रा भी आशा नहीं थी। पिता जी के दिल और दिमाग़ से अग्निदत्त चाचा जी को इस तरह निकाल कर फेंक देना, तुम्हारा ही काम था।"

"चाचा अग्निदत्त को पिताजी के दिमाग़ से निकाले बिना काम ही नहीं बनता ज्ञानव्रत ! तुम नहीं समझ सकते कि पिता जी पर चढ़े हुए चाचा जी के असर को धोने में मुझे कितनी कठिनाइयों और मानहानियों का सामना करना पड़ा है। पिता जी की कितनी झिड़कियाँ खानी पड़ी हैं और वे कितने लोगों के सामने खानी पड़ी हैं परन्तु अन्त में विजय मेरी ही हुई। चाचा मियाँ को मैंने पिताजी के दरबार से वह बेआबरू करके निकाला, वह बेआबरू करके निकाला कि चाचा भी जीवन भर याद ही रखेंगे। सच जानो ज्ञानव्रत, यह कसक चाचाजी के दिल में जीवन भर जाने वाली नहीं।" दिल में अपनी विजय का उभार लेकर हरकली बोली।

"इसमें कोई सन्देह नहीं। आपने कमाल कर दिया जीजी,! अनहोनी चीज़ को होनी करके दिखलाया है। जीजी तुमने अपने भाइयों को बरबाद होने से बचा लिया। वरना सचमुच पिता जी के जीवन भर की कमाई इन्हीं परिवार वालों के पेट में चली जाती और हम लोग इनका मुँह ताकते ही रह जाते।" हरकली के काम की दाद देते हुए ज्ञानव्रत ने कहा।

"मैं इन लोगों की चालों को बहुत पहले से ध्यान में रखती चली आ रही हूँ ज्ञानव्रत और सोचती आ रही हूँ कि आख़िर पिता जी इतने पढ़े लिखे और अक्लमन्द आदमी होकर भी क्यों इन लोगों के हाथों में खेल रहे हैं।

कुछ समझ में ही न आता था। कुछ कहने का प्रयास करती थी, तो डपट दी जाती थी। बेचारी माता जी मेरी बात सुनतीं भी थीं तो उनका सुनना-न-सुनना बराबर था। उन्हें घर के

मामलात में पूछता ही कौन था ? पिताजी तो आफ़त के पर-काले ठहरे। उनके सामने बोलना ही मानो अपनी आफ़त मोल लेना है। परन्तु मैं तो आज भी भगवान् को लाख-लाख शुक्रिया भेजती हूँ कि उसने ठीक समय पर पिता जी की अक्ल ठीक कर दी।" हरकली ने कहा।

"भगवान् ने नहीं जीजी ! आपने कर दी।" ज्ञानव्रत हरकली जीजी को सम्मान देता हुआ बोला।

"ऐसा मत कहो ज्ञानव्रत ! करने वाला सब कुछ वही है। मैं क्या कर सकती थी उसकी इच्छा के बिना ?" अपने दोनों हाथ जोड़ कर आँखें मीचे हुए आकाश की तरफ़ अपनी छोटी सी थूथड़ी उठा कर हरकली ने कहा।

इस समय उसकी मुद्रा बहुत गम्भीर थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो हरकली कहीं भगवान् के ही आस-पास में बैठी बातें कर रही है। एक साध्वी, बाल-ब्रह्मचारिणी का भगवान् के साथ इतना सामीप्य कोई आश्चर्य की बात नहीं थी ज्ञानव्रत के लिए।

हरकली के अन्दर इस समय न केवल ज्ञानव्रत की ही पूरी आस्था थी वरन् मुंशी चतुरसिंह का पूरा परिवार ही उसके गुणों पर लट्टू था। वह सती जन्म लेकर आई थी मुंशी चतुर-सिंह के घर में, और उसकी प्रशंसा में उनका हलक़ सूखता था। अपने नायब टीचरों के बीच बैठते तो हरकली की प्रशंसा में कहते, "हरकली जैसी संतान का अपने घर में जन्म लेना मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ।"

और मुंशी जी के चाटुकार अध्यापक भी अवसर-बे-अवसर मुंशी चतुरसिंह को प्रसन्न करने के लिए कहते, "मुंशी जी ! कल मैं आपकी अनुपस्थिति में घर पर गया था। आप आर्य-समाज के अधिवेशन में गये थे। घर पर बेटी हरकली से भेंट हुई और कल ही मुझे प्रथम बार उसके विचारों को जानने का अवसर मिला।

कितने ऊँचे विचारों की लड़की है, कि बस क्या कहूँ ? मेरी तो आँखें ही नहीं ज्ञान-चक्षु भी खुल गये उससे चार बातें करके ?"

मुंशी जी यह सुनकर उछल पड़ते और मुस्कराकर कहते, "मैंने कहा था उस दिन आप लोगों से कि आप अभी हरकली से बहुत सी बातें सीख सकते हैं। कमाल की बुद्धि दी है उसे भगवान् ने और अब तो उसका अध्ययन भी बहुत बढ़ गया है। कभी अध्यात्म पर बातें करके देखिये तो जौहर खुले आपके सामने।

"अध्यात्म पर ?" आश्चर्य-चकित होकर ज़रा नाटकीय मुद्रा में नायब टीचर कहते।

हरकली की प्रशंसा मुंशी जी अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के सामने भी करने से नहीं चूकते। जब कुछ विद्यार्थी पाठ याद न करते तो वह उनसे कहते, "आप लोग लड़कियों से भी गये बीते हैं। मेरी हरकली ने एक बार पढ़ना छोड़ दिया और जब फिर पढ़ना प्रारम्भ किया तो फिर वही ताज़गी है उसके पढ़ने में। परन्तु एक आप लोग हैं जो ताज़ा होने पर भी बासी ही दिखाई देते हैं।"

हरकली की तारीफ़ वह खाना खाते समय हरकली की माता जी से भी करने में पीछे नहीं रहते। मुस्करा कर कहते हैं, "देख रही हो न ! एक खाने का तुम्हारा प्रबन्ध था और एक अब हरकली का है। क्या मजाल जो कभी पाँच मिनट की भी देर हो जाय खाने में।"

और अपनी बेटी की प्रशंसा सुनकर हरकली की माता जी भी प्रसन्नता में मुग्ध हो जातीं और उन्हें यह ध्यान ही न आता कि हरकली की इस प्रशंसा के पीछे उनको मूर्खता की सनद दी जा रही है।

आज ज्ञानव्रत और हरकली ने यह सलाह की थी कि रात्रि को किसी प्रकार पिता जी को घेरा जाय और उन्हें समझा-बुझा कर इस बात पर तैयार किया जाय कि वह अब अपने

सम्मिलित परिवार के क़ानूनी-झमेले को साफ़ कर डालें और अपनी जायदाद को क़ानूनन चतुरसिंह, अग्निदत्त और शक्तिसिंह के बेटों में तकसीम करा दें।"

खाना खाकर मुंशी चतुरसिंह जब कोठी से बाहर निकल कर अपने बाग़ीचे में सैर को गये तो समय उपयुक्त समझ कर हरकली भी उनके पीछे-पीछे वहीं पहुँच गई और धीरे-धीरे उनके साथ घूमने लगी।

रात की रानी का पेड़ आज बहुत महक रहा था और बेला के फूलों की भी खुशबू आ रही थी। हरकली रात की रानी के पास खड़ी होकर पिता जी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती गई बोली, "हमारे बाग़ीचे में तो बस एक यही पेड़ है जिसने सारे बाग़ीचे को महका रखा है। कितनी महक दी है इस पौदे को भी भगवान् ने।"

"यह पेड़ वास्तव में बहुत महकता है।" मुंशी चतुरसिंह बोले।

"यह दुनिया भी पिता जी! एक बाग़ीचे के ही समान है। और इसमें भी चन्द ही पेड़ ऐसे होते हैं कि जो महकते हैं।" हरकली ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

मुंशी चतुरसिंह की आत्मा हरकली के इन शब्दों को सुनकर खिल उठी और उन्हें लगा कि मानो उनकी हरकली ने कोई ज्ञान का पिटारा उनके सामने लाकर खोल दिया।

वह मुग्ध हो उठे हरकली के इस वाक्य पर और गद्-गद् होकर बोले, "तुमने बहुत ऊँची बात कही बेटी! महकने वाले पौदे संसार में कम ही होते हैं। अधिकांश तो गंदगी ही फैलाने के लिए आते हैं। कूड़ा-करकट बढ़ाते हैं।"

"परन्तु मुझे अभिमान है अपने भाई बहनों पर पिता जी!" बात का रुख बदलते हुए हरकली बोली। "मेरे भाई बहन वे पौदे हैं कि जिनकी खुशबू संसार को महका देगी और आपके नाम तथा यश को वहाँ तक पहुँचायेगी कि जिसका अनुमान भी

नहीं लगाया जा सकता।"

"यह सब परमात्मा की महिमा है बेटी! कि जिसने तुम लोगों को ऐसे गुण प्रदान किये।" हरकली की बात सुनकर भगवान् के ध्यान में लीन होते हुए मुंशी चतुरसिंह ने कहा।

"भगवान् की महिमा अपरम्पार है पिता जी! जिसे ऊँचा उठाना होता है उसे वह सद्बुद्धि प्रदान करता है और जिन्हें नीचे गिराना होता है उनकी बुद्धि मलीन हो जाती है। आप दूर क्यों जाते हैं अपने भतीजे रामदयाल को ही देख लीजिए।"

"उस नीच का नाम भी न लो मेरे सामने।" रामदयाल का जिक्र आते ही मुंशी चतुरसिंह आग-बबूला होकर बोले और उनके मस्तिष्क का मूड ही बदल गया। उन्हें अपना रामदयाल को किया गया प्यार और उसकी गुस्ताखी, बेटे के दस्तबन्दी उसकी धोखेबाज़ी से बिकना, हरकली को गाली देकर उस पर हाथ छोड़ना और अन्त में ज़बरदस्ती सिरसे के घर घेर में आधुलन, सब याद आ गया।

हरकली ने यह बात जिस अभिप्राय को लेकर कही थी, वह पूरा हो गया। और फिर तनिक बातों को इधर-उधर फेर कर वह बोली, "पिता जी! आज एक बात कहूँ आप से?"

"हाँ हाँ कहो हरकली! संकोच की क्या बात है इसमें?" मुंशी जी ने कहा। हरकली और उसके पिता जी चतुरसिंह रात की रानी के बने चबूतरे पर पड़े हुए मूढ़ों पर बैठे थे।

"आप देख रहे हैं पिताजी! कि हम लोग अब रामदयाल के दुर्व्यवहारों के काफ़ी शिकार हो चुके हैं। आपसी सम्बन्धों में अब प्रेम और सद्भावना के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह गया। ऐसी दशा में यदि हम लोग अपनी जायदाद का बँटवारा करके क़ानूनी तरीके से अलग-अलग हो जायँ तो यह सभी के हक़ में बहुत अच्छा होगा।" हरकली ने निहायत संजीदगी के साथ कहा।

"तुम्हारा खयाल ठीक है बेटी! मैं कई दिन से स्वयं इस

दिशा में विचार कर रहा हूँ। कल मैं वकील साहब के पास गया भी था। जायदाद के सब कागज़ात उन्हीं को दे आया हूँ।"

"तो क्या विचार था उनका! क्या जायदाद आप तीनों भाइयों में बराबर-बराबर तक़सीम होगी?" निहायत सादगी के साथ हरकली ने पूछा। वह पिता जी के मन की बात जानकर तब अपनी बात कहना चाहती थी।

"यह एक से लाख तक नहीं होगा हरकली! मैं आज तक अपनी सन्तान को भुलाकर भाई-भतीजों का ख़याल करता चला आ रहा हूँ। अब जीवन के अन्तिम दिनों में तो मैं तुम लोगों को भुलाकर नहीं चल सकता।" गम्भीरतापूर्वक मुंशी चतुरसिंह ने कहा और एक आशा भरी दृष्टि से उन्होंने हरकली के मुँह पर देखते हुए अनुभव किया कि इन्होंने वही सोचा और किया है, जो हरकली चाहती है।

"तब फिर क्या होगा पिता जी!" हरकली ने पूछा।

"होगा क्या? वही होगा जो मैं चाहूँगा। तमाम ज़मीन मेरे नाम है। ये सब लोग लाख सिर पटक कर मर जायँ तब भी एक खूड़ ज़मीन, अपने बारहवें हिस्से से अधिक, नहीं पा सकेंगे। वकील साहब ने मुझे पूरा-पूरा आश्वासन दिया है।" दृढ़तापूर्वक मुंशी चतुरसिंह बोले।

"ज्ञानव्रत भय्या का भी यही विचार है जो आप कह रहे हैं।" अपने को फिर भी पीछे ही रखते हुए चालाकी के साथ हरकली बोली, "और इन्साफ़ भी यही कहता है। आख़िर रामदयाल को बिना ज़मीन में रुपया दिये किस प्रकार हिस्सा दिया जा सकता है? उसके पिता जी तो हमेशा परिवार पर एक भार बनकर ही रहे। कभी एक छदाम की कमाई उन्होंने करके शायद ही दी हो। उलटी घर की आमदनी को खाते रहे।"

"कभी एक छदाम क्या एक कौड़ी की भी नहीं दी। उलटा जब-तब मुझी से रुपये ऐंठने के फ़िराक़ में रहता था।" और मुंशी चतुरसिंह ने हरकली को कितने ही वे अवसर गिना डाले

कि जब उन्होंने शक्तिसिंह को दो-चार, दस-पाँच, दस-बीस रुपये दिये थे।

"परन्तु अग्निदत्त चाचा जी के विषय में भी क्या आपका यही विचार है ?" ज़रा और गम्भीर होकर हरकली ने पूछा।

हरकली अपने पिता जी के दिल की थाह लेना चाहती थी। इस समय वह सबसे अधिक गम्भीर थी। उसके दिल की थाह का किसी को पता नहीं था।

अग्निदत्त का नाम सामने आते ही मुंशी चतुरसिंह के दिल में एक कसक सी पैदा हो गई। वह बोले नहीं कुछ देर तक। मानो कोई बात उनकी समझ में ही नहीं आ रही थी।

पिता जी को इस गम्भीर समस्या पर चुप होते देख कर हरकली समझ गई कि वह धर्म-संकट में फँस गये हैं। हरकली ने तुरन्त अपना सुझाव सामने रखते हुए कहा, "हमें किसी के साथ बेईमानी नहीं करनी है पिता जी! आप यह जान लें बस! आपकी सन्तान आपके नाम को बट्टा नहीं लगा सकती।"

"यह मैं जानता हूँ बेटी!" तनिक साँस लेते हुए मुंशी चतुरसिंह ने कहा।

हरकली के इन शब्दों ने मुंशी चतुरसिंह को उस घुटन के वातावरण से खींचकर बाहर ला दिया जिसकी दलदल में अग्निदत्त का नाम आ जाने पर उनके प्राण फँस गये थे।

"मैं अग्निदत्त के साथ बेईमानी नहीं कर सकता।" गम्भीरता-पूर्वक मुंशी चतुरसिंह बोले।

"तो उन्हें आप पत्र लिख दीजिये और मालूम कर लीजिये कि वह मुद्दई बनना चाहते हैं या मुद्दायला। क्योंकि जब आप वकील साहब से भी सलाह ले चुके हैं तो सम्मिलित परिवार का बटवारा तो आपको करा ही डालना चाहिए।"

"तुम्हारा विचार ठीक है बेटी! मैं आज ही अग्निदत्त को चिट्ठी लिखे देता हूँ और यह भी साफ़-साफ़ मालूम कर लेना चाहता हूँ कि उसकी क्या राय है ?" उसी संजीदगी के साथ

मुंशी चतुरसिंह ने कहा।

इसके पश्चात और बातें आगे न बढ़ सकीं। मुंशी चतुरसिंह वहाँ से उठकर बैठक में चले गये और उन्होंने एक पत्र भी अग्निदत्त के नाम लिख कर भेज दिया।

हरकली वहीं बैठी रही। पिता जी के चले जाने पर ज्ञानव्रत भी वहीं पहुँच गया। वह पहले से ही कोठी की एक दीवार के नीचे रात की रानी की ओट में खड़ा ये सब बातें सुन रहा था।

ज्ञानव्रत की मुख-मुद्रा इस समय बहुत ही गम्भीर बनी हुई थी। वह हरकली के सामने पड़े मूढ़े पर बैठता हुआ बोला, "जीजी! तुम देख रही हो कि पिता जी की ये बातें अभी तक इनका पीछा नहीं छोड़ रहीं। मुझे तो साफ़-साफ़ दीख रहा है कि ये हम लोगों को एक दिन ख़ाना-ख़राब करके छोड़ेंगे।"

"जल्दबाज़ी की बातें न सोचो ज्ञानव्रत! तुम नहीं जानते हो कि पिता जी को चाचा अग्निदत्त से अलग करने में मैंने क्या-क्या किया है। तनिक सी बात सामने पर ही बिगड़ना शरू हो गये। तुम्हारे मुँह से निकली हुई बात सीधी सिरसे और सहारनपुर में ही जाकर दम लेगी और वह पिता जी के कानों में ज़हर का काम करेगी।"

"मानता हूँ जीजो! परन्तु....."

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं ज्ञानव्रत! तुम्हें जानना चाहिए कि जो माला में तैयार कर रही हूँ वह कच्चे धागों की माला है। उस पर अभी से ज़ोर आज़माने का प्रयत्न न करो।

परन्तु इतना विश्वास रखो कि एक दिन यही माला सूत का वह मज़बूत रस्सा बन जायगी कि यदि तुम चाहोगे तो वह फाँसी का भी काम दे सकेगी।" हरकली ने कहा।

इसी समय ध्यानव्रत भी वहाँ आ पहुँचा और उससे हरकली ने धीरे से कहा, "जरा बैठक में जाकर देखो तो ध्यानव्रत! पिता जी क्या कर रहे हैं।"

और ध्यानव्रत उछलता हुआ उधर को चल दिया। कुछ ही

देर में उसने आकर सूचना दी, "कुछ लिख रहे हैं वह तो।"

वह दूर से ही देख सकता था। पिता जी के पास तक पहुँचते, अभी उसका दिल दहलता था। उनका वह मोटा सोटा उसे कभी नहीं भूलता था जो कितनी ही बार उसकी कमर-गद्दी कर चुका था और पिताजी के वह करारे-करारे तमाचे भी उसकी छोटी-सी खोपड़ी में हर समय चक्कर लगाते रहते थे जो वक़्त-बे-वक़्त उसके गालों पर चिपक कर रह गये थे।

हरकली की आज्ञा से जो कुछ भी अभिनय वह करता था, उसे करते समय उसके दिल की क्या दशा होती थी, यह वही जानता था। एक तरफ़ पिता जी का भय, लाल-लाल आँखें निकाले खड़ा रहता था और दूसरी तरफ़ जीजी का उसके लिए त्याग, प्यार और बड़प्पन। जीजी कहती, "ध्यानव्रत साहसी बनो! अपने हक़ के लिए यदि एक दिन पिता जी से भी आमने-सामने होने की नौबत आ जाय तो वही कहो जिसमें तुम्हारा हित हो। जो आदमी संसार में अपना हित नहीं कर सकता, अपने हक़ की रक्षा नहीं कर सकता, वह आदमी नहीं हिजड़ा है। तुम हिजड़ा बनना चाहते हो या वीर?"

"वीर" ध्यानव्रत साहस के साथ कहता।

"तो वह करोगे जो मैं कहती हूँ। मैं तुम्हें वीर बनाऊँगी, सहासी बनाऊँगी।" हरकली सीना उभार कर कहती।

"और तुम बन सकोगे ध्यानव्रत! अपनी बड़ी बहन की आज्ञा का पालन करना तुम्हारा धर्म है। सही या ग़लत का विचार करना तुम्हारा काम नहीं।" ज्ञानव्रत गम्भीर मुद्रा में कहता।

ध्यानव्रत की छोटी खोपड़ी में यह बात पूरी तरह भर जाती कि वाक़ई सही-या-ग़लत पर विचार करना उसका काम नहीं है। उसका धर्म है बड़ों की आज्ञा-पालन करना। अपनी बड़ी बहन की आज्ञा का पालन करना; अपने बड़े भाई की आज्ञा का पालन करना।

आज्ञा पालक रहने की बीमारी इस परिवार के अधिकांश सदस्यों में थी।

: २२ :

बड़ौत से लौटने पर बाबू अग्निदत्त की समझ में आया कि वह धोखे में थे, मूर्ख बन रहे थे। उन्होंने आज तक अपने बड़े भाई साहब को जो पिता समझा, वह उनकी ग़लती थी। पिता का स्थान भाई नहीं ले सकता।

उनकी आँखों के सामने एक बार राम, लक्ष्मण और भरत का सुनहरा आदर्श आकर खड़ा हुआ और फिर मानो उस पर किसी ने काली स्याही पोत दी। उसमें फिर सुनहरी और रुपहली झलक मारी, कल्पना और आदर्शों की तस्वीरें निखर कर सामने आईं और फिर उनकी छाया मात्र भी अपना अस्तित्व क़ायम न रख सकीं।

अपनी स्त्री की ओर देखता हुआ निराशा भरे शब्दों में बोला, "देवी ! सब धोखा-ही-धोखा निकला। भाई साहब का कल जैसा रूप क्या कभी तुमने भी सोचा था कि जीवन में सामने आ सकेगा ?" दुखी मन से अग्निदत्त ने कहा।

"मैं गँवार बेपढ़े-लिखे बाप की बेटी भला आपके धर्मावतार भाई साहब को क्या जान सकती थी, क्या परख सकती थी ?" कटाक्ष रूप में अग्निदत्त की स्त्री ने कहा।

अग्निदत्त की स्त्री के शब्दों में एक तीखा कटाक्ष था, जिसे आज अग्निदत्त ने सुना भी बुरा नहीं माना। उन्हें याद आ रहे थे वे सभी अवसर जब उनकी स्त्री के द्वारा उनके भाई साहब की नीयत में शक की एक साधारण सी रेखा खिंच जाने पर भी उन्होंने उसे बुरी तरह फटकार और दुत्कार दिया था।

अपने भाई साहब को अग्निदत्त सचमुच ही धर्मावतार

समझते थे । उनकी सच्चाई और ईमानदारी में शक करने को वह ईश्वर की सच्चाई और ईमानदारी में शंका करना मानते थे।

आज अग्निदत्त को न केवल अपनी, वरन अन्य मित्रों, सम्बन्धियों और यों ही आपस की साधारण बातों में कही गईं वे सभी बातें याद आ रही थीं जिनमें उनके भाई साहब की नियत पर शक किया गया था।

सबसे ज़ोरदार शब्द उनके ससुर के थे जो उन्होंने अपने गाँव के सिवाने से अपनी लड़की को अग्निदत्त के साथ बिदा करते समय कहे थे । उन्होंने कहा था, "मुझे चतुरसिंह की ईमानदारी में पूरा-पूरा शक है। भाई मेरे भी हैं परन्तु उनकी जायदाद पर मैंने अपना नाम नहीं चढ़वाया हुआ। जिसकी जितनी जायदाद है, उसका उतनी पर नाम है। मैं भी अपने घर में सबसे बड़ा हूँ और परिवार का मुखिया हूँ। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि मैं सरकारी काग़जातों में से उनके नाम ही ग़ायब करा डालूँ।"

अग्निदत्त उस समय बच्चा नहीं था । नौकरी कर रहा था और एक बच्चे का पिता भी वह बन चुका था। परन्तु सच बात यह थी कि उसे उस समय अपने ससुर का भी अपने बड़े भाई साहब की ईमानदारी में शक करना निहायत बुरा लगा। उत्तर उसने कुछ नहीं दिया उन्हें, परन्तु एक ख़लिश सी उसके दिमाग़ पर अवश्य आई।

आज उसी ख़लिश ने उभर कर अग्निदत्त से कहा, "ओ नातजुर्बेकार इंसान मैं अभी तक मौजूद हूँ । उस दिन तूने अपने एक हमदर्द पिता की बात पर नाराज़गी प्रकट की थी। आज तुझे उसी पर पश्चात्ताप करना पड़ रहा है। उसने ज़माना देखा था, और तू अभी जमाने में प्रवेश ही कर रहा था।"

अग्निदत्त तिलमिला उठे इस बात के याद आते ही । परन्तु अब तीर प्रत्यंचा से छूट चुका था । समय निकल चुका था।

संतोष को छोड़कर अब और कोई चारा ही नहीं था उनके पास, और इसमें कोई शक नहीं कि अग्निदत्त में संतोष भी ग़जब का है।

संतोष उनकी स्त्री में भी कम नहीं परन्तु इस हादसे ने उसे चिड़-चिड़ा बना दिया और उसका मन यह कहने लगा कि यह सब ग़लती उसके पति ने ही की है।

इसीलिए अब कभी-कभी इन घर के मामलात को लेकर उनकी आपस में झड़प भी होने लगी। और अग्निदत्त जैसे कर्मठ तथा साहसी व्यक्ति को बहुत सी बातें सुनकर भी चुप रह जाना पड़ा। वह अपने दिल से अपनी दूरदर्शिता की नाक़ाबलियत को महसूस करते थे। और यह समझते थे कि उनके भाई साहब के आचरण ने उनकी स्त्री और पुरुष की तराजू के पलड़ों में उनका पलड़ा हलका कर दिया।

इन्हीं दिनों अग्निदत्त के पास उनके भाँजे की चिट्ठी आई और उसमें लिखा था,

"आदरणीय मामा जी,

मैं इन दिनों घर की कमजोर हालत से परेशान हूँ। देहली जाकर कुछ कारोबार करना चाहता हूँ। यदि आप कुछ दिन के लिए माता जी को अपने पास रख लें तो आपकी बड़ी कृपा होगी और मुझे इस कठिन परिस्थिति में सहायता मिल जायगी।"

अग्निदत्त यह पत्र पाते ही अपनी बहन को अपने पास ले आये और उनकी स्त्री ने भी कहा, "यह घर क्या उनका नहीं है? जब तक उनका जी चाहे, रहें। उनकी दो रोटियों में क्या हम ग़रीब हुए जाते हैं। दो रोटियाँ सभी के नाम की भगवान् देता है।"

अग्निदत्त का जीवन इस समय काफ़ी उथल-पुथल का चल रहा था। अपने घर की ज़मीन-जायदाद की तरफ़ से उन्हें भविष्य अंधकारपूर्ण दिखलाई देने लगा था। इसलिए फ़िलहाल उन्होंने अपना ध्यान उस तरफ़ से हटा लिया और अपनी मौजूदा

स्थिति में ही संतोष करके वह अपना पारिवारिक जीवन चलाते रहे। अपने लड़के को वह अपने पास ही ले आये थे।

अग्निदत्त का सहारनपुर का वह ज़माना जिसमें रात दिन की नौकरी देनी होती थी अब ख़त्म हो चुका था। बाबू अग्निदत्त क्लर्की के इम्तहान में पास हो गये थे और अब फिर उन्हें पुरानी दबदबे वाली हेडक्लर्की की कुर्सी मिल गई थी। कैरिज-विभाग के लम्बे-चौड़े स्टाफ़ पर फिर वही पुराना रौब था। स्टाफ़ के आदमियों पर बाबू अग्निदत्त के लम्बे तजुर्बे की धाक थी और बड़े-बड़े बाबू भी उनकी सलाह का लोहा मानते थे। इस बार यह कुर्सी अग्निदत्त को उसके इंचार्ज की मेहरबानी से नहीं मिली थी, वरन् उसकी अपनी योग्यता के आधार पर मिली थी।

अग्निदत्त की शहर सहारनपुर के सामाजिक क्षेत्र में भी ज़बरदस्त इज़्ज़त थी। वह यहाँ पर भी प्रधान थे आर्यसमाज के। शहर के बड़े-बड़े अफ़सर और लाले उनकी इज्ज़त करते थे। विशेष रूप से आर्यसमाजी क्षेत्र में तो वह पुजते ही थे। उनकी ईमानदारी, दयानतदारी, कर्मठता और मिलनसारी ने उन्हें हरदिल अज़ीज़ बना दिया था।

आर्यसमाज के काम की उन्हें ऐसी धुन थी कि क्या रात, क्या दिन, हर समय वह तैयार रहते थे। उनके मकान पर आर्य समाजी पंडितों, भजन-उपदेशकों, प्रचारकों और ज्ञानी ऋषि-मुनियों का तांता लगा रहता था। अच्छे-अच्छे विद्वान भी आकर ठहरते थे।

हवन, संध्या इत्यादि अग्निदत्त भी करते थे, परन्तु उनके कर्मकाण्ड में वह नियामकता नहीं थी जो मुंशी चतुर्भुजसिंह के कर्मकाण्ड में थी। इसमें काफ़ी ढिलाई थी, परन्तु विश्वास की कमी नहीं थी।

अग्निदत्त के विचार काफ़ी प्रगतिवादी थे और वह दिलेर भी इतने थे कि सरकारी नौकर होते हुए भी उन्होंने अपनी समाज के चपरासी को गुप्त रूप से कह रखा था कि यदि कभी

वक्त-बे-वक़्त काँगड़ी गुरुकुल, ज्वालापुर के सत्याग्रही विद्यार्थी शरण लेने के लिए आयें तो वह उन्हें खाने-पीने ओर ठहरने की सुविधा प्रदान करे। यह समय असहयोग-आन्दोलन का चल रहा था, जिसमें आर्यसमाजी संस्था काँगड़ी-गुरुकुल के विद्यार्थी भी सक्रिय सहयोग प्रदान कर रहे थे।

इस प्रकार इन दिनों अग्निदत्त का मन घर के वातावरण से कुछ हट सा गया था और वह उन्हें दूर बैठे एक दर्शक की दृष्टि से देख रहे थे। इससे अधिक वह और कुछ कर भी नहीं सकते थे। क्योंकि उनके लिए वह अपनी नौकरी को छोड़कर गाँव में आसन नहीं जमा सकते थे।

आज भाई साहब का उन्हें वह पत्र भी मिला जो हरकली ने उन्हें लिखने के लिए कहा था। इस पत्र में लिखा था,

"जनाब बाबू अग्निदत्त साहब!

हम लोगों के आपसी मामलात इतने बिगड़ चुके हैं कि अब आपसी प्रेम-भाव रह ही नहीं गया है। ऐसी दशा में मैं चाहता हूँ कि जायदाद की भी क़ानूनन तक़सीम हो जाय। तक़सीम दायर करने में लिखो कि तुम मुद्दई बनना चाहते हो या मुद्दायला।"

पत्र अग्निदत्त ने पढ़ा और पढ़कर अपनी स्त्री को भी सुनाया।

"हम मुद्दई और मुद्दायला कुछ नहीं बनना चाहते। जेठ जी को लिख दीजिये कि अगर उनकी नीयत में हमारा हिस्सा देने की हो तो दे दें, वरना हम मुक़द्दमेबाज़ी में नहीं पड़ना चाहते।" गम्भीरतापूर्वक अग्निदत्त की स्त्री ने जवाब दिया।

अपनी बिना पढ़ी-लिखी स्त्री की क़ाबलियत, त्याग और आत्मसमर्पण की अग्निदत्त पर छाप थी। उसकी सादगी, सरलता और उनसे कभी कोई बात न छुपाने के गुणों पर भी अग्निदत्त मुग्ध थे। हाँ स्वभाव की वह अवश्य कुछ तेज़ थी और ज़बान-दराज़ी का भी उसमें बल आ गया था। परन्तु इस ज़बान-दराज़ी और स्वभाव तथा दिमाग़ की तेज़ी की भी तरक्की तभी से अधिक हुई थी जब से अग्निदत्त के तराज़ू के पलड़े से

उसके भाई की ईमानदारी का वज़न उठ गया था।

उसी दिन से इस दिशा में बाबू अग्निदत्त की नर्मी और उनकी स्त्री की गर्मी बराबर बढ़ती जा रही थी।

अग्निदत्त गम्भीरतापूर्वक बोले, "तो देवी! यही जवाब दे देता हूँ भाई साहब को। मैं वाक़ई इस झमेले में नहीं फँसना चाहता। यदि भाग्य में सिरसे जाकर रहना नहीं बदा तो नहीं जायँगे। गाँव से बाहर रहकर भी तो बहुत से लोग अपनी गुज़र-बसर कर रहे हैं।"

अग्निदत्त ने यही लिख कर मुंशी चतुरसिंह के पास भेज दिया।

मुंशी चतुरसिंह को यह जवाब मिला तो वह एक दम भिन-भिना उठे और दाँत रगड़ कर बोले, "देखा नालायक़ की बात। कितना पाजीपन भरा है इसमें। पूरा त्यागी बनना चाहता है।"

"क्या बात है पिता जी!" पास में बैठी हरकली पूछ बैठी और खत हाथ में लेकर कहा, "क्या अग्निदत्त चाचा जी का पत्र आया है?"

"हाँ, उसी का है। लिखता है कि वह न तो मुद्दई बनना चाहता है और न मुद्दायला।"

"यानी मामले को झमेले में ही फँसाये रखना चाहते हैं।" गहरे व्यंग्य के साथ हरकली बोली, "मैं समझती थी कि वह यही सब लिखेंगे। चाचा जी हर बात को झमेले में डालना और उस पर लीपना ही पसन्द करते हैं। आज और स्पष्ट करती हूँ कि आप उनकी चालों को नहीं पहचान सकते। वह तो चाहते हैं कि मामले इसी प्रकार उलझे रहें और जिस तरह एक दिन शक्तिसिंह चाचा जी चल बसे उसी तरह आपके इस संसार से बिदा हो जाने पर वह इस सब के मालिक बन बैठें। वह चाहते हैं कि आपके बच्चे उनके सामने टुकड़े-टुकड़े के लिए गिड़-गिड़ाएँ और दुतकारे जायें।"

"यह नहीं हो सकता बेटी! तुम मुझे ग़लत समझा रहीं हो।

मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि अपने हाथ के नीचे पाले-पोसे अग्निदत्त के हाथ के नीचे अपने को दबा बैठूं। इन लोगों की चालों की काट मेरे पास मौजूद है और इस परिवार की सारी ज़मीन मेरे अपने ही नाम है इन लोगों को तो क़ानूनन कुल जायदाद का एक बटा बारहवाँ, एक बटा बारहवाँ हिस्सा ही मिल सकता है।" गर्व के साथ अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुये मुंशी चतुर-सिंह बोले।

हरकली यह राज़ पहले से जानती थी, परन्तु इस समय आश्चर्य प्रकट करते हुए और यह जतलाते हुए कि उसके पिता जी ने एक महत्वपूर्ण रहस्य उस पर खोला है, गम्भीरतापूर्वक बोली, "मैं कई बार सोचती थी पिता जी! कि पता नहीं क्यों हमारे पिता ही जैसे अक्लमंद आदमी चाचा जी अग्निदत्त जैसे कम अक्ल वालों के हाथों में खेल रहे हैं। आज पता चला कि वास्तव में ये सब आपके हाथ की कठपुतलियाँ मात्र ही थीं। आप इन कठपुतलियों की चोटियाँ पकड़ कर जिधर भी चाहते थे नचा देते। ये मूर्ख व्यर्थ आपके सामने अपनी-अपनी अक़्ल छाँटने का प्रयत्न कर रहे थे।"

अपनी क़ाबिल लड़की हरकली की ज़बान से अपनी दूरदर्शिता की प्रशंसा सुनकर मुंशी चतुरसिंह को कितना आत्मसंतोष हुआ यह कहने की बात नहीं। उनकी आत्मा की पंखुड़ियाँ प्रसन्नता से खिल उठीं और उससे निकलने वाली आनन्द की महक से उनका दिल और दिमाग़ ताज़ा हो गया। उनकी आत्मा ने आनन्द-सागर की लहरियों में जी भर कर स्नान किया और प्रसन्न होकर बोले, "बस अब रास्ता साफ़ हो गया बेटी! एक बात थी दिल में, सो वह भी निकल गई। अग्निदत्त ने आप ही मेरा साथ छोड़ दिया। अब उसके पास बोलने या कुछ कहने के लिये कोई स्थान नहीं रहा।"

"अग्निदत्त चाचा जी ने तो सचमुच ही अपना रास्ता आप बन्द कर लिया। वह समझ रहे होंगे कि उन्होंने बड़ी योग्यता

का पत्र लिखा है और इसे पढ़कर उनके बड़े भाई साहब उनकी ख़ुशामद के लिए दौड़ेंगे परन्तु यह सब उनकी मूर्खता का ही प्रमाण है।" गम्भीरता के साथ हरकली बोली।

आज रविवार का दिन था और मुंशी चतुरसिंह इस समय हवन पर बैठने के लिए जा रहे थे। हवन-कुण्ड के तीन ओर हरकली, ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत बैठे थे तथा चौथे आसन पर मुंशी चतुरसिंह विराजमान थे। चारों के मस्तिष्क में घर की जायजाद को तक्सीम करने की समस्या खड़ी थी और करने जा रहे थे भगवान् का भजन और हवन।

गायत्री का जाप हुआ, स्वस्तिवाचन के मंत्र जपे गए, अग्नि प्रज्वलित हुई और उस पर घृत तथा सामग्री की आहूतियाँ डाली गईं। तमाम मकान यज्ञ की महक से भर गया, परन्तु इन चारों प्राणियों के मस्तिष्क में खड़ी सम्मिलित परिवार की जायदादी तक्सीम की समस्या को भेदकर वह अंदर न घुस सकी। ज़बानों ने मंत्र उच्चारण किए, कंठ ने स्वर दिया, हाथों ने आहूतियाँ डालीं, और आँखों ने हवन-कुण्ड में अग्नि जलती और उस पर आहूतियाँ पड़ती हुई देखीं, परन्तु मस्तिष्क अपनी जायदाद की तक्सीम को ही अपने अन्दर लिए बैठा रहा। उसके अंदर बार-बार झुँझलाहट पैदा हो रही थी। संस्कार विधि के रचयिता पर कि जिसने यज्ञ के कर्म-काण्ड में इतने अधिक मंत्रों को पढ़ने का क्रम बना लिया था।

यज्ञ समाप्त होते ही मुंशी चतुरसिंह ने अपना अलीगढ़ फैशन का पायजामा पहना, ऊपर कमीज़ पहनी और फिर बन्द गले का कोट। सिर पर गांधी-कैप लगाई और पैरों में नरी की पंजाबी लाल रंग की जूतियाँ। फिर बैठक के कोने में रखा हुआ अपना गोल मूंठ का वह सोटा लिया, जिसे देखकर ध्यानव्रत का दिल सुबकियाँ लेने लगता था और जिसकी करारी मार को अभी तक ज्ञानव्रत भी लाख प्रयत्न करने पर नहीं भुला पाया था।

हवन के पात्र की चिकनाई से जहाँ सिर, हाथ, मुँह और

दाढ़ी को मुंशी चतुरसिंह ने चिकनाया था वहाँ अपने सोटे पर भी वह हाथ फेरना नहीं भूले। फिर ज्ञानव्रत की ओर संकेत करके बोले, "ज़रा उस डैस्क से हमारे क़ानूनी क़ाग़ज़ात का बस्ता तो निकाल लो।"

ज्ञानव्रत ने विद्युत-गति के साथ आज्ञा का पालन किया।

चलते समय बहुत संजीदगी और दृढ़ता के साथ मुंशी चतुरसिंह हरकली से बोले, "बेटी, आज निपटारा ही करके आऊँगा इन मामलों का। इन लोगों ने अभी तमाशा ही समझ रखा है। जब दूध से मक्खियों की तरह निकाल कर फेंक दूँगा, तब दिमाग़ अपने आप ठिकाने पर आ जायंगे।"

मुंशी चतुरसिंह चल दिये वकील साहब की तरफ़ और ज्ञानव्रत काग़ज़ात का बस्ता बगल में दबाये उनके साथ-साथ गया।

हरकली आज अपने लक्ष्य पर पहुँच चुकी थी। उसकी इच्छित बात आज उसके पिता जी करने जा रहे थे। उसे नाज़ था अपनी दूरदर्शिता पर कि आख़िरी उसके पिता जी को भी वही करना पड़ा जो वह चाहती थी।

हरकली बैठक से बाहर निकल कर अपने बाग़ीचे में घूमने लगी और उसने मन-ही-मन कहा, "भगवान् तू बड़ा ही दयालू है। तूने पिता जी को सही रास्ता दिखा दिया; नहीं तो न जाने हम लोगों की क्या दशा होती।"

हरकली के शरीर की नसें इस समय उत्साह से फड़क रही थीं। उस दिन का स्वप्न उसकी आँखों के सामने था जब अदालत अग्निदत्त और रामदयाल तथा धर्मप्रकाश के नाम जायदाद की तक़सीम में बारहवाँ-बारहवाँ हिस्सा लगा देगी और उसे क़ानूनी हक होगा कि वह सरकारी पुलिस की मदद से अपनी कुल जायदाद के दस हिस्सों पर क़ाबिज़ होकर अपने भाई ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के लिए एक लम्बा-चौड़ा खेती का फ़ार्म तैयार करा सकेगी।

इस फ़ार्म में नये क़िस्म की खेती होगी। नये तरीक़ों पर खेती की जायेगी। एक ट्यूब वेल लगेगा और नये बाग़ात भी लगाये जायँगे। स्वर्ग बन जायगा उसके दोनों भाइयों का वह घर, जिसमें उनके बाल बच्चे किलोलें करते फिरेंगे। हरकली को जीजी-जीजी, बुआजी-बुआजी कहते सबके हलक़ सूखेंगे और उसका अपार प्यार उन पर ईश्वर वर्षा के समान सर्वदा बरसता रहेगा।

उसकी पूजा की जायगी उस परिवार में। उसकी भावजें उसके संकेत पर नाचेंगी और वह शासन करेगी इस पर। परन्तु यह सोचते समय उसने यह नहीं सोचा कि चतुर्रसिंह के परिवार की इतनी खुशहाली उसके पूरे परिवार की क्या दशा कर देगी। जिसकी खुशहाली में से यह खुश हाल बनना चाहती है।

: २३ :

रामदयाल सिरसे में अपने भाई धर्मप्रकाश को स्थापित करके अपनी नौकरी पर चला गया। वह अपना हिस्सा सिरसे की जायदाद में एक तिहाई ही समझता था और इस समय की धाँधले बाज़ी में उसके हाथ लगभग आधी ज़मीन आ गई थी। इस ज़मीन के अपने हल के नीचे से निकल जाने का ज्ञानव्रत और हरकली को भारी सदमा था। जितना उन्हें मलाल था उससे कई गुनी प्रसन्नता रामदयाल को थी कि उसने बिना हल्दी और फिटकिरी लगाये ही अपना वह रंग जमा लिया कि जो मुंशी चतुरसिंह तथा अग्निदत्त अपनी जीवन भर की कमाई इसमें झोंक कर भी न जमा सके।

परिवार के पतंग की दोनों कन्नियाँ हरकली काट चुकी थी और वह इस समय निराधार वायु-मण्डल में उड़ रहा था। उसकी धज्जियों को लूटने के लिए रामदयाल, धर्मप्रकाश, हरकली, ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत मुँह बनाये बैठे थे। अग्निदत्त दूर सहारनपुर में बैठे-बैठे यह तमाशा देख रहे थे और अपनी स्त्री के पास बैठ कर कभी-कभी अपनी लाचारी पर कुढ़ लेते थे। पतंग की लूट में शामिल होने का न तो उनके पास समय ही था और न उनके पास आदमी ही थे। उनका लड़का अभी छोटा ही था और वह उसे तालीम दिलाना अधिक आवश्यक समझते थे बनिस्बत उस परिवार की लूट में शामिल करने के।

इस प्रकार चौधरी आभाराम के परिवार के अब स्पष्ट रूप से तीन परिवार हो गये जिनका संचालन हरकली तथा ज्ञानव्रत, रामदयाल और अग्निदत्त द्वारा हो रहा था। परिवार का पुराना

मकान बटवारा न होने के कारण चारों तरफ़ से ढह गया था। उसकी मरम्मत में कोई भी फ़रीक़ रुपया लगाना नहीं चाहता था। आधे मकान में धर्मप्रकाश और आधे में ज्ञानव्रत रह रहा था।

दोनों का पारस्परिक द्वेष और एक दूसरे की चालों के आघातों से दिलों पर बने घावों के लिए, एक ही मकान में रहना सम्भव नहीं था।

सिरसा जिन दिनों ख़ुशहाली पर था, उन दिनों जहाँ साहूकार और व्यापारी लोग यहाँ रहते थे, वहाँ सुनारों के भी घर आबाद हो गये थे। परन्तु ज्यों-ज्यों इस खुशहाली ने किनारा किया त्यों-त्यों सुनार जैसे कारीगरों का भी वहाँ रहना दूभर हो गया। इन लोगों ने भी अच्छी रकमें पैदा की थीं और बड़ी-बड़ी हवेलियाँ गाँव में बनाली थीं। इन्हीं सुनारों की एक हवेली पर मुंशी चतुरसिंह ने कुछ वर्ष पूर्व तीन सौ रुपया कर्ज़ दे दिया था। यह कर्ज़ अब बढ़ कर छः सौ रुपये पर पहुँच गया था। यह तीन सौ रुपया रामदयाल, अग्निदत्त और मुंशी चतुरसिंह ने शामलात दिया था और तीनों के नाम से ही काग़ज़ भी लिखा गया था।

पुराने फूटे घर में हरकली और ज्ञानव्रत को रहते शर्म आने लगी थी। हवेली के स्वप्न उनके पुराने ही थे और अब धर्मप्रकाश जैसे नालायक़ के साथ एक मकान में उनका निभना कठिन हो गया था। जहाँ एक ओर इनका हवन, भजन, पूजा, पाठ और ज्ञान-ध्यान चलता था वहाँ दूसरी ओर धर्मप्रकाश की चंडाल-चौकड़ी जुटती थी।

"भय्या ज्ञानव्रत!" एक दिन धर्मप्रकाश की किसी बात से तंग आकर हरकली ने कहा, "अब हम लोगों का इस मकान में रहना कठिन हो गया है। हमारी बहू बेटियों के सामने धर्मप्रकाश का इस तरह आवारा चौकड़ी के लोगों को बुलाकर उनके साथ हुक्का सट्याना मैं सहन नहीं कर सकती। फिर रोज़-

रोज़ आपसी झगड़े करना भी कठिन है ।"

"देख तो मैं भी रहा हूँ जीजी ! और मन-मन-मन जलन भी होती है। परन्तु इन गुण्डों को मैं मुँह नहीं लगाना चाहता ।" ज्ञानव्रत गम्भीरतापूर्वक बोला ।

"तुम्हारा विचार ठीक है ज्ञानव्रत ! इन लोगों के मुँह नही लगना चाहिए । इन्हें तो जहाँ तक भी बन पड़े क़ानूनी दाव-पेच से ही मारना ठीक है। अदालती समन आते ही इनके दिमाग़ दुरुस्त हो जायेंगे। परन्तु मेरा कुछ और ही विचार हो रहा है ।"

"वह क्या जीजी ?" ज्ञानव्रत ने गम्भीर मुद्रा बनाकर पूछा

"क्यों न हम लोग उस सुनारों वाली हवेली को ख़रीद लें और इस मकान को ही छोड़कर वहाँ चले जायँ ? रोज़-रोज़ का झंझट समाप्त हो जायगा।" हरकली बोली ।

"बात तो आपने लाख रुपये की कही है जीजी ! परन्तु सुनार तो दो हज़ार रुपया माँग रहा है हवेली का ।" ज्ञानव्रत ने सूचना दी ।

"तो क्या बात है, देगें दो हजार भी ! जरा आँखें तो खुलेंगी रामदयाल की, और गाँव वाले भी समझेंगे कि इनसे झगड़ा लेना लोहे के चने चबाना है ।" हरकली ने सीने में उभार लाकर कहा ।

हरकली की यह साहसपूर्ण बात सुनकर ज्ञानव्रत का दिल गुदगुदा उठा और सती साध्वी बहन के प्रति श्रद्धा से उसका मस्तिष्क झुक गया ।

"तो फिर रुपये का प्रबन्ध कैसे होगा जीजी ?" ज्ञानव्रत ने पूछा ।

"होगा क्या ? छः सौ रुपया तो उन्हें हमारा देना ही है। चौदह सौ रुपये में से पाँच सौ मेरे पास हैं । अब रह जाती है नौ सौ रुपये की बात, सो तीन सौ रुपया पिता जी ने रखा हुआ है। बाक़ी छः सौ रुपया तुम अपने ससुर से माँग लाओ। वह

इंकार नहीं करेंगे, पैसे वाले आदमी हैं और मुझे पता है कि एक बार उन्होंने चाचा जी को हज़ारों की रक़म उधार देने के लिए कहा था।" हरकली बोली।

हरकली का सुझाव ज्ञानव्रत की समझ में सोलहों आने आ गया और वह दूसरे ही दिन अपने ससुर के पास यह प्रस्ताव लेकर पहुँच गया।

ससुर महोदय को भी रुपया देने में देर न लगी और ज्ञानव्रत तीसरे ही दिन रुपया लेकर हरकली के पास आ पहुँचा। छः सौ रुपया लेकर हरकली ने उन्हें कई बार गिना और फिर उनमें अपने पाँच सौ मिलाये।

फिर ये दोनों मुंशी चतुर्रसिंह के पास जा पहुँचे। मुंशी चतुर्रसिंह के लिए अपने बच्चों की इस क़ाबिल सलाह पर सहमत न होने का कोई कारण ही नहीं था। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अनुमति ही नहीं दी बरन् दो दिन के अन्दर सब मामला तीन पाँच करके समाप्त कर दिया।

× × × ×

धर्मप्रकाश की आजकल ऐश की छन रही थी। अपने यहाँ जो पैदा होता था वह तो सब था ही उसका और अपने नाना के यहाँ से भी कुछ छीन-झपट लाता था। बड़े भाई साहब भी मदद में कोई क़सर नहीं छोड़ते थे। विशेष रूप से मवेशियों की तो इसके पास कमी रहती ही नहीं थी, क्योंकि रामदयाल के थाने के पास वाले काँजीहौज़ में जो कोई भी अच्छा मवेशी आ जाता था वह कभी रामदयाल के हाथों से निकल कर जा नहीं सकता था। चंद टकों में ही वह अपने किसी आदमी के नाम नीलाम कराके सिरसे को रवाना कर देता था।

इस तरह के मवेशियों को रखना धर्मप्रकाश के लिए एक मुसीबत थी क्योंकि जो मवेशी रामदयाल भेजता था उनको बेचने की उसे आज्ञा नहीं थी। उनके चारे का प्रबन्ध करना धर्मप्रकाश के लिए सर्वदा ही एक समस्या बनी रहती थी।

वह तो उसके भाग्य से उसे अपने नाना का सहारा था। वह बटाई पर खेती कराते थे और अपना कोई मवेशी नहीं रखते थे। एक आध गाय भैंस अपने और धर्मप्रकाश की माँ के खर्च लायक रख छोड़ी थी, इसलिये वहाँ का चारा भी धर्मप्रकाश के मवेशियों के ही काम आ जाता था।

धर्मप्रकाश अपनी बैल-गाड़ी लेकर जब एक दिन सुबह-ही-सुबह अपने नाना के यहाँ से लौटा तो क्या देखता है कि तमाम मकान ख़ाली पड़ा है और एक छप्पर में उसकी माट-मटोलियाँ रखी हुई हैं। घर का सब सामान ध्यानवल और हरकली ने रातों-रात इसलिये यहाँ से उठवा कर सुनारों वाली हवेली में पहुँचा दिया कि कहीं धर्मप्रकाश उसमें से भी हिस्सा न माँगने लगे, क्योंकि सामान तो यह भी सम्मिलित परिवार का ही था।

यह सामान अधिकांश में कुछ नहीं था, वही अग्निदत्त का भेजा हुआ सामान था, जो रेलवे के कारीगर अपने बाबू को प्रसन्न करने के लिए बनाकर तोफ़ों के बतौर दिया था। कुछ लोहे के कील-काँटे थे और कुछ लकड़ी की मेज़-कुर्सियाँ; कुछ आल्मारियाँ और कुछ खाना रखने की ढोलियाँ थीं; कुछ खाट-पीढ़े, कुछ डोल-बाल्टियाँ और इसी तरह का घर गृहस्थी का अल्लम-ग़ल्लम सामान था।

"बहुत खूबी से निकाल लाये सब सामान जीजी! वरना इस पर भी नाहक की सिर फुटव्वल होती। यह मैंने सोच रखा था कि छूने तो मैं धर्मप्रकाश को एक कील भी नहीं देता परन्तु बेफ़ायदा की गाँव में चर्चा तो फैलती।" बड़े विचार के साथ ज्ञानव्रत ने कहा।

"इसीलिये मैंने इस काम को रातों-रात समाप्त कराया क्योंकि इन लोगों की नीचता को मैं भली प्रकार जानती हूँ। जब सब सामान सही सलामती से यहाँ आ गया तब मेरे मन में ज़रा शांति हुई।" हरकली बोली।

"यह तुम्हारा ही काम था जीजी! कि तुमने उस नर्क से

हमें निकाल लिया। वरना तो दिमाग़ सड़ जाता वहाँ हर समय की हुक्के की दुर्गंध से।" ज्ञानव्रत ने नाक चढ़ाते हुए कहा।

इस समय ये बातें हवेली के ऊपर के चौबारे में बैठ कर हो रही थीं जहाँ से उनका कुआँ, उनके खेत और बाग सब साफ़-साफ़ दिखाई देते थे।

एक नज़र ज़रा उधर फेंक कर हरकली बोली, "लो स्वर्ग में बिठला दिया है तुम लोगों को। अब तुम जानो और तुम्हारा काम। तुम्हारा सारा जंगल तुम्हारी नज़रों के सामने है। यदि चाहो तो यहीं बैठ कर अपनी खेती की रखवाली कर सकते हो।"

और फिर अपने पुराने फ़टे मकान की तरफ़ नज़र घुमाते हुए बोली, "यह हमारे बाप-दादों का मकान है। इसी में रह-कर सड़ना चाहिए, मैं इन रूढ़िवादी विचारों को नहीं मानती। अब देखना धर्मप्रकाश के ज़ौहर ज़रा। हुक्का ही नहीं जहाँ हम लोग हवन करते थे वहाँ शराब की बोतलें खुलेंगी, गोश्त की रक़ाबियाँ चाटी जायेंगी, और हड्डियाँ चचोड़ी जायँगी।"

"बस यही तो ज़रा सी कसस रह गई दिल में जीजी! उस मकान को मैं इसीलिए छोड़ना नहीं चाहता था।" ज्ञानव्रत बोला।

"दर्द मेरे दिल में कम नहीं हुआ ज्ञानव्रत उसे छोड़ने और इस तरह धर्मप्रकाश के हवाले कर देने में परन्तु और चारा ही नहीं था इस समय" गम्भीरतापूर्वक हरकली ने कहा।

और वाक़ई उसी दिन उस बैठक में धर्मप्रकाश ने अपनी चौकड़ी के लोगों की दावत की। ठर्रा शराब की ठेके से चार बोतलें मँगाई गई और फिर सबने एक दूसरे की तंदुरुस्ती के लिए अपने जामों को आपस में टकरा-टकरा कर अपने होठों से लगाया।

लीले पहलवान के दो पट्ठों की मस्ती का आज कोई ठिकाना नहीं था। शराब के नशे ने इस चौकड़ी के सदस्यों को आपस में जकड़ दिया। सभी ने धर्मप्रकाश के हाथ पर हाथ

मारकर जीदारी से उसका साथ देने की क़सम ली। सभी ने एक स्वर में कहा, "जमे रहो प्यारे! हम सब देख लेंगे। इन बाबू लोगों की जड़ें हमारे सामने सिरसे में नहीं जम सकतीं।"

इस पार्टी में केवल गाँव के ही उसके साथी शरीक थे। तीन-चार दिन बाद उसने एक दावत पुलिस-थाने के अपने हल्क़े में तैनान सिपाहियों को भी दी और उन्होंने भी धर्मप्रकाश की कमर थपथपाते हुए कहा, "खूब खुलकर खेलो भय्या धर्मप्रकाश! रामदयाल के भाई हो तुम, हमारे भी भाई हो। हममें और अपने में कभी कोई फ़र्क न समझना।"

"आप लोगों के सहारे तो यहाँ आकर बस ही गया हूँ भाई साहब! यह आप लोगों का ही रौब है जो ये ज्ञानव्रत बाबू कन-कटी बिल्ली की तरह सामने घूमते नज़र आते हैं। नहीं तो सच कहता हूँ मुझे नोंच-नोंच कर खा जाते।" कृतज्ञता प्रगट करते हुए धर्मप्रकाश ने कहा।

"इनकी फ़िक्र न करो तुम।" उन्होंने आश्वासन दिया।

"आप लोगों का साया चाहिए सिर पर।" धर्मप्रकाश प्रसन्नता पूर्वक बोला। "फिर मैं किस की चिंता करने लगा हूँ। गाँव के सब दस नम्बरी मेरे साथ हैं।"

धर्मप्रकाश तमाम मकान में इधर-से-उधर तक घूमता फिरा। उसे शक्तिसिंह का वह ज़माना याद आया जब आज की ही तरह उनका इस मकान पर पूरा कब्ज़ा था और वह इसके आँगन में आज की ही तरह खेलता फैलता फिरा करता था।

बैठक में अब ठसके के साथ धर्मप्रकाश का हुक्का जम गया और चबूतरे के एक कोने पर उपलों की आग सुलगने लगी। वही पुराना रंग-ढंग इस घर के वातावरण में आ गया।

: २४ :

मुंशी चतुरसिंह ने जायदाद की तक्सीम अदालत में दायर कर दी। आज दिन तक जो भ्रम था, वह खुलकर सामने आ गया। अग्निदत्त, रामदयाल और अन्य उनके निकट के मित्रों तथा सम्बन्धियों के लिए जो राज़ की बात थी वह स्पष्ट हो गई।

मुंशी चतुरसिंह की ईमानदारी जग-जहान पर रोशन हो गई परन्तु वह अपने मस्तिष्क से अपनी कार्यवाही को न्यायपूर्ण समझ रहे थे, इंसाफ़ मान रहे थे और उनके निकटतम सम्बन्धियों तथा सलाहकारों की भी यही राय थी कि जो कुछ वह कर रहे थे वह न्यायपूर्ण था।

ज्ञानव्रत और हरकली के अतिरिक्त ज्ञानव्रत के ससुर ने भी मुंशी चतुरसिंह के इस कार्य की सराहना की, इसे ठीक ही बतलाया। इनके अलावा उनकी छोटी लड़की के दामाद को भी उनके इस कार्य में कहीं कोई ग़लती दिखाई नहीं दी, वरन् उसने पूर्ण आश्वासन दिया कि वह अपने ससुर तथा सालों का इस महान् कार्य की सफलता में पूर्ण योग देगा।

तक्सीम के अदालती समन अग्निदत्त, रामदयाल और धर्मप्रकाश के पास पहुँचे। एक महीने का समय दिया अदालत ने उज्र पेश करने को।

अग्निदत्त ने निश्चय कर लिया कि वह भाई चतुरसिंह के विरुद्ध अदालत में नहीं जायगा और इसीलिए उसने अपनी तरफ से कोई उज्र पेश नहीं किया। उसने किसी वकील या मुख्त्यार के पास जाना भी उचित नहीं समझा और सोच लिया कि यदि भाई साहब बेईमान हो गये हैं तो वह कभी गाँव में जाने का

नाम नहीं लेगा । जायदाद का बारहवां हिस्सा लेकर वह क्या करेगा ।

परन्तु रामदयाल अवसर पर चूकने वाला नहीं था । चन्द दिन तो उसने देखा कि उसके चाचा जी उस दिशा में क्या करते हैं । परन्तु जब वह मौन ही रहे तो उसने एक सप्ताह की छुट्टी ली और वह सीधा अपने चाचाजी के पास जा पहुँचा ।

उसने उनसे पूछा, "क्या आपकी दृष्टि में यह इंसाफ़ हो रहा है ? क्या ताऊ जी को यही करना चाहिए था ?" वह बहुत गम्भीर था इस प्रश्न को करते समय और इस इरादे से आया था कि चचा को भी वह ताऊ जी के विरुद्ध मुक़दमा लड़ने पर उद्यत कर लेगा ।

"मेरे विचार से यह भारी अन्याय है । तुम्हारे कहने से पूर्व ही मैं अपने विचार भाई साहब पर व्यक्त कर चुका हूँ । मैंने उन्हें लिखा था कि यदि भाई साहब शक्तिसिंह ज़िन्दा होते तो चाहे आप उन्हें हिस्सा देते या न देते, परन्तु आज उनके लड़कों को हिस्सा न देना, दुनिया भर में अपने को बेईमान घोषित करना है। लोग कहेंगे कि भाई के मरने पर उसकी सन्तान को इन लोगों ने दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया ।"

"ताऊ जी ने क्या जवाब दिया इसका ।" रामदयाल ने पूछा ।

"अपने सिर्फ़ इसी क़सूर के लिए कि मैने उनकी कार्यवाही को अन्याय कहा और अदालत में मुद्दई बनकर जाने से इंकार कर दिया, मुझे भी उसी अदालती कटघरे में उन्होंने दाख़िल कर दिया जिसमें तुम खड़े हो । यह जवाब दिया तुम्हारे ताऊ जी ने ।" मुस्कराकर अग्निदत्त बोले ।

यह कह कर अग्निदत्त ने रामदयाल के हाथों में मुंशी चतुर्भुजसिंह के वे पत्र दे दिये जो उनके पास से आये थे और फिर उसके मुँह की तरफ़ देखने लगे कि अब वह क्या कहता है ।

रामदयाल पत्रों को पढ़कर बोला, "तो ठीक है । यदि आप-

के लिखने के बावजूद भी वह बेईमानी पर आमादा हैं तो हमारा ताऊ-भतीजे का और आपका भाई-भाई का नाता समाप्त हो जाता है। अब भविष्य में हम लोगों को अदालत में उनके सामने खड़े होकर इंसाफ़ के लिए लड़ना चाहिए। और इसे मैं कोई लज्जा की बात नहीं समझता।"

"ताऊ-भतीजे और भाई-भाई के नाते यों समाप्त नहीं हो जाते रामदयाल! उनकी, तुम्हारी और मेरी नसों में चौधरी आभाराम का खून बह रहा है। वह खून अभी पानी नहीं हो गया, उसमें सुर्खी बाक़ी है, उसमें गर्मी बाक़ी है।

तुम लाख कहो, परन्तु मैं भाई साहब के सामने अदालत में नहीं जाऊँगा। मुझे शर्म आती है। देखने वाले क्या कहेंगे? बिरादरी वाले क्या कहेंगे? सगे-सम्बन्धी क्या कहेंगे? हमारे परिवार की सभ्यता और उसके बड़प्पन का क्या यही अन्त होना है? क्या भगवान् को यही मंजूर है?" दिल में दर्द लेकर अग्निदत्त ने कहा।

"आपको कोई क्या कहेगा। जो कोई कहेगा वह ताऊ जी को ही तो कहेगा। बेईमानी वह कर रहे हैं, आप नहीं।" गम्भीरतापूर्वक रामदयाल बोला।

"मैं और वह दो नहीं हैं रामदयाल! तुम भूलते हो। दोनों का खून एक है, एक परिवार है दोनों का।" उतनी ही गम्भीरता के साथ अग्निदत्त ने कहा। "तुम अभी परिवार की मान मर्यादा को नहीं समझते। अभी बहुत गर्मी है तुम्हारे रक्त में।"

रामदयाल पाँच दिन सहारनपुर ठहरा और तब कहीं जाकर वह अपनी चाचीजी को इस बात के लिए रज़ामन्द कर सका कि वह चाचाजी को अदालत में एक गवाह के बतौर पेश होने और सही बात कहने के लिए भेज देंगी। उसने स्पष्ट कह दिया, "चाचा जी ताऊ जी के सामने न खड़े हों, मैं खड़ा हूँगा और अपने तथा आपके हक़के लिये जद्दोजहद करूँगा। चाचा

जी केवल गवाह के बतौर अदालत में आयें।"

रामदयाल चलते समय अपने चाचाजी और चाचीजी के चरण छूकर बिदा हुआ। वह चाचाजी से जितनी मदद की आशा करके आया था, वह तो उसे न मिल सकी, परन्तु फिर भी वह बहुत हद तक अपने ध्येय में सफल रहा और लौटते समय वह प्रसन्न था कि उसने मुंशी चतुरसिंह के विरुद्ध एक ज़बरदस्त मोर्चा तैयार कर लिया।

अग्निदत्त चाचा जी इस तरह टूट जायेंगे, इसमें उसे शक था, परन्तु चाचीजी को वह रज़ामन्द कर लेगा, यह विश्वास लेकर ही वह सहारनपुर की तरफ रवाना हुआ था।

रामदयाल दूसरे ही दिन मेरठ पहुँचा और उसने एक वकील के मुहर्रिर को पकड़ा। यह मुहर्रिर कचहरी के काम में दक्ष था और यार भी था रामदयाल का। उसने दो ही दिन में तमाम काम पूरा कर दिया। तक़्सीम का स्टे-आर्डर (कार्य-वाही रुकने का हुक्म) लेकर मुंसिफ़ की अदालत में दीवानी दावा दायर करा दिया।

इस दावे में सरकार से प्रार्थना की गई थी कि रामदयाल और धर्मप्रकाश के साथ उनके ताऊजी बेईमानी करना चाहते हैं। उससे अदालत उनकी रक्षा करे। उनका परिवार एक सम्मिलित परिवार है, जिसके मुखिया उनके ताऊजी हैं। ताऊ-जी बेईमानी से, सम्मिलित परिवार की जायदाद को अपने जाती नाम करके, अब तक्सीम में अपने भाई और भतीजों को उससे महरूम करना चाहते हैं।

इस प्रकार मुंशी चतुरसिंह का तक्सीम का मुक़दमा रुक गया और रामदयाल का दीवानी-मुक़दमा चालू हो गया।

इस प्रकार एक ही महीने में इस परिवार के प्राणियों के दिल और दिमाग़ों पर दो तरह की लहरें दौड़ीं। तक्सीम दायर करके हरकली और ज्ञानव्रत दो चार दिन गाँव के गली मुहल्लों में ख़ूब अकड़े-अकड़े फिरे और दो चार बार उन्होंने धर्मप्रकाश

के मकान के सामने खड़े होकर यह तख़मीना भी लगाया कि किस तरह उस मकान को भी तक्सीम किया जायगा।

बारहवाँ हिस्सा होता ही क्या है। एक किनारे पर एक-एक कोठरी धर्मप्रकाश और अग्निदत्त के लिए छोड़ देंगे। शेष सब मकान पर अदालत उन्हें दख़ल दिला ही देगी। तब देखा जायगा कि यह रामदयाल की गुण्डई क्या काम देती है।

पुलिस को वह अपना माँ-बाप समझता है और उसके नाज़ायज दबाव से हम पर रौब गाँठता चला जा रहा है। अदालत का हुक्म पाकर यह पुलिस ही इसकी कमर पर डंडे लगाकर इसे इस मकान से निकाल बाहर करेगी।

परन्तु ज्योंही तक्सीम की कार्यवाही रुकी और दीवानी मुक़दमे की जड़ें जमीं तो उनके विचारों के नक्शे ही बदल गये जो बातें चन्द दिनों की प्रतीत हो रही थीं वे वर्षों की नजर आने लगीं। अब कुछ ज़रा-ज़रा उनकी समझ में आया कि रामदयाल और धर्मप्रकाश से मकान ख़ाली कराना इतना आसान नहीं है।

और धर्मप्रकाश को भी ज़रा साँस लेने का अवसर मिला। उसने अपनी चौकड़ी में सीना उभार कर कहा, "भाई साहब ने इनका मुक़दमा रुकवा दिया है अदालत में और अपना मुकदमा शुरू कर दिया है। अब देखना है इन महाशय लोगों को ज़रा कि ये कितने पानी में हैं।" परन्तु उसके दिल में अभी भय ही था, क्योंकि काग़ज़ात सब ताऊजी के ही हक़ में थे।

उसी दिन से दोनों फ़रीक़ों, यानी मुंशी चतुरसिंह और रामदयाल की तरफ से मुकदमे की पैरवी में सर गर्मी प्रारम्भ हो गई। अपने-अपने पक्ष को दोनों मजबूत बनाने के लिए सबूत तलाश करने लगे और अपने ख़ास रिश्तेदारों के पास अदालत में अपने पक्ष की गवाहियाँ दिलाने के लिए चक्कर लगाने लगे।

अग्निदत्त एक तरफ शाँति के साथ बैठा हुआ यह तमाशा देख रहा था और मन में समझ चुका था कि यदि रामदयाल

को अदालत में कामयाबी मिली तो उसका हिस्सा एक से लाख तक बड़े भाई साहब हज्म नहीं कर सकते। उनकी दिली हम-दर्दी इस समय रामदयाल के साथ थी।

ज्ञानव्रत और हरकली की तेज़ी को मानो इस दीवानी दावे ने एक ब्रेक सा लगा दिया। जिस तीव्र गति के साथ वे हवा पर उड़े जा रहे थे, उसके बहाव में कुछ कमी आ गई। परन्तु इस कमी को उन लोगों ने अपने हाव-भावों पर विजय नहीं पाने दिया। उनके रहन-सहन, तर्ज़ों-अमल में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आया और वे अन्दर-ही-अन्दर अपने मुकदमे की मज़बूती पर विचार करने लगे। अदालत में रामदयाल के दाँत खट्टे करने की तरफ ही इस समय उनकी सारी शक्ति लग गई।

"अब हम लोगों के सामने मुक़दमे की मजबूती के लिये गवाहों की आवश्यकता होगी।" हरकली ने आज गम्भीरतापूर्वक ज्ञानव्रत से कहा।

"अवश्य जीजी ! अब हम लोगों को मक़दमे की पैरवी में कुछ उठा नहीं रखना चाहिये। चाहे जितना भी रुपया खर्च क्यों न हो जाय, और चाहे जितनी भी सिफ़ारिशें लाकर खड़ी क्यों न करनी पड़ें, परन्तु यह मुक़दमा नहीं हारना चाहिये। यदि यह मुक़दमा हार गये तो समझ लो कि बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा, आर हमारी आबरू मिट्टी में मिल जायगी।"

"इसमें क्या शक है भय्या ज्ञानव्रत ! मुक़दमा हारकर तो हम लोगों के लिए गाँव में मुँह दिखलाना भी कठिन हो जायगा।" बहुत ही गम्भीरतापूर्वक हरकली बोली। "रामदयाल हमारा मज़ाक करेगा और हमें वह सहन करना होगा।"

ज्ञानव्रत अपनी खोपड़ी खुजलाता हुआ नई खरीदी हुई सुनारों वाली हवेली में ऊपर के चौबारे के अन्दर इधर-से-उधर घूम रहा था। हरकली आराम क़ुर्सी पर इस क़रीने के साथ बैठी थी कि मानो किसी ने एक छोटी सी पुटलिया बाँध कर

कुर्सी के बीच में टिकादी हो।

ज्ञानव्रत के हाथों की बार-बार क्रोध से मुठ्ठियाँ बँध जाती थीं और दाँतों को किटकिटा कर वह बड़बड़ाता सा खड़ा हो कर, फिर उसी तेज़ी से घूमना प्रारम्भ कर देता था। वह अचानक हरकली के सामने रुक कर बोला, "जीजी ! एक बात समझ में आई और उससे तुम देखोगी कि मैं इस मुक़दमे का पासा ही पलट दूँगा।"

हरकली ने देखा कि अकस्मात एकदम उसके भाई का चिंताग्रस्त मुख-मण्डल गुलाब के समान खिल उठा और उसकी मुस्कराहट में वह आनन्द का अनुभव करती हुई बोली, "तुमने अवश्य कोई पते की बात खोज़ निकाली है ज्ञानव्रत ! नहीं तो तुम्हारे मुख पर इतनी प्रसन्नता के आसार नुमाया नहीं हो सकते थे।"

"बस कमाल हो जायगा जीजी ! मैं परसों दिल्ली में बुआ जी के लड़के हरचरन से बात-चीत कर रहा था। उसका काम अब अच्छा-खासा चल निकला है। चाँदनी चौक में जो दूकान उसने डाली थी उससे अच्छी-खासी आमदनी होने लगी है। क्या कहने हैं उस दूकान के। अगर पिताजी ने अपना रुपया भाई भतीजों में बरबाद न करके जमा किया होता तो आज मैं ही उस दूकान का मालिक होता। परन्तु……"

"परन्तु इससे हमारे मुकदमे का क्या मतलब !" हरकली बीच में ही ज्ञानव्रत की बात को काटती हुई बोली, "उन्हें अच्छी आमदनी होने लगी है तो क्या वह उस आमदनी को हमें देने के लिए आते हैं ?"

"आमदनी देने-लेने की बात नहीं है इस समय ! इस समय तो केवल मुकदमे को मज़बूत करने की बात है। पिछली बार जब मैं अपनी ससुराल गया था तो वहाँ मेरे ससुर ने अपनी एक भाँजी के रिश्ते के विषय में बातचीत की थी। यदि वह रिश्ता हरचरन से करा दिया जाय तो हरचरन और फ़ूफ़ाजी हमारे

एहसान से दब जायँगे।"

हरकली अब बात की गहराई तक पहुँची और एकदम उभर कर बोली, "तुमने खूब दूर की सोची भय्या ज्ञानव्रत! बस कमाल कर दिया तुमने। तुम भी क्या समुद्र के मोती निकाल कर लाते हो। इतनी गहरी बात तो मेरी समझ में भी नहीं आई थी।

फ़फाजी की गवाही हमारे मुकदमे में बहुत वज़नी पड़ेगी।"

और ज्ञानव्रत ने तालमेल लगाकर यह रिश्ता अपने ससुर से सम्पन्न करा दिया। भाँजी की शादी उसके ससुर को ही करनी थी, इसलिए अधिक कठिनाई का सामना भी न करना पड़ा। ज्ञानव्रत का ससुर इन दिनों ज्ञानव्रत के बहुत प्रभाव में था और ज्ञानव्रत से क़ाबिल आदमी कोई दूसरा उसकी दृष्टि में नहीं था।

मुक़दमा अदालत के सामने पेश हुआ और ज्ञानव्रत के फ़फा जी ने गवाही में कहा, "यह सब जमीन मुंशी चतुरसिंह की ख़रीदी हुई है। पुरानी ज़मीन तो इनके पास थी ही नहीं।"

मुंसिफ को हंसी आई काग़ज़ात पर दृष्टि डालते हुए। क्योंकि उनके सामने जो काग़ज़ात मौजूद थे उनमें नई खरीदी हुई ज़मीन एक खूड़ भी नहीं थी, सब की सब जद्दी जायदाद थी। और उसी के बटवारे का यह मुकदमा था।

"क्या बेहूदा बकवास करते हो?" अदालत ने डपटते हुए कहा।

इसके पश्चात मुंशी चतुरसिंह और अग्निदत्त के मामाजी का बयान हुआ और उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया, "चतुरसिंह अपने भाई-भतीजों के साथ सरासर बेईमानी कर रहा है। ज़मीन सब जद्दी है। इसकी खरीदी हुई नहीं है। अदालत को इंसाफ करके सबका हिस्सा बराबर-बराबर बाँटना चाहिए।"

अग्निदत्त भी अदालत में गवाह के बतौर पेश हुआ और उसने वह सब क़िस्सा बयान किया कि जिस तरह साहुकार का

रुपया अदा किया गया था। वह काग़ज़ स्वयं मुंशी चतुरसिंह ने अदालत के सामने रखा जिस पर खत्री को दी गई रक़में दर्ज थीं।

अदालत ने वह काग़ज़ देखा तो कुल रक़म का तीन बटा चार भाग उसमें अग्निदत्त के नाम में दर्ज था।

मुंसिफ़ ने वह कर्ज़े का दस्तावेज देखते ही मुंशी चतुरसिंह को अपने दिल में नाइंसाफ़ और बेईमान मानकर व्यंग्य के साथ पूछा, "क्यों मुंशीजी ! इस काग़ज़ में जो रक़में अग्निदत्त के नाम से दर्ज हैं इनके बारे में आप क्या कहते हैं? क्या यह रुपया अग्निदत्त ने नहीं दिया ?"

कुछ ठिठक कर मुंशी चतुरसिंह अपने वकील साहब के रटाये हुए बयान को मन-ही-मन दुहरा कर सूखे हलक़ को ज़रा थूक से तर करते हुए बोले, "यह रुपया मैं अग्निदत्त को दे आया करता था और यह वहाँ जाकर अपने नाम से जमा करा देता था।"

मुंसिफ़ ने फिर उस पुराने काग़ज़ पर दृष्टि डाली तो देखा कि जब वह काग़ज़ लिखा गया था तो उस समय भी अग्निदत्त और शक्तिसिंह के उस पर हस्ताक्षर थे। उन्हें देखकर चौंकते हुए मुंसिफ़ ने अपने से कहा, "अच्छा ! तो यह बात उस दिन भी आपके दिमाग़ में थी।" और फिर मुंशी चतुरसिंह की तरफ गम्भीर दृष्टि से देखते हुए बोले, "काग़ज़ी काम तो आप का बहुत पक्का है मुंशी जी !"

मुंशी चतुरसिंह न समझ सके मुंसिफ़ के व्यंग्यपूर्ण स्वर को और उनकी मुस्कराहट में प्रसन्नता की झलक का अनुभव करते हुए ज़रा गर्व के साथ बोले, "हाँ हुज़ूर ! जब यह काग़ज़ लिखा गया था तब भी अग्निदत्त और शक्तिसिंह ने इस पर अपने हस्ताक्षर किये थे। इन लोगों की लाइल्मी में मैंने कभी कुछ नहीं किया। हमेशा जो कुछ किया है साफ़-साफ़ और सबको जतलाकर ही किया है।"

अदालत का यह रुख़ देखकर रामदयाल, धर्मप्रकाश और अग्निदत्त के मुँह फ़क्क पड़ गये और उन्हें एक क्षण के लिए दिखलाई दिया कि बस अब मामला मुंशी चतुर्रसिंह के हक़ में होगा ।

"जिस समय आपने अग्निदत्त और शक्तिसिंह के हस्ताक्षर कराये थे उस समय ये लोग बालिग़ थे या नाबालिग़ ?" मुंसिफ़ साहब ज़रा आँखों से चश्मा उतार कर आँखें मिचमिचाते हुए बोले ।

इस प्रश्न का करना था कि मानो मुंशी चतुर्रसिंह को किसी भारी वज़न ने ऊपर से दबा दिया । वह अपने को सँभाल कर बोले, "थे तो हुज़ूर नाबालिग़ ही परन्तु……"

"परन्तु वरन्तु मैं कुछ नहीं पूछता," मुंसिफ ने डपटते हुए कहा, "बस रहने दीजिये मुंशी जी ! आपकी बुजुर्गी का ख्याल करके छोड़े देता हूँ, वरना तो जेल जाने का काम किया है आपने ।"

मुंसिफ़ के ये शब्द मुक़दमे की गहराई को समझने के लिए काफ़ी थे । आज जब मुंशी चतुर्रसिंह, ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और ज्ञानव्रत के ससुर अदालत से निकले तो उनके चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थीं और मुँह फ़क्क पड़ गये थे । एक शब्द भी किसी की ज़बान से नहीं निकल रहा था, मानो सभी बेज़बान थे ।

रामदयाल के फ़रीक़ की आज बाँछें खिली हुई थीं । अदालत से बाहर निकलते ही रामदयाल ने मुंशी चतुर्रसिंह को चिढ़ाने के लिए उनके सामने अपने चाचा अग्निदत्त के पैर छूते हुए गम्भीर मुद्रा बनाकर आँखों में आँसू लाते हुए कहा, "चाचा जी ! आप ही हैं अब पिता जी की जगह हमारे सिर पर । अगर आप न आते तो मुक़दमे की यह सूरत न बनती ।"

अग्निदत्त भी मन में अपने आने की अहमियत को समझ रहे थे । अन्दर से गर्व अनुभव करते हुए बोले, "रामदयाल !

मैंने जो कुछ भी किया है वह न तो बड़े भाई साहब की मुख़ालफ़त करने के लिए किया है और न ही तुम्हें ग़लत मदद करने के लिए किया है। मैंने यह सब इंसाफ के लिए किया है और मैं आज भी चाहता हूँ कि किसी तरह यदि आपसी फ़ैसला हो जाय तो वही अच्छा है। हरकली और ज्ञानव्रत ने भाई साहब को ग़लत रास्ते पर डाल दिया है। भगवान् उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करे।"

इस समय गाँव के तथा रिश्तेदार भी सब वहाँ इकट्ठे थे। अग्निदत्त की नेकनीयती देखकर सभी पर असर हुआ परन्तु मुंशी चतुरसिंह ने इस बन्धु-द्रोही अग्निदत्त का मुँह देखना भी पसन्द नहीं किया।

अग्निदत्त शराबी, कबाबी, अय्याश, बदमाश रामदयाल की मदद कर रहा था मुक़दमे में, फिर उससे भला मुंशी चतुरसिंह जैसे कर्मकाण्डी, सत्यार्थप्रकाश का पाठ करने वाले, नित्य संध्या-हवन, सत्संग करने वाले; प्याज, शराब और मांस खाना तो दूर रहा उनकी तरफ़ देखने को भी पाप समझने वाले धर्मात्मा का क्या मेल हो सकता था।

रामदयाल ने धर्मप्रकाश को एक दस रुपये का नोट देते हुए कहा, "इन गाँव के लुच्चों का दो ठर्रा की बोतल लेकर मुँह काला कर देना। मैं अब गाँव नहीं जाऊँगा। कल तक का रोज़नामचा खाली पड़ा होगा। उसे जाकर पूरा करना है।"

और फिर उसके कंधों पर अपने दोनों हाथों को रखकर झंझोड़ते हुए बोलो, "ज़रा ताक़त ला बदन में। क्या लालों की तरह से फ़लता जा रहा है। यह तोंद निकालना मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं है। लीले पहलवान के दोनों पट्ठे ठीक काम कर रहे हैं न! उनसे कह देना कि कोई डरने की आवश्यकता नहीं है किसी से। हरकली, उसकी माँ, ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत में से कोई भी यदि सामने पड़े तो सीधा गंडासा लेकर सामने जाना। मारना नहीं, परन्तु रौब में कमी न आने देना, उनके नाम मैंने

दस नम्बरियों में से काट दिये हैं, यह उनसे कह देना।"

रामदयाल मन-ही-मन अपने चचा के बयान की अहमियत को समझ रहा था और वह इस समय कृतज्ञ भी था उनका, परन्तु अन्दर से यह जानता था कि यदि उन्होंने उसके पक्ष में बयान दिया है तो यह चचा के अपने भी पक्ष में उतना ही जाता है। वह कचहरी से अग्निदत्त चाचा के साथ स्टेशन तक गया और उसने स्पष्ट कह दिया, "चाचा जी! यह मुक़दमा तो चल ही रहा है। परन्तु अगर कोई फ़ैसले की बात आयेगी तो मैं पीछे नहीं हटूँगा।"

अग्निदत्त रात्रि की गाड़ी से सहारनपुर के लिए रवाना हो गये रामदयाल भी अपनी नौकरी पर चला गया।

: २५ :

ज़मीन का तक्सीम होना और ज्ञानव्रत के एक लम्बे-चौड़े इरादे का पूरा होना, दोनों ही बातें लम्बी पड़ गईं। दीवानी का मुक़दमा ज्ञानव्रत ने किसी से सुना कि दोनों ही फ़रीकों को दीवाना बना देता है। दीवानगी के आसार ज्ञानव्रत को इस मुक़दमे के अन्दर दिखाई देने प्रारम्भ हो गये और अब वह यह भी समझने लगा था कि मामला इतना जल्दी समाप्त होने वाला नहीं है।

इस मुक़दमे ने उसके विचारों के फैलाव में एक उलझन पैदा करदी। लम्बे-चौड़े फ़ार्म की खेती का नक्शा बदलता नज़र आने लगा। दस हिस्सों के स्थान पर तीन हिस्सों में जायदाद बँट सकती है, इस ओर भी उसका ध्यान गया। जो नया बाग़ उसने लगाया था उसके आधे हिस्से पर धर्मप्रकाश का दख़ल हो जाने से वह उजड़ गया। उसके अंदर सिंचाई के लिए जो नया कुआ उसने बनवाया था, वह भी पिछली बरसात में उसके नीचे का गोला ठीक न बैठने के कारण ख़राब हो गया।

ज्ञानव्रत अब और अधिक अपनी ज़िंदगी का अमूल्य समय इन बेकार की बातों में नष्ट नहीं कर सकता था। सब उलझनें उसके विचार से उसके पिता जी की पैदा की हुई थीं। इसलिए वे ही इन्हें सुलझाने के ज़िम्मेदार थे।

ज्ञानव्रत का दिमाग़ इस समय चारों दिशाओं में कस्तूरिया हिरन के समान चौकड़ियाँ भर रहा था। कभी वह दिल्ली में चाँदनी चौक के अन्दर कोई ज़बरदस्त दूकान डालना चाहता था, तो कभी अफ्रीका जाकर सोने-चाँदी की खान तालाश कर लेने

पर उतारू हो जाता था। चाँदनी-चौक में दूकान डालने के लिए उसके पास पैसा नहीं था।

उसके पिता जी इतना भी पैसा आज तक जमा नहीं कर सके, इस बात को लेकर उसके दिमाग़ में तरह-तरह की झुँझलाहट पैदा होती थी। परन्तु गज़बूरी थी, काबू तो इस पर कुछ था ही नहीं उसका। पिताजी पर झुँझलाने से रुपया नहीं बढ़ सकता था।

अन्त में ज्ञानव्रत ने बावजूद सबके मना करने के भी अफ्रीका जाने का निश्चय किया और एक दो सूट भी सिलवाये। एक फ़ेल्ट हेट ख़रीदा और जूता भी ज़रा बढ़िया मोल लिया। छोटे क़द का, छरहरा सा यह हल्की मूछों वाला अपटूडेट बाबू तैयार हो गया विदेश जाने के लिए क्योंकि इस देश में उसके विशाल मंसूबे पूरे नहीं हो सकते थे।

कुल ज़मीन के दस हिस्से पा जाने में उसे शक होने लगा था और दिल्ली चाँदनी चौक में भी दूकान डालना उसके लिये कठिन था। इनके बाद अब तीसरा रास्ता सोने-चाँदी की खान खोज निकालना ही था उसके मस्तिष्क में।

घर के आदमियों के पास कोई तरीका नहीं था इस बुलंद इरादे के ज़बरदस्त पैसे की हविस वाले नौजवान को हिन्दुस्तान में रोकने का। वह जा रहा था परदेश और उसकी स्त्री एक ओर किवाड़ों की आड़ में खड़ी आँसू बहा रही थी।

उसकी माता जी की आँखों से तो आज सुबह से ही आँसुओं की धारा बन्द नहीं हुई थी। हरकली का मन भी भारी था परन्तु उसने वीर भग्नि के रूप में ही अपने को प्रदर्शित किया। आशीर्वाद दिया छोटे भाई को, "भगवान् तुम्हारी मनोकामनाओं को पूर्ण करे भय्या! तुम अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल हो और विदेश जाकर खूब धन कमाओ।"

मुंशी चतुर्रसिह एक ओर खड़े अपनी परवशता पर आँसू बहा रहे थे। अन्दर-ही-अन्दर उनका मन कह रहा था, "बेटा!

यह सब मेरी ही मूर्खता का परिणाम है कि आज तुम मेरी आँखों के सामने से चले जा रहे हो। अगर मैं भाई-भतीजों में न फँसकर सिर्फ़ अपनी चौक-चाँदनी के मिले रुपयों को ही जोड़ता रहता तो एक अच्छी-ख़ासी रक़म मेरे पास होती। और वह मैं तुम्हें कार-बार करने को दे देता तो आज तुम परदेश न जाते।"

ज्ञानव्रत विदेश चला गया। यह सूचना जब रामदयाल को धर्मप्रकाश ने पत्र द्वारा भेजी तो उसका हाथ अनायास ही अपनी लम्बी-लम्बी मूँछों पर गया और संतोष की साँस लेते हुए बोला, "चलो एक बला तो टली। अब धर्मप्रकाश की तरफ़ से जो हर समय खटका बना रहता है, वह कम हो गया। ध्यानव्रत और धर्मप्रकाश आपस में निबटते रहेंगे।"

गाँव में आजकल ध्यानव्रत भी अपने को तीसमारख़ाँ समझता था। चौधरी था वह गाँव का। आधी से ज्यादा जायदाद इसके कब्ज़े में थी और अब वह कोरा आर्यसमाजी महाशयजी मात्र नहीं रह गया था। वह अपने हल्के के काँग्रेसी क्षेत्र में भी क़दम रखने लगा था। उसी के सहारे ज़िले के काँग्रेसी क्षेत्र में भी उसने कुछ मेल-जोल बढ़ाया।

उसके पिताजी के एक आर्यसमाजी मित्र संयुक्त प्रदेश की एसेम्बली के सदस्य बन गये थे। उनका नाम भी वह इधर-उधर मित्र-मण्डली में रौब छाँटने के लिए ले लेता था। सिरसे के आस-पास जब वह जाता तो गाँधी आश्रमों की दूकानों पर घंटा-दो-घंटा राजनीति की बातें भी फटकारता था, अपने बड़े भाई साहब के विदेश जाने की भी बात करता था। चर्खा-संघ के जो कार्यकर्त्ता इधर गाँव में आते थे उनकी अपनी बैठक पर आवभगत करता था। कभी-कभी खाना भी खिलाता था। इस प्रकार काँग्रेसी क्षेत्र में वह अपनी पैठ पैदा कर रहा था।

खेती का प्रबन्ध उसने मेहनत और तिकड़म दोनों के साथ किया था। खेती को सरकार की ओर से मिलने वाली हर

मदद की तरफ़ उसकी दृष्टि रहती थी । सोसायटी से बीज और खाद की जो सहायता मिलती थी उसका सर्व प्रथम ध्यानव्रत ने ही सिरसे में उपयोग किया और वहाँ के सेक्रेटरी से याराना कर लिया ।

ध्यानव्रत ने अपने घर के मामलों में, हरकली और ज्ञानव्रत की आज्ञा का पालन करने में, चाहे जो कुछ झूठ बोला हो और वैसी कुछ बान पड़ जाने से चाहे अन्य गाँव के मामलों में भी वह राजनीति के बतौर झूठ बोल लेता हो, परन्तु जहाँ तक उसका खेती का क्षेत्र था उसकी नीयत बेईमानी की नहीं रहती थी । वह गर्व के साथ हरकली जीजी से कहता था, "जीजी ! धर्मप्रकाश की नीयत खराब है । तभी तो इसके खेतों में भगवान् पैदावार नहीं देता। दुनिया भर के खेतों में से यह न्यार कटवाता फिरता है और अपने नाना के यहाँ से गाड़ियों पर-गाड़ियाँ भर कर अन्न और न्यार लाता है, पर इस पर भी इसका पूरा नहीं पड़ता । खेती में मेहनत तो होती नहीं चोरी-चकोरी पर नीयत रहती है ।"

हरकली प्यार से अपने छोटे भाई को आर्शीवाद देकर कहती "भय्या ध्यानव्रत ! नेकनीयती से अपनी ही कमाई में भगवान् बरकत देता है। खान्दानियों ने हमें लूटने और बरबाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, परन्तु जिसके सिर पर भगवान् का साया है, उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। ये बराबर में धर्मप्रकाश के खेत खड़े हैं, इन्हें देखलो और ये तुम्हारे खेत खड़े हैं, इन्हें देख लो । क्या लीजो-दीजो है दोनों में । यह सब भगवान् का ही प्रताप है ।"

मुंशी चतुर्रसिंह के परिवार का अभी तक भगवान् में अथाह विश्वास बना हुआ था क्योंकि उन्हें इस पदवी, शोहरत और सम्पन्नता तक भगवान् की ही कृपा ने पहुँचाया था ।

मुंशी चतुर्रसिंह अपनी नौकरी के अंतिम दिनों में बदलकर फिर मेरठ में आ गये । केवल एक वर्ष बाक़ी था रिटायर होने

में। हरकली भी इन दिनों मेरठ ही चली गई थी।

आज संध्या को कोठी के सामने बाग़ीचे में मुंशी चतुर्रसिंह और हरकली घूम रहे थे। इस बाग़ीचे में कुछ शीशम, शहतूत, आम, अमरूद और जामुन के पेड़ खड़े थे। इनमें एक शहतूत का पेड़ बहुत बड़ा था। उसकी लकड़ी को देखकर ज़रा तने पर हाथ फेरते हुए हरकली बोली, "पिताजी! यह कट्टा शहतूत का पेड़ यदि कटवा कर बेच दिया जाय तो दस-पन्द्रह रुपये का बिक सकता है।"

"हाँ लकड़ी तो काफी है इसमें।" मुंशी चतुर्रसिंह ने भी ज़रा उसके तने को छूते हुए कहा।

"तो बेच डालिए! यहाँ कौन पूछने वाला है?" हरकली ने कहा।

बात निश्चित हो गई। स्कूल के बग़ल में ही कुछ लकड़ी की टालें थीं। एक टाल वाले को बुलाकर उसे काटने का ठेका दे दिया। पेड़ बारह रुपया आठ आने का बिका।

परन्तु दुर्भाग्यवश, दूसरे दिन जब यह टाल वाला वृक्ष को काट रहा था तो स्कूलों के डिप्टी साहब मुआयने के लिये चले आये और मुंशी जी के किसी मुख़ालिफ़ टीचर ने उनके कानों में यह बात डाल दी।

डिप्टी साहब स्कूल की क्लासों का मुआयना करके मुंशी चतुर्रसिंह तथा अन्य नायब टीचरों के साथ स्कूल की बौंड्री में घूमते-घूमते उसी पेड़ के पास जा पहुँचे जिसे टाल वाला काट रहा था और वहाँ खड़े होकर उन्होंने टाल वाले को अपने पास बुलाकर पूछा, "यह हरा पेड़ तुम किसके हुक्म से काट रहे हो?"

"सरकार के हुक्म से हुज़ूर!" उनके पास खड़े मुंशी चतुर्रसिंह की तरफ संकेत करते हुए उसने कहा।

"आपने काटने की इजाज़त दी है इसे मुंशीजी!" डिप्टी साहब ने मुंशी चतुर्रसिंह की ओर मुख़ातिब होकर पूछा।

"जी हुज़ूर !" मुंशी चतुर्रसिंह ने कहा।

"परन्तु इन सरकारी दरख़्तों को कटवाने की तो आपको आज्ञा नहीं है। आपने ऊपर से इसकी कोई आज्ञा ली, या कोई अर्जी भेजी हुई है इस विषय की।"

"जी नहीं।" मुंशी चतुर्रसिंह ने दबी ज़बान से कहा।

"कितने में बेचा है इस लकड़हारे को यह पेड़ ? रुपया वसूल कर लिया आपने ? और वह सरकारी काग़ज़ात में जमा कर दिया ?" डिप्टी साहब ने पूछा।

"जी नहीं।" और भी शर्मिंदगी के साथ मुंशी चतुर्रसिंह बोले।

"तो आप यह सरकारी रुपया हज़म कर जाना चाहते थे। सरकारी माल हज़म करने के लिये फ़ौलाद का पेट चाहिए मुंशी जी !" डिप्टी साहब ने कड़क कर कहा

इसी ज़रा से हादसे पर मुंशी चतुर्रसिंह को चार्ज-शीट मिल गई और समय से पूर्व ही किसी प्रकार नौकरी से स्तीफ़ा देकर वह अपनी जान छुड़ा सके।

मुंशी चतुर्रसिंह की सुनहरी हेडमास्टरी की यह दर्दनाक समाप्ति हुई, जिसका रंज उनके परिवार पर कितने ही दिन तक काली के समान छाया रहा।

हरकली ने पिताजी को इस वृद्धावस्था में साहस बाँधते हुए कहा, "चिंता न कीजिए पिताजी ! जो भगवान को मंजूर था वह हो गया। जिस भगवान् ने यह संकट दिया है वह इसके निवारण का भी मार्ग सुझायेगा।"

इस प्रकार हरकली ने उस समय अपनी और अपने पिता जी की लोभ-भावना से उत्पन्न इस हानि को आनन्द-कंद भगवान् की इच्छा के सिर आसानी से थोप दिया। और मौन भगवान् ने भी अपने सिर इसे चिपका लेने में कोई आपत्ति प्रकट नहीं की।

मुंशी चतुर्रसिंह की नौकरी समाप्त हो गई। उनके जीवन

का स्वर्ण युग ढलना प्रारम्भ हो गया। उनकी उपयोगिता उनके अपने परिवार तथा उनके बाल-बच्चों की दृष्टि में कम हो गई, परन्तु अभी एक सुनहरी रेखा उनके जीवन में विद्यमान थी और वह थी उनका प्रोविडेण्ट फंड[1], जो कि शिक्षा विभाग से उन्हें मिलना था।

१. वह रकम जो नौकरी छोड़ते समय मिलती है।

: २६ :

मुंशी चतुरसिंह की हेडमास्टरी छूट गई तो कोई बात नहीं, हरकली अपनी मास्टरी में तरक़्क़ी कर रही थी और उसका वेतन भी अब चालीस रुपया माहवार हो गया था। ध्यानव्रत ने खेती का सिलसिल अच्छा-खासा जमा लिया था, परन्तु ये सब मिलकर भी परिवार के खर्च को किसी प्रकार मुश्किल से ही सँभाल पाते थे। दूसरी तरफ़ मुक़दमेबाज़ी चल रही थी और उसमें भी खर्च होता था।

जो रुपया मुंशी चतुरसिंह को प्रोविडेण्ट फंड का मिला वह देकर उन्होंने अपने चचाजाद भाई की ख़रीदी हुई ज़मीन का बाकी रुपया अदा कर दिया और इस प्रकार पूरी जायदाद पर क़ानूनी तरीके से अपने वकील की सलाह के अनुसार अपना नाम चढ़वा लिया। अब उन्हें कोई अंदेशा नहीं था अपने मुकदमा हारने का, क्योंकि दीवानी अदालत काग़ज़ात के खिलाफ नहीं जा सकती थी।

यही आज उनके वकील ने आँखों को मिचमिचाते हुए चश्मा उतार कर कहा, "मुंशी जी! क्या बचपने की बातें कर रहे हैं आप मेरे सामने? यह मुंसिफ बेचारा है ही कितने दिन का और इसे अभी तजुरबा ही क्या है। अदालत में इंसाफ और ग़ैर-इंसाफी को कौन देखता है। यहाँ तो काग़ज़ी सबूत चलता है। उसी पर मुकदमा हारा या जीता जा सकता है। आपके पास काग़ज़ी सबूत की कमी नहीं है। हर काम आप शुरू से ही पुख्ता करके चले हैं।"

कानूनी वकील से अपनी इस दानिशमंदी की प्रशंसा सुनकर

मुंशी जी के दिल की कली अन्दर-ही-अन्दर खिल कर महक उठी और उनके पास बैठा हुआ उनका छोटा लड़का ध्यानव्रत भी दिल-ही-दिल में प्रसन्न हुआ। मुंशी जी बोले, "आप जाने वकील साहब! कमी तो लिखत-पढ़त में मैंने शुरू से ही नहीं आने दी है। हमेशा अपनी मर्ज़ी से लिखाया है और बिला एक हरुफ़ बदले ही भाइयों से हस्ताक्षर कराये हैं।"

"यही तो आपकी कामयाबी का एक बड़ा राज होगा मुंशी जी! यदि आपके भाई लोग शुरू से ही आप पर विश्वास न करते तो ये बेशकीमती काग़ज़ात कभी भी आपके हाथ न पड़ते और वे लोग क़दम-क़दम पर फूंक-फूंक कर पैर रखते।" वकील साहब बोले।

"तो आपके ख़याल से मुक़दमा हमारे पक्ष में जायगा?" जरा ध्यानव्रत ने उभर कर पूछा। क्योंकि जब से ज्ञानव्रत विदेश चला गया था तब से ध्यानव्रत को आगे बढ़ने और घर के मामलात में थोड़ा दख़ल देने का अवसर मिलने लगा था।

"सोलह आने बेटा! सोलह आने। मुक़दमा तुम जीतोगे। तुम्हारे हारने का कोई कारण नहीं है। अदालत को झक मार कर फैसला तुम्हारे हक़ में देना होगा। और कोई चारा ही नहीं है अदालत के पास।" दृढ़ता पूर्वक वकील साहब बोले।

वकील साहब को पूर्ण विश्वास था अपनी कामयाबी का और यदि पूर्ण विश्वास था भी नहीं तो तब भी वह अपने मुअक्किल पर उसकी कमज़ोरी ज़ाहिर करना अपने पेशे की हिमाकत समझते थे!

मुंशी चतुरसिंह जब वकील साहब के पास से लौटते थे तो उन्हें सनद सी मिल जाती थी अपनी कामयाबी की। सीने में बुढ़ापा होने पर भी ज़रा उभार सा आ जाता था और अन्दर-ही-अन्दर अग्निदत्त पर कुढ़कर कहते थे, "बड़ा आया है इंसाफ-पसन्द का बच्चा बनकर। रामदयाल जैसे शराबी-कबाबी गुण्डे की मदद करता है और बनता है ऋषि दयानन्द का चेल।"

और फिर ज़रा भगवान् की तरफ़ मुखातिब होकर कहते, "भगवान बल तुम ही देखने वाले हो इन सब चीज़ों को। कितना पाखण्ड भरा है दुनिया में ? मैं अग्निदत्त को कितना सीधा-सच्चा समझता था और वह निकला अन्दर से कितना काला। मेरे मुकाबले पर आकर अदालत में खड़ा हुआ। इससे बड़ी नीचता वह और क्या कर सकता था ?" इतना कहते हुए उन्होंने अपने कानों की मुलयम लौ को छूकर भगवान् का अनेक बार नाम लिया।

हेडमास्टरी छूट जाने पर भी मुंशी चतुरसिंह ने घर बैठकर अपने बच्चों पर भार बनना पसंद नहीं किया। उन्होंने तीन रुपये माहवार की एक कोठरी स्टेशन-रोड पर मेरठ-शहर में ही किराये पर ले ली और आर्य-समाज-मन्दिर में आर्य-कन्या-पाठशाला की कन्याओं का अध्यापन-कार्य प्रारम्भ कर दिया।

अब मुंशी जी अकेले ही मेरठ में रहते थे। अपना खाना पास में ही एक प्राइवेट बोर्डिंग-हाउस के रसोईखाने में बनवा लेते थे। हेडमास्टरी का वह रौब-दौब और कोठी का रहन-सहन तथा चारसौ लड़कों, टीचरों और चपरासियों पर हुकूमत का समय जाता रहा। अब हर काम उन्हें अपने हाथ से करना होता था। उनकी पत्नी भी गाँव में खेती की देखभाल के लिये चली गई।

मुंशी चतुरसिंह मुक़दमा लड़ रहे थे अपने बाल-बच्चों के लिए। मुकदमे के खर्च का भार वह अपनी ही आमदनी से चला रहे थे, क्योंकि यह बला उन्होंने अपनी ही ग़लती से अपने बच्चों के गलों में फँसाई थी।

मुंशी चतुरसिंह का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। इस बुढ़ापे में भी वह अपनी मूंगरियाँ घुमाते और कसरत करते थे। प्रातः-काल घूमने जाना नहीं छोड़ते थे। परन्तु इन दिनों उनकी खूराक वह नहीं रह गई थी, जो पहले थी। न तो उतना घी ही मिलता था और न दूध। मोल का लेकर शहर में दूध पीना उनकी

वर्तमान आय में असम्भव था। खाना भी घर का न होने के कारण बहुत साधारण किस्म का ही होता था। परन्तु बचपन का घी-दूध हड्डियों की मजबूती में काम दे रहा था।

हरकली और मुंशी जी जो कुछ कमाते थे तथा खेती से जो आता था उस सबसे परिवार का काम चलता था। कोई बचत नहीं थी विशेष परन्तु फिर भी परिवार का काम आराम से चल रहा था। किसी का लेना-देना नहीं था यही एक बड़ी भारी जीत थी।

ध्यानव्रत ने अपना खेती का सिलसिला अच्छा जमा लिया था और जो ज़मीन उसके पास थी उसे उसने खाद वग़ैरह देकर बहुत अच्छा तैयार किया। खूब मेहनत और दिलजमई के साथ उसने खेती की और जब कभी भी उस लहलहाती हुई खेती पर उसकी नजर जाती थी और पास में खड़ी धर्मप्रकाश की खेती को वह देखता था तो अपने पुरुषार्थ पर उसे अभिमान हो उठता था। उसके भुजदण्ड आप-से-आप फड़कने लगते थे।

वह गर्व के साथ अपने पिताजी से कहता था, "इसे कहते हैं खेती पिता जी! ज़रा अपने खेतों पर दृष्टि डालिए और फिर धर्मप्रकाश के खेतों को देखिये। यह ईमानदारी की खेती है और वह छीन-झपट की। अग्निदत्त चाचा जी ने ये खेत हमारे हलों के नीचे से निकलवा कर इन्हें दिला दिये तो क्या, परन्तु यह तो इनसे अपना पेट भी नहीं भर सकता। इन महाशय को तो मैं देखता हूँ कि गाँव की गुण्डा-चौकड़ी में बैठने से ही फ़ुरसत नहीं मिलती। फिर नौकरों से खेती कराते हैं। दीवान जी का भाई ठहरा। हुकूमत घुसी हुई है दिमाग में।"

मुंशी चतुरसिंह अपनी इस दशा में भी बेटे की यह बात सुनकर प्रसन्नता पूर्वक कहते, "मेहनत और ईमानदारी को परमात्मा देखता है बेटा! मेरे दिल पर बड़ा मलाल है कि अग्निदत्त तुम्हारे खेत इन बदमाशों को दिला गया। वरना इस चक्क-के-चक्क पर तुम्हारी ही लहलहाती हुई खेती दिखाई देती

और मुझे इस बुढ़ापे में शहर में रह कर लड़कियाँ न पढ़ानी पड़तीं।"

"इस बात का अफसोस हमारे दिलों में भी कम नहीं है पिता जी ! कि आपको रिटायर होने के बाद भी काम करना पड़ रहा है और हम लोग आपको बिठला कर आपकी सेवा न कर सके। परन्तु इसमें हमारा दोष कितना है यह आप भी भली भाँति जानते हैं।" ध्यानव्रत ज़रा अपना सीना उभार कर उन्हें यह जतलाते हुए कहता, "पिता जी अपनी मूर्खता को भर रहे हो। हमारा क्या कसूर है इसमें ?"

"सब जानता हूँ बेटा ! जानता क्या नहीं हूँ मैं ? सब भाग्य के फेर हैं। बुढ़ापे में मुझे ये दिन देखने नसीब होंगे मुझे मालूम न था। जिन्हें छाती से लगा कर पाला-पोसा, ब्याहा-बरा किया, वे ही आज मेरे सामने मुक़दमा लड़ने को खड़े होंगे और अदालतों में मेरी टाँगें घसीटते फिरेंगे, इसका मुझे स्वप्न में भी पता नहीं था।" एक दर्द दिल में लेकर मुंशी चतुरसिंह बोले।

इस समय हरकली भी अपनी हवेली के ऊपरी चौबारे से उतर कर खरामा-खरामा चलती हुई चार खेत का फासला तै करके अपने कुएँ के पास, जहाँ ध्यानव्रत और उसके पिता जी आपस में बातें कर रहे थे, पहुँच गई।

हरकली को देख कर ध्यानव्रत हाथ जोड़ता हुआ बोला, "नमस्ते जीजी ! आओ आज तुम्हें अपना लुढ़िया आलू का खेत दिखलाता हूँ जिसका बीज मैं विशेष तौर पर लाया हूँ। तमाम गाँव में यह आलू किसी के खेत में भी नहीं मिलेगा।"

हरकली अपने छोटे भाई से यह आदर-सत्कार पाकर अन्दर-ही-अन्दर मग्न हो उठी और अपने पिता जी की तरफ़ मुखातिब होकर बोली, "देखी पिता जी ! आपने ध्यानव्रत की खेती। तमाम गाँव की नज़रें हैं आज इस खेती पर।"

"देख रहा हूँ बेटी ! और दिल से आशीर्वाद दे रहा हूँ तुम लोगों को। तुमने मेरे कन्धों का बोझा हल्का कर दिया। वरना

तो इस बुढ़ापे में परिवार वालों ने तो मुझे कहीं का भी नहीं छोड़ा था।"

हरकली परिवार का नाम आते ही व्यंग्य-पूर्ण दृष्टि से मुस्कराई और बोली, "पिता जी ! वह तो आपका भ्रम मात्र था केवल। कौन किसका सगा-सम्बन्धी है इस जमाने में। दुनिया खुदगर्ज़ी की जगह है। परन्तु हम लोगों को तो तालीम ही ऐसी मिली है कि हममें वे दुनिया के अवगुण आ ही नहीं सकते। आपके संस्कारों की छाया है और महाऋषि दयानन्द का प्रताप है कि हम लोगों के आचरण शुद्ध और पवित्र हैं।"

महाऋषि दयानन्द का नाम आते ही मुंशी चतुरसिंह गद-गद हो उठे और उनके नेत्रों से श्रद्धा के आँसू बह निकले। फिर हृदय की वाणी को होठों से प्रस्फुटित करते हुए बोले, "ईश्वर तू न्यायकारी है। तू कृपानिधान है। तू अन्तर्यामी है तू सब कुछ देखता है। तू ही मेरे बच्चों का सहायक है। तेरी कृपा अपरमपार है।"

मुंशी चतुरसिंह ने फिर कुए पर स्नान किया। उसी के पास एक पत्थर की शिला पर बैठ कर संध्या करने लगे। ध्यानव्रत और हरकली अपनी खेती को देखने के लिए ज़रा आगे बढ़ गये।

ध्यानव्रत में इस समय नई जवानी की उमङ्गें फूट रही थीं। कान तक ऊँची लाठी वह नाप कर अपने साथ में चौबीसों घण्टे रखता था। रात को सोते समय उसे अपनी खाट की पट्टी के पास दरी के नीचे लगा लेता था। नजरें उसकी हर समय पहलवानी के जोश को लेकर सामने फैलती थीं और छाती का उभार भी कभी पीछे को नहीं होता था।

ब्रह्मचर्य की शक्ति उसके टखनों, घुटनों और गट्टों में भरी पड़ी थी। धर्मप्रकाश को वह कीड़े-मकोड़े के समान समझता था, परन्तु उसके बड़े भाई रामदयाल का नाम दिल पर आते ही कुछ घबराहट की लहर सी दौड़ जाती थी। फिर रामदयाल ने जो दो पट्ठे अपने भाई की रक्षा के लिए गाँव में छोड़े हुए थे।

उन्हें देखकर वह अंदर-ही-अंदर काँपने लगता था। ध्यानव्रत सुन चुका था कि वे अपने इलाके में कई खून कर चुके हैं।

हरकली ने आज फिर ध्यानव्रत को समझाते हुए कहा, "भय्या ध्यानव्रत! इन नीच लोगों के मुँह नहीं लगना चाहिए। इन्हें अपनी जान की तो परवाह है नहीं, फिर दूसरे की जान लेने में कै मिनट लगते हैं। इनसे दूर ही रहना अच्छा है। दो चार दिन में अब मुकदमे का फैसला सुनाया जायगा। सब मामला आप ही ठीक हो जायगा। ज़मीन पर अदालती दखल मिल जाने के पश्चात् ये गुण्डे अपने आप यहाँ से रफ़-चक्कर हो जायेंगे और तुम्हारे रास्ते में एक भी कांटा नजर नहीं आयगा।"

"जीजी! मैं तो इन आवारा आदमियों से दूर-दूर बचकर निकलता हूँ। ऐसा मौका ही नहीं आने देता कि उससे तू-तू मैं-मैं की नौबत आ जाये। अभी उस दिन माता जी घास लेकर बाग की तरफ़ से आ रही थीं। रास्ते में पता नहीं उनसे उस पाजी की क्या कहा-सुनी हो गई। मैं यहाँ से दौड़ कर वहाँ पहुँचा और बस खून का घूंट पीकर रह गया। परन्तु मैंने मामला आगे नहीं बढ़ने दिया। माता जी को मैं सीधा घर पर छोड़ आया।"

"तुमने बहुत अच्छा किया ध्यानव्रत! माता जी बेचारी बिना पढ़ी-लिखी हैं। उन्हें क्या पता कि आपसी झंझट-बाजी में किस तरह सुई का फावड़ा बनाया जा सकता है।" हरकली ने ध्यानव्रत की सहनशीलता और तुरत-बुद्धि की दाद देते हुए कहा।

ध्यानव्रत इन दिनों अपने को आस-पास के हल्के का नेता समझता था। गाँधी जी की अहिंसात्मक नीति पर चाहे उसने अन्दर से विश्वास नहीं किया था परन्तु जहाँ अपने विपक्षी को वह अपने से सबल देखता था वहाँ उस नीति का इस्तेमाल वह करने का प्रयत्न करता था। उसने अब दो गाँधी टोपियाँ भी करीने की सिलवा ली थीं और पिलखवे का खद्दर जैसा जचने वाला माढ़े का गेरवाँ दो कुर्ते भी बनवा लिये थे। पायजामे

में धोती से कम खर्च आता है, इसलिए उसने धोती का पहनावा न अपना कर पायजामे को ही अपनी रोज़ाना की वर्दी में शामिल किया।

सर्दियों के लिए एक काले पट्टू की जवाहर-कट-जाकेट भी सिलवाई थी उसने और जब अपनी यह पूरी वर्दी पहनकर वह हरकली के सामने खड़ा होता था तो हरकली एक बार अपने भाई ध्यानव्रत की तरफ़ देखती थी और फिर बैठक में सामने लगे पंडित जवाहर लाल के चित्र पर दृष्टि डालती थी। दोनों में उसे आँख, नाक, कान इत्यादि के ज़रा से फर्क़ के अलावा सिर्फ़ यही फर्क दिखलाई देता था कि पं० जवाहरलाल की खोपड़ी जरा मोटी है और उसके भाई की गोल तथा छोटी। परन्तु यह कुछ विशेष फर्क नहीं था उसकी नजरों में।

हरकली आजकल ध्यानव्रत की कार्य-कुशलता पर लट्टू थी और अब वह उसकी शादी की ताल-मेल के गुनताले लगाने में जुटी हुई थी।

: २७ :

ज्ञानव्रत के ससुर ने अपनी छोटी लड़की को ध्यानव्रत के साथ मिलने-जुलने की पिछली बार जब वह उनके यहाँ आया था, तो पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी। आधुनिक युग की चाहे अन्य किसी दिशा में भी इस परिवार के ऊपर कोई छाप नहीं पड़ी थी, परन्तु इस कार्यवाही में ज्ञानव्रत के ससुर को कोई आपत्ति नहीं हुई। उसे मुंशी चतुरसिंह की वर्तमान हालत का पूरी तरह ज्ञान था और उनकी भविष्य की उन्नति भी उसकी आँखों के सामने थी।

उनकी एक लड़की मुंशी चतुरसिंह के यहाँ रजपटे पर बैठी थी। उसे मालूम था कि जिस दिन से वह ब्याह कर उस घर में गई थी, सब ताला-कुंजी की वही मालकिन थी। इसी रजपटे की आधी हिस्सेदारनी बनाकर वह अपनी छोटी लड़की को भेजने में कोई हानि नहीं समझते थे।

दूसरी तरफ़ हरकली पर जब यह राज़ खुला तो उसने भी इस रिश्ते में कोई आपत्ति नहीं की। अपने मन में ही सब हिसाब-किताब बिठलाकर सोचा, चलो अच्छा ही रहेगा। दोनों बहनें होंगी तो देवरानी और जिठानी के झगड़े भी पैदा नहीं होंगे।

फिर जो सबसे बड़ी बात थी वह यह थी कि पुरानी रिश्तेदारी होने से कोई दिखावट की आवश्यकता नहीं पड़ेगी जो कुछ देना-लेना होगा, वह भी घर में ही रहेगा। सुनारों वाली हवेली के लिए जो रुपया उनसे कर्ज़ लिया था, कम-से-कम वह तो दात-दहेज में पूरा हो ही जायगा।

उधर ज्ञानव्रत के ससुर भी यही सोच रहे थे कि और कुछ नहीं तो व्यर्थ का तूल न बाँध कर केवल आठ-दस आदमियों को ही बारात में बुला लिया जायगा ! दात-दहेज वग़ैरह का जो दिखावा होगा, वह तो होगा ही, परन्तु जो खर्च होता उसे उस पुराने दिये गये रुपये की अदायगी में समझ लिया जायगा।

मुंशी चतुरसिंह को आजकल इन मामलात में पड़ने की आवश्यकता नहीं थी। बच्चे सब काबिल हो चुके थे, तो वह क्यों व्यर्थ अपना दिमाग़ खराब करते। मुंशी चतुरसिंह अपने समधी से भी बहुत प्रसन्न थे क्योंकि वह इनकी हर कार्यवाही को उचित समझ कर उसमें हर प्रकार का योग देते थे।

इस प्रकार जहाँ एक ओर प्रेम-कहानी अंकुरित हो चुकी थी, वहाँ दूसरी ओर आर्थिक तथा गृहस्थ-सम्बन्धी समस्याओं का भी मन्वय होता जा रहा था। और सबसे बड़ी बात थी हरकली जीजी की समझ में आ जाना।

शादी यह इस परिवार में अपने ढंग की निराली ही हुई, जिसमें केवल आठ बाराती थे और परिवार का कोई आदमी भी शामिल नही हुआ। फ़फाजी के उस लड़के को ख़ास तौर पर बुलाया गया था जिसकी शादी ज्ञानव्रत ने अपने ससुर की भाँजी से कराकर अपने फ़फाजी को मुकदमे की गवाही के लिये खरीदा था। दो मुंशी चतुरसिंह के दामाद थे बारात में और बस एक-दो गाँव के अन्य लोग।

इसी बीच में, नहीं बल्कि इससे भी पूर्व, धर्मप्रकाश की भी शादी हुई थी और वह शादी सिरसे में न होकर उसके नाना के गाँव में ही हुई थी। उस शादी में भी परिवार का कोई भी आदमी शामिल नहीं हुआ। बारात वहीं से गई और नाना ने ही पूरी शादी की। रामदयाल भी बारात में इस तरह शामिल हुआ, जिस तरह कोई बाराती आता है।

परिवार का अब यह रूप बिलकुल ही स्पष्ट हो चुका था। चौधरी आभाराम ने जिस इमारत की नींव डाली, उसका

एक भाग तो मुंशी चतुरसिंह के चचा के लड़के ने इनके होश सँभालते ही अलग कर लिया था। उस पुराने मकान के कोने में एक दीवार डालकर उसका घर अलग कर दिया गया था और उसकी जंगल की ज़मीन भी बाँट दी गई थी।

परन्तु वह महाशय अपने हिस्से की जायदाद में और तरक्क़ी न करके उस पर कर्ज ले बैठे। आखिर यह जायदाद भी मुंशी चतुरसिंह को खरीदनी पड़ी, जिसका बाकी रुपया उन्होंने अभी कुछ दिन पूर्व अपने प्रोवीडेण्ट फण्ड की रक़म से अदा किया था।

चौधरी आभाराम की हवेली का इस प्रकार यह अलग हुआ भाग फिर से उस हवेली में आ मिला था, परन्तु उसके अन्दर बसने वाले उनके पड़पोतों और तड़पोतों का उससे कोई सम्बन्ध नहीं रहा था।

यह सब कानून की बातें थीं, परन्तु मुंशी चतुरसिंह का वह चचाजाद भाई और उसका परिवार अभी उसी मकान में आबाद थे। एक खेत उसका मारूसी हो गया था, जिस पर रामदयाल, धर्मप्रकाश और ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत का पूरा-पूरा दाँत था। परन्तु इन लोगों के आपसी झगड़ों के कारण वह उसी पर बना रहा और उसमें खेती करके वह अपने परिवार का पालन-पोषण करता रहा।

मुंशी चतुरसिंह वाली इमारत के रहने वालों की दशा भी अब सम्मिलित परिवार का उपहास मात्र ही था। जहाँ रामदयाल की शादी मुंशी चतुरसिंह ने अपने हाथ से की थी वहाँ ज्ञानव्रत की शादी में झगड़ा खड़ा हुआ और अन्त में ये ध्यानव्रत और धर्मप्रकाश की शादियाँ तो ऐसे हुई कि मानो इनका चौधरी आभाराम के परिवार से कोई सम्बन्ध ही नहीं था।

जब यह सिरसा गाँव आबाद हुआ था तो इसमें एक ही परिवार था। इस परिवार की पाँच पट्टियाँ बनीं और उन पट्टियों में कई सौ परिवारों ने जन्म लिया। कितने सगे भाइयों ने आपसी

बटवारे के साथ जुदा होकर अपना चूल्हा और अपनी तवा-परात लेकर पुराने मकानों में दीवारें खींच लीं। और कितने परिवार आपसी निपटारा न करके अदालती मुहर्रिरों, वकीलों, पटवारियों, गवाहों और इसाफ के मालिक मुंसिफ तथा जजों की भेंट चढ़ गये। कितने मकानों में बटवारे की दीवारें खिचीं और कितने परिवारों के लावल्द होने पर वे दीवारें फिर बिस्मार कर दी गई। इसका एक लम्बा-चौड़ा इतिहास था जो सिरसे के पटल पर उसकी खंडहर इमारतों में आज भी साफ़-साफ़ लिखा हुआ है। कस्बे का हर मकान उसके इतिहास की पुरानी कहानी से बना एक रोचक और शिक्षाप्रद उपन्यास है जिसमें यथार्थ के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

कस्बे के इन परिवारों के मेल और द्वेष भी आपस में चलते हैं और जहाँ पुरानी खलिशें हैं वहाँ नए वाकात भी साथ में नत्थी होकर एक नया अध्याय खोलते जाते हैं। हर परिवार के पेट से एक नया सम्मिलित परिवार निकल रहा है और हर नया परिवार पुराने परिवार के बूढे ढाँचे पर मुस्करा कर कहता है, "समाप्त करो अपने रूढ़िवादी तौर तरीकों को। हमें आगे बढ़ने दो और व्यर्थ के लिए हमारी उन्नति के मार्ग में काहिलों की भीड़ जमा करने का प्रयत्न न करो। हमें नई इमारत बनानी है। हम इस पुरानी बिला हवादार इमारत में अपने को बन्द करके नहीं रह सकते।"

हरकली और ज्ञानव्रत ने भी इस नई इमारत का स्वप्न देखा और उनसे भी पूर्व रामदयाल ने उस ओर कदम बढ़ाया था। परन्तु यह पुरानी जायदाद और सम्मिलित सम्पत्ति की जंजीर उनके गलों में, उनके टखनों में; उनकी बाहों में बुरी तरह पड़ गई। फिर कुछ मोह भी हो गया था उसका क्योंकि उस जंजीर को बेश-कीमती समझते थे। उस सम्पत्ति की जंजीर के चन्द टुकड़े पाने के लिए ही यह मुक़दमेबाज़ी हो रही थी और दूर देश मे पड़ा अग्निदत्त वहाँ से कमाकर और इन पर

लगा कर भी अपनी जंजीर की इन शृङ्खलाओं की रक्षा कर रहा था।

जहाँ एक ओर मुक़दमेबाज़ी का सिलसिला था, वहाँ दूसरी ओर रिश्तेदारों की तरफ़ से आपसी फैसले की बातचीत चल रही थी। रामदयाल फैसले के बीच में खुद न आकर अपने बहनोई के बड़े भाई को रखता था।

कई बार इन फैसला करने वालों ने ज़मीन के कुरे लगाये और बात कुछ ठिकाने पर आती दिखाई दी परन्तु अन्त में आकर नतीजा शून्य पर ही ठहरा। रामदयाल जमीन में तिहाई हिस्सा लेने के लिए ढाई हजार रुपया तक देने को तैयार हो गया परन्तु मुंशी चतुरसिंह की समझ में यह राग नहीं आया।

हरकली ने इस फैसले को ठुकराते हुए अपने पिता जी से कहा, "हम ज़मीन में किसी भी हालत में हिस्सा देने के लिए तैयार नहीं है। रामदयाल और धर्मप्रकाश को तो हिस्सा देने का सवाल ही नहीं उठता। चचा अग्निदत्त को जैसा आपने कहा है, हजार-बारह सौ रुपया धीरे-धीरे लौटा दिया जायगा। जमीन में हिस्सा वह भी नहीं पा सकते।"

मुंशी चतुरसिंह ने जो थोड़ा बहुत अपने को फैसले की राह पर लगाया भी था वह हरकली ने एक ही वाक्य से काट डाला और फ़ैसले की बात रद्द हो गई।

चन्द दिन पश्चात मुंसिफ ने फैसला सुनाया तो मुकदमा रामदयाल ने जीता और मुंशी चतुरसिंह पर उसके खर्चे की की सात सौ रुपये की डिग्री भी अदालत ने मंजूर कर दी।

रामदयाल का मुकदमा जीतना था कि मुंशी चतुरसिंह और हरकली के पैर उखड़ गये। रामदयाल मजबूत होकर सिरसे में आया। इस बार उसके आने का दबदबा और ही था। हरकली तथा ध्यानव्रत कान-पूंछ दबाकर इधर-उधर को निकल जाते थे। उन्हें अपनी हार की शरमिंदगी अन्दर-ही-अन्दर कचोट रही थी।

मुकदमा हारकर मुंशी चतुरसिंह फैसले की तरफ झुके, परन्तु अब रामदयाल फैसले के लिए तैयार नहीं था। फैसले की बात तो सब क़ानूनन ही समाप्त हो चुकी थी। अदालत ने परिवार को सम्मिलित परिवार घोषित करके तीनों फ़रीकों का हिस्सा बराबर मंजूर कर लिया।

"धर्मप्रकाश ध्यान रखना कि इस बार ध्यानव्रत का पैर उठकर घर में न जाना पाये। मुहर्रिर से मिलकर और डिग्री इजरा करा कर र कुर्क करा लेना।" रामदयाल ने कहा।

"बहुत अच्छा भाई साहब!" धर्मप्रकाश ने गर्दन झुकाये-झुकाये कहा। आज उसके दिल में भी साहस और उमंग के लड्डू फूट रहे थे और उस दिन के लात घूंसों की चसक तथा अपमान का दर्द अब कम होता जा रहा था जिस दिन वह रामदयाल के साथ सिरसे में आया था और घेर के अन्दर खोर पर बैलों को बाँधने के मामले पर उसकी पिटाई हुई थी।

धर्मप्रकाश ज़रा कुछ रुककर त्यौरी चढ़ाता हुआ बोला, "एक दाना भी इन लोगों के घर में नहीं पड़ने दूंगा भाई साहब! ये लोग मेरे साथ जो-जो कुछ यहाँ करते हैं वह सब खून का घूंट पीकर बरदाश्त करता हूँ मैं। हरकली तो आपको 'गुण्डा' के अलावा कुछ कहना ही पसन्द नहीं करती।"

"गुण्डा" रामदयाल ने कहा और वह ज़रा मुस्कराकर मूंछों पर ताव देता हुआ बोला, "कोई बात नहीं धर्मप्रकाश! आखिर हमारी बहन ही तो है। कहने दो जो कहती।"

रामदयाल दो दिन की छुट्टी लेकर आया था। संध्या की गाड़ी से चला गया। इस बार उसके साथ स्टेशन तक जाने वाले वे कई लोग थे जिनके घर सिपाहियों की रात को आवाज़ें पड़ती थीं। वे लोग नम्बरी बदमाशों की लिस्ट में पुलिस ने दर्ज किए हुए थे।

रामदयाल ने इनसे वायदा किया कि अब की बार आने पर वह थाने में जायगा और उनके नाम पुलिस के रजिस्टर

में कटवा देगा।

साथ ही उन लोगों ने भी जी-जान से मदद करने का वायदा किया और पीछे धर्मप्रकाश का बाल भी बाँका न होने देने की कसमें खाईं।

रामदयाल का सितारा बुलन्दी पर देखकर मुंशी चतुरसिंह का चचाजाद भाई भी, जिसकी जायदाद को मुंशी जी ने खरीद लिया था, उसके साथ स्टेशन तक पहुँचाने गया और कहा, "रामदयाल ज़रा मेरा भी ख़याल रखना! भाई साहब ने मुझे कहीं का भी नहीं छोड़ा। उनका विश्वास करके, जैसा उन्होंने कहा, मैंने काग़ज़ों पर दस्तखत कर दिये। मुझे क्या पता था कि वे दस्तख़त करने के बाद मेरा ज़मीन, घर और जायदाद से कोई सरोकार ही नहीं रहेगा।" सब कुछ जानते हुए चालाकी से कहा।

"आपके साथ ताऊजी ने बड़ी बेईमानी की है चचा!" केवल एक ही वाक्य में रामदयाल ने चचा के दिल की मक्कारी को पढ़ते हुए ऊपर से कहा साथ ही आश्वासन दिया कि वह उनका हर तरह मददगार रहेगा। परन्तु चचा को भी अठारह बीघे खेत का लगान ध्यानव्रत को न देकर उन्हें देना चाहिए।

और चचा यह बात मंजूर करके वहाँ से लौटे। इनके आपसी झगड़े में चचा भी जिधर की बाजी भारी देखते थे उधर को ही झुकते थे।

: २८ :

मुंशी चतुरसिंह मुक़दमा हार गये तो उन्हें लगा कि मानो रामदयाल ने उन्हें स्वर्ग की उस पगडंडी पर से जिस पर कि वह अपनी स्त्री और अपने बाल बच्चों के छोटे से नये परिवार को लिए बुलन्दी की तरफ़ जा रहे थे, टाँग पकड़ कर अपने बराबर में घसीटते हुए कहा, 'ज़रा ठहरिये तो ताऊ जी ! हम लोग भी उन्हीं चौधरी आभाराम के परिवार से सम्बन्ध रखते हैं जिससे आप। फिर आप पंजों के बल चलें और हम एडियाँ घसीटें, भला यह कैसे होगा ?'

मुंशी चतुरसिंह को क्रोध आ गया रामदयाल के इन शब्दों पर। वह क्रोध में बुड़बुड़ाते हुए बोले, 'कमीने ! तू मुझे ताऊ जी कह कर पुकारने का हक़दार नहीं है। तूने परिवार को कलंक लगाया है। तू शराब पीता है, मांस खाता है। तेरी सोहबत में गुण्डे लोग बैठते हैं। तू उनका सरदार है।..... तू ही क्या ? अब तो अदालत भी लुच्चों और गुण्डों का ही साथ देती है। मैंने अपनी ज़िन्दगी भर की कमाई से जो जायदाद पैदा की, उसे अदालत ने बिला हिसाब-किताब तीनों फरीकों में बराबर-बराबर बाँटने का हुक्म सुना दिया। यह अन्याय नहीं तो क्या है ?'

'यह अन्याय नहीं, इंसाफ है ताऊजी ! यह जायदाद हमारे पूर्वजों की थी, आपने खरीदा नहीं है इसे। आपने बचाया है इसे और यह आपको घर का मुखिया होने के नाते करना ही चाहिए था। फर्ज़ अदा किया है आपने अपना कोई अहसान नहीं किया हम पर।

आपने कमाया और इसमें दिया तो फिर आपने तालीम भी तो घर के ही पैसे से पाई। हमारे वालिद खेती कराते थे और जो पैदा होता था उसे आप बेचते थे। वह रुपया कहाँ जाता था।' रामदयाल ने मुस्करा कर पूछा।

'मैं तेरे मुँह नहीं लगना चाहता। मेरा हिसाब लेने वाला तू कौन पैदा हुआ है ?' मुंशी चतुर्रसिंह क्रोध में बोले।

'वालिद ने आपकी गुलामी की, इसीलिए मरते समय आपने उनका इलाज कराना भी उचित नहीं समझा। मैं अगर गुलामी करूँगा तो मेरा भी वही हश्र होगा। परन्तु ताऊजी ! मैं वालिद के जैसी मूर्खता नहीं कर सकता। मैं अपने हिस्से का एक-एक खूड आपकी दाढ़ के नीचे से निकाल कर दम लूँगा।' और इतना कहकर रामदयाल फिर व्यंग्य-पूर्ण हँसी में हँसा।

मुंशी चतुर्रसिंह अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ रहे थे। कलेजा तंदूर की तरह दहक रहा था, परन्तु अन्दर की तपिश को बाहर निकालने का रास्ता उन्हें दिखाई नहीं दे रहा था।

मुंशी चतुर्रसिंह ये सब बातें स्वप्न में रामदयाल से कर रहे थे। यों आमने-सामने पड़कर रामदयाल से बातें करना वह पसंद नहीं करते थे, परन्तु जब स्वप्न में रामदयाल मुस्कराता हुआ अपनी जीत का खुमार ताऊजी पर उतारने चला आया तो उनसे भी भागते न बना।

गाँव के मुल्ला ने अजान दी तो मुंशी जी की आँखें खुलीं। वह उठकर पलंग से खड़े हो गये और बैठक का दरवाज़ा खोल कर बाहर के कच्चे चबूतरे पर नीम के नीचे आ गये। सुबह हो गई थी।

मुंशी जी ने अपना घुटनों तक का खद्दर का अंगोछा बाँधा हुआ था। बदन पर बनियान था। यज्ञोपवीत कान पर कई अलबेटों के साथ चढ़ाया और एक लोटा पानी लेकर जंगल की तरफ़ शौच इत्यादि से निवृत्त होने के लिए निकल गये।

कुए पर जाकर देखा तो धर्मप्रकाश की हरट चल रही थी।

धर्मप्रकाश की हरट देखकर दिल पर ज़रा ठेस लगी। उनके विचार से धर्मप्रकाश और रामदयाल दो काँटेदार वृक्ष थे, जो उनकी ज़मीन में उग आये थे। उन्हें काट फेंकने और अपनी ज़मीन को साफ़ करने के लिए मुंशी जी ने माल की अदालत-में तक्सीम की अर्ज़ी दी थी।

परन्तु दुर्भाग्यवश वह काँटेदार वृक्ष इतना कड़ा निकला कि उसे काट डालने के लिए जो उन्होंने कुल्हाड़ी का वार किया वह कुल्हाड़ी उसके सख्त तने से टकरा कर गट्टा खा गई और उल्टी उनके माथे में आ लगी। इस पीड़ा ने आजकल मुंशी चतुर्रसिंह को बेचैन बना रखा था।

× × × ×

अग्निदत्त को जब यह सूचना मिली कि अदालत ने खान्दान को सम्मिलित ठहरा तो उनकी भी बाँछें खिल गई और आज संध्या को जब वह दफ्तर से लौटे तो उनकी स्त्री ने देखा कि उनके चेहरे पर एक आभा थी, मुस्कराहट थी और वह अपने मन की बात को अपनी स्त्री पर प्रकट करने के लिए उद्विग्न हो रहे थे।

कोट उतार कर उसकी जेब से रामदयाल का पत्र निकाला और चश्मा आँखों पर चढ़ाते हुए बोले, "लो देख लो देवी ! भगवान् का न्याय कैसा अटल है। आदमी के करने से कुछ नहीं बनता। होता वही है जो परमात्मा को मंजूर होता है।"

"आखिर बात क्या है ?" प्रसन्नतापूर्वक बाबू अग्निदत्त के हाथों से कोट सँभालते हुए उनसे सटकर उनकी स्त्री ने पूछा।

"बात क्या है, वही बात है पुरानी। रामदयाल का खत आया है। भाई साहब मुकदमा हार गये और अब मेरा हिस्सा भी उन्हें देना ही होगा। उसे हज्म कर जाना अब उनके बूते की बात नहीं रही। यदि सहूलियत से मेरा हिस्सा वह नहीं देंगे तो मुझे भी रामदयाल का ही रास्ता अपनाना होगा।" बाबू अग्निदत्त बोले।

"मेरे जी को तो, सच जानो, आज शांति मिली है।" बाबू अग्निदत्त की स्त्री ने कहा "जेठ जी ने जैसा हमारे साथ किया, उसका फल उन्हें भगवान् ने दे दिया।" प्रसन्नतापूर्वक बाबू अग्निदत्त की स्त्री बोली।

यह अवसर बाबू अग्निदत्त ने हाथ से नहीं जाने दिया और गर्म लोहे पर चोट लगाने के लिए एक दिन मठारते हुए वह मुंशी चतुर्रसिंह के पास जा पहुँचे। कुछ झिझक थी उनके मन में, क्योंकि अभी तक कभी सामने पड़कर उन्होंने बड़े भाई से कोई बातें नहीं की थीं। परन्तु इस बार उनके अन्दर उनकी स्त्री द्वारा खूब सख्ती के साथ हवा भरी गई थी और कह दिया गया था कि यदि इस बार उन्होंने साहस से काम नहीं लिया तो फिर सिरसे में पैर रखना असम्भव हो जायगा।

और अग्निदत्त भी कसम लेकर चले थे कि इस बार, चाहे जो भी क्यों न हो, भाई साहब से खूब खुल कर बातें होंगी।

बाबू अग्निदत्त का अब सिरसे में जाना उसी प्रकार था जिस प्रकार कोई बाहर गाँव का आदमी किसी गाँव में आता है। धर्मप्रकाश चाचाजी कह कर ज़रा सहूलियत के साथ बोला, परन्तु मुंशी चतुर्रसिंह की हवेली पर तो उन्हें देखते ही घर के हर आदमी पर मुर्दनी सी छा गई।

मुंशी चतुर्रसिंह बैठक में बैठे 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ रहे थे। बाबू अग्निदत्त ने सकुचाते हुए आगे बढ़ कर उन्हें प्रणाम किया मुंशी चतुर्रसिंह ने पुस्तक में से ध्यान हटाकर देखा तो अग्निदत्त खड़ा था सामने। वह व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोले, "ओह बाबू साहब पधारे हैं। ग़लती हुई जो मैं खड़ा नहीं हो गया आपके सामने।"

बाबू अग्निदत्त पर भाई साहब के इस व्यंग्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह सामने से एक मूढ़ा खिसका कर उस पर बैठ गये। फिर धीरे से बोले, "अब आपका मेरी ज़मीन के हिस्से के बारे में क्या क्या विचार है? क्या मुझे भी आप रामदयाल की तरह अदालत में जाने की सलाह देते हैं?"

"आपके बारे में क्या ख़याल होगा ?" अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ कर मुंशी चतुर्रसिंह बोले। "मैं क्या किसी के साथ बेईमानी करना चाहता हूँ। मैंने तो ज्ञानव्रत को तुम्हारे बारे में पहले ही कह दिया था कि अग्निदत्त ने जो रुपया दिया है, वह उसे मिल जाना चाहिए। मेरा लड़का मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। वह शक्तिसिंह का बेटा नहीं है जो……" कहते-कहते मुंशी चतुर्रसिंह का गला रुँध गया। उनके शब्दों को मानो पाला मार गया।

"तो ज्ञानव्रत मुझे मुकदमा जीतकर रुपया अदा करता और ज़मीन सब आपने अपने बाल-बच्चों की ही है। मैं तो आपके विचार से लावल्द ही जा रहे हैं।" उसी सरलता के साथ बाबू अग्निदत्त ने कहा।

अग्निदत्त की बात मुंशी चतुर्रसिंह के कलेजे को चीरती चली गई, परन्तु समय की कमज़ोरी को देखते हुए वह बोले एक शब्द भी नहीं।

उनका मन कह रहा था कि अब तो यह भी अपना हिस्सा क़ानूनन अलग करा लेगा, तो फिर नाहक झुँझलाने और बात बिगाड़ने से क्या लाभ ?

बाबू अग्निदत्त को इस बार सिरसे से मुंशी चतुर्रसिंह ने हाँ-हूँ करके ही बिदा कर दिया। वह जानते थे कि यह नौकरी-पेशा आदमी एक दिन नहीं तो दो दिन ठहरेगा। इसलिए इसे क्यों न कुछ ऐसे जवाबों में ही लटका कर झोटा दे दिया जाय कि जिन पर यह झूलता ही रहे।

इन्हीं झोटों से मुंशी चतुर्रसिंह ने बाबू अग्निदत्त को कई वर्ष तक टलकाया, परन्तु अब अग्निदत्त भी पीछे ही पड़ गये थे। मामला उनका मजबूत था और किसी तरह भी क़ानूनन उसे उसके हक़ से बरतरफ नहीं किया जा सकता था।

इस दौरान में सिरसे की ज़मीन पर ध्यानव्रत और धर्मप्रकाश पूरी तरह काबिज हो चुके थे। प्रारम्भ में रामदयाल को बाबू

अग्निदत्त की आवश्यकता थी, परन्तु वह आवश्यकता धीरे-धीरे समाप्त हो गई और आज तो उसके दिल में वे पुरानी बातें ताजा थीं जब बाबू अग्निदत्त ने ज्ञानव्रत की शादी में आकर उसके रचे हुए तमाम जाल को काट डाला था।

उसकी चाची जी के हाथों मुँह दिखाई में ज्ञानव्रत की स्त्री को दी जाने वाली माला का एक-एक दाना उसके कलेजे पर फफोले की तरह उभर रहा था और उसका बदला लेने की चाह उसके दिल में हर समय ताज़ा रहती थी।

सम्मिलित परिवार की सब जायदाद इस समय दो फरीकों के पास थी। अग्निदत्त अपनी नौकरी से जब-तब छुट्टी लेकर मुंशी चतुरसिंह के पास जाते और कहते, "भाई साहब! अगर मुझे दुबारा मुकदमा करना पड़ा तो उससे क्या लाभ होगा? व्यर्थ में फिर रुपया बरबाद होगा और हाथ किसी के कुछ नहीं आयगा। इन मुकदमेबाज़ियों से यह ज़मीन बढ़ने वाली नहीं है।"

मुंशी चतुरसिंह इन बातों को सुनते और अन्दर-ही-अन्दर जल-भुनकर कहते, 'कैसा आया है मुझे शिक्षा देने वाला बनकर। चार दिन का बच्चा और मेरे कान काटना चाहता है।' परन्तु ऊपर से अब प्रेम-भाव ही जतलाने का प्रयत्न करते थे।

जब बाबू अग्निदत्त चले जाते तो हरकली दबे पैर बैठक में प्रवेश करती और पूछती, "चले गये चाचा जी?"

"चला जायगा! मुझे क्या पूछना पड़ा था? जिन भतीजों के हक़ में गवाही दी है, वे जानें। मैं तो आ बैठने पर दो चार बातें मामले को ज़रा तूल देने के लिए कर लेता हूँ। वरना तो इस नालायक से मेरी बात करने की भी इच्छा नहीं होती।"

"चचा अग्निदत्त अन्दर और बाहर से एक से ही स्याह निकलेंगे इसका तो मुझे स्वप्न में भी गुमान नहीं था। मैं दावे के साथ कहती हूँ कि यदि चाचा जी रामदयाल का साथ न देते तो

वह हरगिज़-हरगिज़ दीवानी में जाने की ज़ुरत न करता और हम लोगों को इस प्रकार हार, हानि और बदनामी का मुंह न देखना पड़ता।" हरकली ने अपनी छोटी नाक को दो-चार बार चढ़ा-कर मस्तक में सलवटें डालते हुए कहा।

"जबरदस्त स्याह दिल का निकला अग्निदत्त ! परन्तु तुम भी देखना कि मैं भी इसे कितने नाच नचाता हूँ। यह समझ बठा है कि ज़मीन यूं ही आसानी से पा जायगा। रामदयाल मुक़दमा जीत गया, तो जीत जाये, अग्निदत्त तो मुकदमा नहीं जीता है। मुश्तर्का खान्दान की बात भी अब खत्म हो चुकी। अब तो जो जिसके कब्जे में है, वह उसकी रहेगी।" मुंशी जी ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

पिछले दिन मेरठ में मुंशी चतुरसिंह के समधी महोदय ने भी उन्हें यही सलाह दी थी। एक सप्ताह पूर्व उनका छोटा दामाद जब सिरसे आया था तो उसकी भी यही राय थी।

"आपने बिलकुल ठीक सोचा है पिता जी ! चाचाजी को जब तक भी रखा जा सके, झमेले में ही रखना चाहिए। उन्हें किसी बात के लिए मना भी नहीं करना चाहिए और कुछ करने की भी आवश्यकता नहीं है।" हरकली ने चतुराई के साथ कहा।

मुंशी चतुरसिंह हरकली की हर बात से सहमत थे।

हरकली की नीति पर क़दम रखकर मुंशी चतुरसिंह अपने बाल-बच्चों सहित जिस लिफ्ट पर चढ़कर आसमान की सैर करना चाहते थे वह अब उन्हें केवल ही रुकी हुई प्रतीत नहीं होती थी, वरन् उन्हें लग रहा था कि वह बीच की मंजिल से भी नीचे खिसकनी प्रारम्भ हो गई थी।

ध्यानव्रत ने फसल पर मेहनत करके जो अनाज पैदा किया था वह जंगल के खलिहान में पड़ा था और किसी प्रकार अब तक का ख़र्चा हरकली के वेतन से चलाया गया था। मुंशी चतुरसिंह जो मेरठ की आर्य-कन्या पाठशाला में अध्यापन कार्य

कर रहे थे, उनकी वह नौकरी छूट गई थी और इससे उनकी पारिवारिक-आर्थिक-व्यवस्था को जबरदस्त ठेस लगी।

इसी समय दैव ने उन पर दूसरी आपत्ति डाल दी और वह यह कि रामदयाल ने उनका अनाज पैरों में ही कुर्क करा लिया। जो अनाज उनके घर में आकर कोठियों में भर जाता, वह बनिये की दूकान पर पहुँच गया।

मुंशी चतुरसिंह के परिवार की लिफ्ट का वह तख्ता जो आकाश की ओर बढ़ने जा रहा था, एक मंजिल और नीचे खिसक आया। मुंशी जी को लगा कि उनके जीवन का सर्वस्व ही नष्ट हो गया। उन्होंने एकांत में जाकर अपना माथा ठोका।

अपने भाग्य को कोसने के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई चारा हो नहीं था इस समय।

मुंशी चतुरसिंह ने मुंसफ़ी से हारकर जजी में भी अपील की थी, परन्तु दुर्भाग्यवश वहाँ भी उनकी उम्मीदों का, चिराग़ गुल-का-गुल ही रहा, उसमें रोशनी न आ सकी, वह मुकदमा न जीत सके।

अब अनाज की कुर्की कराके रामदयाल एक दबदबे के साथ सिर ऊँचा करके मूंछों पर ताव देता हुआ उनके सामने से निकला और सिर्फ नज़रों-ही-नज़रों में बिला एक शब्द भी मुंह से कहे बोला "आखिर लेकर दिखला दिया न मैंने कुल जायदाद का एक तिहाई हिस्सा। बारहवाँ हिस्सा आप मुझे देना चाहते थे, वह कहाँ है अब आपकी इंसाफ़-पसंदी ?"

मुंशी चतुरसिंह का बड़ा लड़का अफ्रीका गया हुआ था। वहाँ जाकर उसने व्यापार किया और उस व्यापार में रुपया लगा उन महाशय का, जिनकी पूंछ पकड़कर यह अफ्रीका गये थे। मूंगफलियों का व्यापार किया, परन्तु जब विधाता उल्टा पड़ता है तो चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार छा जाता है।

इन दिनों मुंशी चतुरसिंह का विधाता उल्टा पड़ा हुआ था। इसलिए वह जो भी चाल चलते थे उसमें मात ही सामने नज़र आती थी। दुर्भाग्यवश उनकी इस समय हर गोट पिटती

जा रही थी और कहीं भी कामयाबी नज़र नहीं आती थी।

मुंशी चतुरसिंह का अपना पौरुष थकता जा रहा था। बड़ा लड़का विलायत व्यापार करने गया तो उसे भी घाटा आ गया। अपनी पूंजी तो कुछ थी नहीं, दूसरे हिस्सेदार की पूंजी भी नुकसान की भेंट चढ़ गई।

व्यापार में घाटा खाकर ज्ञानव्रत को नौकरी का सहारा लेना पड़ा। नौकरियाँ जो मिलती थीं वे एक मैट्रिक पास तालीम-याफ्ता हेडमास्टर के लड़के और सिरसे के नामी ज़मींदार की पोज़ीशन से छोटी थीं। दिल न चाहते हुए भी ज़रूरत ने ज्ञान-व्रत से वे नौकरियाँ दस-दस पाँच-पाँच दिन कराई, परन्तु उनसे केवल उसके अपने ही खाने-पीने का पोत-पूरा हुआ। उस आमदनी में से बचाकर वह अपने आपत्ति-ग्रस्त सिरसे के परि-वार के लिये कुछ न भेज सका।

इस आपत्ति-काल में मुँशी चतुरसिंह की आर्य-कन्या-पाठ-शाला वाली नौकरी भी छूटी थी, मानो विधाता ने आँखें ही मींच लीं मुँशी चतुरसिंह की तरफ से। ध्यानव्रत की कमाई का अनाज कुर्क हो गया था। अब सारे परिवार की आँखें अपनी अन्न-दात्री हरकली देवी पर ही टिकी हुई थीं। इस समय परि-वार के लिये वही एक तिनके का सहारा थी।

परन्तु थी वह भी मजबूत। अपनी ज़िद की पक्की। एक इंच अपने इरादों से जुम्बिश न खाने वाली। पत्थर की शिला थी वह, जो टूट सकती थी, परन्तु मुड़ना उसने नहीं सीखा था।

किसी ज़माने में जो परिवार पर मुँशी चतुरसिंह का तहत था, वह आज उनकी इस कटी-छटी गृहस्थी पर हरकली का था। अब घर का हर प्राणी उसके संकेत पर नाचता था। यहाँ तक कि मुँशी चतुरसिंह को भी हरकली से अब भय लगने लगा था।

यही तो वह दशा थी परिवार की जिसका स्वप्न हरकली देख रही थी परन्तु दुर्भाग्य यही था कि परिवार की सम्पन्नता और सुख तथा शाँति नष्ट होने पर उसे यह अवसर परमात्मा न दिया।

: २९ :

मुंशी चतुरसिंह ने अपनी गृहस्थी के इस आपत्ति-काल में एक बार फिर साहस से काम लिया और अपनी कर्मठता को ललकारकर वह इस बुढ़ापे में भी नौकरी तालाश करने निकले।

भाग्य से उन्हें फिर अपने मित्र की बदौलत चालीस रुपये महावार की नौकरी मिल गई।

मुँशी चतुरसिंह का कर्मकाण्डी जीवन अब भी उसी प्रकार चल रहा था, परन्तु अब उसमें धीरे-धीरे कुछ शिथिलता आनी प्रारम्भ हो गई थी। नित्य-नियमों में तो कोई विशेष कमी नहीं थी, परन्तु हवन अब वह सप्ताह में केवल एक बार करते थे। रोज़ाना सामग्री और घी का खर्च बर्दाश्त करना उनके लिए कठिन था और हरकली ने भी उन्हें ऐसा ही करने का परामर्श दिया था।

मुँशी चतुरसिंह की भगवत-भक्ति अब कर्मकाण्डी रूप से अंतरयामी रूप की ओर अधिक आकृष्ट होती जा रही थी।

मुंशी चतुरसिंह मुकदमा हार जाने पर कुछ विचार-शून्य से हो गये थे और उन्हें लगता था कि उनकी जीवन भर की कमाई रामदयाल की गहरी खंदक में गिरकर सर्वदा के लिए उनके हाथों से जाती रही। अपने बाल-बच्चों के लिए उन्होंने जो सम्पत्ति एकत्रित की थी, उसे वह उनके हाथों में सौंप न सके और इस प्रकार उन्होंने उन्हें अनाथ-का-अनाथ ही छोड़ दिया।

ऊँचे उठने का जो ख्वाब उन्हें हरकली ने दिखाया था वह हवा का बबूला मात्र बनकर रह गया। अपने बच्चों के लिए वह कुछ भी न कर सके, इसका उनके दिल पर गहरा मलाल

था। रामदयाल जायदाद पा गया सो पा गया परन्तु अग्निदत्त को वह जहाँ तक भी उनसे बन पड़ेगा, सिरसे की तरफ़ नहीं झाँकने देंगे। उनसे जहाँ तक भी होगा वह उसे झमेले में ही रखते रहेंगे।

मुंशी चतुरसिंह की यह नई नौकरी एक बोर्डिंग-हाऊस में वार्डन की नौकरी थी और अचानक उन दिनों अग्निदत्त का लड़का भी उसी बोर्डिंग-हाउस में रहकर मेरठ-कालिज में पढ़ रहा था। अग्निदत्त का लड़का राजू बी० ए० में था और यहाँ उसके रिश्ते के लिए भी बिरादरी के आदमियों ने आना जाना शुरू कर दिया था।

तगा-जाति, जिसका आम पेशा खेती-बाड़ी है, राजू की बिरादरी थी और इस बिरादरी में ज़मीन-जायदाद का होना ही परिवार का बड़प्पन माना जाता है। गो तालीम के इस युग ने पढ़े-लिखे लोगों का भी समाज ने कुछ मूल्यांकन करना प्रारम्भ कर दिया है, परन्तु फिर भी अधिकांश लोग शादी-विवाहों के समय ज़मीन-जायदाद को ही अधिक महत्व देते हैं।

अग्निदत्त के लड़के को जो लोग देखने आते वे साथ ही उसके ताऊ जी से भी मिलते और रिश्ते की बातें करना चाहते। परन्तु मुंशी चतुरसिंह आज अपनी प्रसिद्धि और नाम का सहारा अग्निदत्त के लड़के का रिश्ता होने के लिए करने को तैयार न थे। राजू के रिश्ते के संबंध में जो भी उनसे मिलता था वह स्पष्ट कह देते थे, "लड़का आपने देख लिया। बी० ए० में पढ़ रहा है। परन्तु ज़मीन-जायदाद मुझे खेद है कि मैं इसे नहीं दूंगा। इसके वालिद महाशय ने मेरे साथ जो कुछ भी किया है उसे बस मेरा ही दिल जानता है। ऐसी दशा में आप रिश्ता करना चाहें तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।"

राजू को देखने के लिए आने वाले सहम जाते कि अपनी लड़की को इस रास्ता चलते के हवाले भला वह किस प्रकार करते। जब इसके पास दो खूड ज़मीन भी नहीं है तो खाली

पढ़ाई-लिखाई को लेकर क्या करेंगे। भगवान् कल-कलाँ को न करे कि लड़के को कोई हर्ज-मर्ज हो जाय तो लड़की के लिए तो ज़िन्दगी भर को भूखों मरना हो जायगा। माँ-बाप लड़की को कहाँ तक निभा सकते हैं।

फिर वे लोग राजू से मिलते। वह अपने पास आने वाले हर बज़ुर्ग से आव-भगत के साथ बातें करता। बातें करके उनकी तबियत खुश होती, परन्तु जब ज़मीन-जायदाद का प्रश्न सामने आता तो राजू का खून खौल उठता और वह गर्मी खाकर पूछता, "आप अपनी लड़की का रिश्ता मुझसे करना चाहते हैं या मेरी ज़मीन-जायदाद से। अगर ज़मीन से करना है तो पटवारी के काग़ज़ातों में जाकर टक्कर मारिये मुझे कुछ पता नहीं ताऊजी क्या कहते हैं और पिताजी क्या ? जो ताऊजी ने कहा है वह ठीक है उनके खयाल से, परन्तु मुझे उनकी जायदाद से कोई लगाव नहीं है। मैं पुश्तैनी सम्पत्ति से अपना कोई सम्बन्ध नहीं समझता। मेरा सम्बन्ध केवल मुझसे है।"

अंत में एक दिन वह भी आ गया जब परिवार के इस अंतिम बच्चे के रिश्ते का भी सवाल हल हो गया और यह सवाल अग्निदत्त के लड़के ने स्वयं ही हल कर डाला। अपने रिश्ते का रुपया उसने स्वयं ले लिया और रस्म पूरी करने के लिए अपने भावी ससुर को अपने पिताजी के पास भेजकर एक पत्र लिख दिया, "यह रिश्ता मुझे मंज़ूर है। आप रुपया लेकर बात पक्की कर लें। अधिक सोच विचार की आवश्यकता नहीं है।"

बाबू अग्निदत्त ने अपने लड़के की शादी का रुपया ले लिया, परन्तु वह रुपया इतना भारी था कि उसे वह अपने पास न रख सके।

आज इतने तफ़रकों के पश्चात् भी वह अपने बड़े भाई मुँशी चतुरसिंह की इज़्ज़त कम नहीं करते थे। रुपया लेकर वह सीधे सिरसे पहुँचे और भाई साहब के हाथों में रुपया रखते

हुए बोले, "यह राजू के रिश्ते का रुपया है भाई साहब ! जिस तरह आपने सब बच्चों की शादियाँ की हैं, उसी तरह आपको राजू की भी शादी करनी है।"

मुंशीजी रुपया हाथ में लेकर सहमे से रह गये। उन्होंने समझा कि कहीं शादी का खर्च भी उनके सिर पर न आ पड़े। इसलिए स्पष्टतापूर्वक बोले, "रुपया तो मैंने ले लिया अग्निदत्त ! परन्तु शादी के खर्च का क्या होगा ? मेरे पास तो तुम जानते ही हो, आजकल शादी में लगाने को एक पैसा भी नहीं है। किसी तरह अपनी गृहस्थी का काम चला रहा हूँ।"

"होगा क्या भाई साहब ! शादी आप करेंगे और रुपया मैं दूँगा।" अग्निदत्त ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। "शादी उस ठसके की होगी कि जिससे आपका और आपके परिवार का मान बढ़े।

इसमें मुंशी चतुरसिंह को कोई आपत्ति नहीं थी। उन्होंने हरकली की माताजी को बुलाकर रुपया उनके हाथों में दे दिया। इस समय का वातावरण कुछ ऐसा बन गया था कि मानो परिस्थिति ने पारस्परिक वैमनस्य की भावना में कुछ कमी कर दी हो।

दूसरा प्रश्न अब सामने था कि यह शादी कहाँ पर की जाय। क्या बाबू अग्निदत्त वहीं पर शादी करें जहाँ वह नौकरी करते हैं अथवा शादी सिरसे में हो।

मुंशी चतुरसिंह ने पूछा, "तो फिर शादी कहाँ करने का विचार है तुम्हारा ?"

"जहाँ आप आज्ञा करें।" अग्निदत्त ने छोटे भाई की हैसियत से जवाब दिया।

"शादी की शोभा तो सिरसे में ही है, मेरे ख़याल से।" और फिर उन्होंने हरकली की माता जी की तरफ़ देखते हुए कहा, "क्यों हरकली की माता जी ! तुम्हारा विचार क्या है इस विषय में ?"

"शादी तो सिरसे में ही होनी चाहिए। यही पर शादी करने में हमारे परिवार की इज्जत है।" हरकली की माता जी ने कहा।

"मुझे यहाँ शादी करने में कोई ऐतराज़ नहीं, परन्तु यहाँ शादी किस मकान में की जायगी ? पुराना मकान जिसमें धर्म-प्रकाश रहता है, इस काबिल नहीं है कि उसमें शादी की जा सके। वह बुरी तरह से फ़टा पड़ा है कि उसकी मरम्मत में हज़ारों रुपया लग जायगा।" अग्निदत्त ने कहा।

इस समय दो भाइयों का हृदय मिलकर एक धारा में बह रहा था। दोनों ही परिवार के उस पुराने बंधन में बँधकर बातें कर रहे थे, जिसमें बँधकर इन महारथियों ने पुराने कर्ज़ की दल-दल से इस परिवार को एक दिन बाहर लाकर खड़ा किया था। उसी परिवार की संस्था के नाम की शौहरत और उसके बड़प्पन को आगे बढ़ाने की दिशा में इस समय ये दोनों भाई सोच रहे थे। दोनों का दिल साफ़ था और वहीं खिड़की के सहारे खड़ी हुई हरकली की माता जी को भी कहीं कोई भेद-भाव की बात दिखाई नहीं दे रही थी।

आज हरकली की माताजी के सामने उनका पति और देवर पारस्परिक स्नेह के उसी प्रांगण में बैठे थे, जिसमें उसने एक दिन अपने जवानी-पहरे में उन्हें देखा था। उसी तरह आपस में सलाह-मशवरा करते हुए जिस तरह बाप और बेटे आपस में बातें करते हैं। वही अदब, वही ममता, वही सहयोग और वही प्रेम की भावना दोनों और वर्तमान थी।

मुंशी चतुर्भुजसिंह ने अग्निदत्त के हृदय की भावना को परखा और यह भी जाना कि वाक़ई राजू की बहू उस फूटे हुए पुराने खंडहर में नहीं उतरनी चाहिए।

बिरादरी के एक बड़े घराने की लड़की हमारे परिवार की इज्ज़त के बारे में भला क्या ख़याल लेकर जायगी। वह उभर कर बोले, "राजू की शादी उस फूटे-हुए मकान में नहीं होगी

अग्निदत्त ! राजू की शादी इसी हवेली में होगी। राजू की बहू इसी हवेली में आकर उतरेगी।"

बाबू अग्निदत्त का चित्त प्रसन्न हो गया अपने भाई की सहृदयता पर। वह भाई साहब के इस समय के सहयोग की इज्ज़त मन में लेकर सिरसे से अपनी नौकरी पर चले गये और उन्होंने राजू के विवाह के निमंत्रण-पत्र इत्यादि छपा कर सब रिश्तेदारों के पास भेज दिये।

हर बात निश्चित हो चुकी थी।

बाबू अग्निदत्त के सिरसे से प्रस्थान करने के दूसरे ही दिन हरकली नौकरी से सिरसे आई। वह पहले से ही इस चाँस-बाँस में लगी थी कि देखें दोनों भाइयों की राजू की शादी के विषय में क्या बातें होती हैं। हरकली अपने चचा अग्निदत्त को चुप-बदमाश समझती थी। बड़ा ही ख़तरनाक था यह चचा उसकी नज़रों में और उसके डंक (साँप-बिच्छू इत्यादि की भाँति) से वह अपने पिताजी की हर समय हिफ़ाजत करने में लगी हुई थी।

हरकली ने वे सब बातें सुनीं जो मुंशी चतुरसिंह और बाबू अग्निदत्त के बीच में तै हुई थीं, और उन्हें सुनकर वह एकदम झल्लाती हुई अपने पिताजी के पास जाकर बोली, "पिताजी ! आपने तो बस हद ही कर दी सादगी में चाचा जी जब आते हैं अपना जाल आप पर फैला जाते हैं और आपको मूर्ख बना जाते हैं।"

मुंशी चतुरसिंह हक्के-बक्के रह गये हरकली की बात सुनकर और उनके दिमाग़ पर परिवार की शानोशौकत का जो नक्शा था उसे हरकली ने उतार कर उनमें सामने चीर-चीर करते हुए कहा, "अब यह नहीं है आपका परिवार। ये वे जोकें हैं जिन्होंने आज तक आपका खून चूंस-चूंस कर अपने को फुलाया है और आपकी आज बुढ़ापे में यह दशा कर दी है कि जिन्दगी भर कमाने के बाद भी चैन की दो रोटियाँ नसीब नहीं होतीं।"

मुंशी चतुरसिंह की अक़्ल अभी तक हरकली के विचारों की बुलन्दी को नहीं छू पाई थी।

हरकली अपने पिताजी के सामने मूढ़े पर जम कर बैठ गई और फिर गम्भीर मुद्रा बनाकर बोली, "आप जानते हैं यह चाचा ने कौन सी चाल चली है ?"

मुंशी चतुरसिंह को अपने दिमाग़ से अभी तक कहीं पर भी अग्निदत्त की कोई चाल दिखाई नहीं दे रही थी। उन्होंने सरल भाव से पूछा, "अग्निदत्त की चाल ?"

"जी हां आपके भाई बाबू अग्निदत्त की चाल; और वह गहरी चाल कि जिस पर आपका क़दम पड़ते ही वह आपको इस हवेली से बाहर निकाल कर फेंक दें।" गम्भीरतापूर्वक हरकली ने कहा।

"हवेली से बाहर ! यह क्या कह रही हो हरकली तुम ? आखिर वह मुझे इस हवेली से बाहर निकाल कर कैसे फेंक देगा ? हवेली की रजिस्ट्री मैंने पुख्ता तरीके से ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के नाम में कराई है। इसमें……"

"यह बात कुछ नहीं है पिताजी !" बीच में ही हरकली बोल उठी। "चाचाजी इस मकान में राजू की शादी करके इस मकान पर अपना कब्ज़ा साबित करना चाहते हैं। आप नहीं जानते, अदालती दाव-पेचों में ऐसी बातें सबूत बन जाती हैं।"

बात बहुत गम्भीर थी। मुंशी चतुरसिंह ने सोचा कि वाक़ई वह अग्निदत्त की इस गहरी चाल को नहीं पकड़ सके और धन्य है उस परमात्मा को कि जिसने उन्हें हरकली जैसी बुद्धिमान लड़की दी कि जिसकी विचारशील बुद्धि ने अग्निदत्त की चालाकी को जड़ से ही पकड़ लिया।

मुंशी चतुरसिंह हँस पड़े हरकली के सामने और अपनी अग्निदत्त से की गई बातों को स्वप्न की बातें समझ कर बोले, "हुई तो वाकई गलती ही मुझसे, परन्तु अब किया क्या जाय हरकली ?"

हरकली अपनी तुरत बुद्धि से बोली, "इसमें कठिनाई ही क्या है ? उन्हें साफ लिख दीजिए कि गाँव भर में अफ़वाह फैल गई है कि तुम राजू की शादी के बहाने मेरी हवेली पर कब्ज़ा साबित करना चाहते हो ।"

और इसी मजमून का एक पत्र मुंशी चतुरसिंह ने अग्निदत्त को लिख दिया । अग्निदत्त ने यह पत्र पढ़ा तो उनके पैरों के नीचे से ज़मीन निकल गई । वह ज़रा घबराये कि अब क्या होगा ? राजू की शादी वह सिरसे में करने का निश्चय ही नहीं कर चुके थे, वरन् नाते रिश्तेदारों और मित्रों को शादी के निमन्त्रण-पत्र भी भेज चुके थे। उधर भाई साहब ने बहाना बनाकर अपने मकान पर शादी करने देने से साफ इंकार कर दिया

बाबू अग्निदत्त के दिल पर गहरी चोट लगी भाई साहब के इस व्यवहार से। परन्तु बाबू अग्निदत्त साहसी व्यक्ति थे और वह इस मुसीबत से परेशान नहीं हुए । तुरन्त ही अपने विचारों का संतुलन ठीक करके सोचा कि चलो भाई साहब से अब एक चुटखी ही ली जाय । वह समझ चुके थे कि यह सब दुर्घटना हरकली के परामर्श का फल है ।

बाबू अग्निदत्त ने भाई साहब के पत्र के उत्तर में लिखा "आपको शक है कि कहीं मैं राजू की शादी के बहाने से आपके हवेली पर कब्जा न करलूँ। गाँव की अफवाह को आप जाने दीजिये, वह तो किसी समय कैसी और किसी समय कैसी होती ही रहती है । अपने इस अंदेशे को दूर करने के लिये यदि आप चाहें तो मुझसे पाँच-सात दिन का किरायेनामा लिख लें। मकान पर दखल लेने की मेरी नियत नहीं है तो मुझे फिर किरायेनामा लिखने में क्या उज़र हो सकता है ?"

यह पत्र बाबू अग्निदत्त ने भाई साहब का मन टटोलने के के लिए लिखा था, हवेली का किरायेनामा लिखने के लिये नहीं ।

और सचमुच ही मुंशी चतुरसिंह का उन्हें पाँचवें दिन पत्र

मिला, "यह तुमने बहुत ठीक सोचा अग्निदत्त ! तुम किरायेनामा लिखकर हवेली में शादी कर सकते हो । इसमें मुझे और मेरे बच्चों को कोई आपत्ति नहीं ।"

बाबू अग्निदत्त इस समय अपने लड़के की शादी करने जा रहे थे, इसलिए पत्र के मज़मून को कुनैन मिक्सचर का घूँट समझ कर पी गये और होठों की मुस्कराहट को नहीं जाने दिया। परन्तु दिल में सोच लिया, "अब इस हवेली में भी यदि कभी दाखिल हूँगा तो इसे अपनी बनाकर ही हूँगा, वरना इसके अन्दर पैर नहीं रखूंगा ।"

शादी सिरसे में होगी ही, यह वह निश्चित कर चुके थे। सिरसे में उनका कोई नहीं है, इसका भी अंदाज अब उनके दिमाग में था। दिल से उन्होंने महसूस किया कि उन्होंने सिरसे में शादी करके एक बड़ी भूल की।

संध्या को उनके एक मित्र ने यही तो कहा था उनसे, "बाबू अग्निदत्त ! आपने गाँव में शादी करने का जो निश्चय किया है यह बड़ी भारी भूल की है । मैं भी आफत का मारा भाई-भतीजों के कहने-सुनने में आकर लड़के की शादी करने गाँव चला गया था । वहाँ जाकर जो मेरी हजामत उन लोगों ने बनाई। वह बस मैं ही जानता हूँ । जिस काम को भी उन लोगों ने हाथों में लिया एक-एक के पाँच-पाँच खर्च कराये और उनकी नियत में यही रहा कि किसी तरह मेरी नाक कट जाये तो वे बैठ कर तमाशा देखें और गाँव वालों के बीच चौकड़ी जमाकर मेरी खिल्लियाँ उड़ायें।

उन्होंने यह भी कहा, "अगर मैंने शादी यहाँ की होती तो आप सब लोगों के रहते शायद मुझे किसी काम को हाथ लगाने की भी आवश्यकता न होती ।"

परन्तु अब तो जो होना था सो हो चुका था। शादी के निमन्त्रण-पत्र सब जगह जा चुके थे और बारात जाने का भी केवल एक ही सप्ताह शेष था। बाबू अग्निदत्त ने छुट्टी की दर-

खास्त दी तो दुर्भाग्यवश उन्हें छुट्टी भी न मिल सकी।

बाबू अग्निदत्त ने शादी की चीज़-बस्त और कपड़े-लत्तों का सब प्रबन्ध पहले से ही कर लिया था। सिरसे में मेहमान लोगों के आने के दिन करीब आ गए और एक सप्ताह पूर्व अग्निदत्त अपनी स्त्री को लेकर सिरसे को वहाँ से चल पड़े।

अग्निदत्त ने धर्मप्रकाश और मुंशी चतुरसिंह में से किसी को भी अपने आने की सूचना नहीं दी और सीधे जाकर सिरसे से दो मील की दूरी पर लगने वाले रेलवे स्टेशन पर उतर पड़े। यहाँ से गाँव तक जाने के लिए उन्होंने एक बैल-ताँगा किराये पर कर लिया और उसमें अपना सामान लादकर दोनों आदमी सिरसे पहुँच गये।

बाबू अग्निदत्त का बैल-ताँगा हवेली के दरवाजे पर न पहुँच कर अपने उसी कदीमी फूटे मकान पर पहुँचा, जिसमें धर्मप्रकाश अपनी स्त्री और बाल-बच्चों के साथ रह रहा था।

धर्मप्रकाश को बाबू अग्निदत्त के पहुँचने पर, न तो रंज ही हुआ और न कुछ प्रसन्नता ही, परन्तु उसने उनका कोई विरोध नहीं किया।

बाद में पता चला कि मुंशी चतुरसिंह को भी बाबू अग्निदत्त के आज सिरसे में आने की सूचना मिल चुकी थी और इसीलिए हरकली ने आज सुबह से ही बहुओं को ताकीद करदी थी, "आज हवेली की दुबारी का कुन्दा अन्दर से एक मिनट के के लिए भी नहीं खुलना चाहिये। जिस किसी को भी बाहर जाना हो, वह बैठक की खिड़की से ही बाहर निकले। यदि एक बार चाचा जी और चाची जी हवेली में घुस गये, तो बस समझ लेना कि हवेली पर उनका अधिकार हो गया और फिर उन्हें यहाँ से निकालते नहीं बनेगा। अक्लमन्द आदमियों को मर्ज का इलाज मर्ज के होने से पहले ही करना चाहिये।

× × × ×

एक दो दिन तो धर्मप्रकाश और मुंशी चतुरसिंह के घरों में

सन्नाटा रहा और उन लोगों ने देखा कि देखें तो आखिर ये बाबूजी करते क्या हैं सिरसे में जहाँ इनका एक भी जानकार नहीं है। बाबूजी और उनकी स्त्री ने उनसे बातें न करके पहले तो मकान में पीछे की तरफ़ जो एक कोठा ढह गया था उसकी मरम्मत कराई और फिर उसके बाहर की दीवार को लिहसवाना लिपवाना प्रारम्भ कर दिया।

बाबू अग्निदत्त को तो दूसरे ही दिन नौकरी पर लौट जाना पड़ा, क्योंकि छुट्टी नहीं मिली थी, परन्तु उनकी स्त्री ने यहाँ का कार्य इस खूबी के साथ सँभाला कि गाँव और कुनबे के लोग देख कर यह भी न समझ सके कि आखिर ये लोग करना क्या चाहते हैं।

बाबू अग्निदत्त का लड़का भी यहाँ नहीं था, उनकी मदद के लिए। वह मेरठ कालेज में था और बी० ए० की परीक्षाएँ चल रही थीं। वह उस दिन सिरसे में आया जिस दिन उसकी ससुराल के नाई-बामनों को लगन लेकर आये हुए भी दो दिन हो चुके थे।

धीरे-धीरे मुंशी चतुरसिंह की स्त्री, हरकली और उनके बाल-बच्चों ने यहाँ आना-जाना और मोटे-मोटे कामों में हाथ बंटाना तथा रात को जो गीत गाये जाते थे, उनमें भी शामिल होना प्रारम्भ कर दिया। धर्मप्रकाश की स्त्री ने भी अपने चूल्हे पर रोटी बन्द करके एक ही चूल्हा बना लिया। हरकली की माताजी ने भी अब अपनी देवरानी के ही घर पर खाना खाना प्रारम्भ कर दिया और हरकली तथा बच्चों ने भी इसी घर को चन्द दिनों के लिए अपना घर मान लिया।

अग्निदत्त की स्त्री ने जो भी उसके पास आता गया उसको समयोचित आदर दिया और अपने काम में वह जिस किसी का जहाँ तक भी उपयोग कर सकती थी करना प्रारम्भ कर दिया।

राजू अपना बी० ए० का अन्तिम परीक्षा पत्र दे रहा था

और उसके मन में विवाह की प्रसन्नता थी। शादी का नक्शा उसके दिमाग में भी जबरदस्त था। शान-शौकत वह भी चाहता था, परन्तु एक सादगी और संजीदापन भी था उसके दिमाग में

यों शादी के काम में उसने अपने पिताजी का भरसक हाथ बटाया था। मोटरों का प्रबन्ध वह देहली जाकर पहले ही कर आया था। आज लगन के दिन जब वह सिरसे पहुँचा तो उसकी माता जी ने प्यार के साथ उसे मकान की देहलीज पर आकर अपनी कौली में भर लिया।

"ादी का सब प्रबन्ध ठीक है।" उसने माताजी से पूछा।

"सब ठीक है राजू! तू जल्दी से लगन के लिए तैयार हो जा। नाई-बामन कल के आये बैठे हैं।"

"मेरा क्या ठीक होना है माता जी! मैं तो ठीक ठाक हूँ। आप को जो करना है वह कर लीजिए, परन्तु मैं इन फिजूल की हल्दी-वल्दी मलने-मलाने की चीजों में नहीं पड़ूंगा।" राजू ने हँस कर कहा।

"अच्छा-अच्छा! न पड़ना, परन्तु ये कोट-पतलून उतार कर धोती कुर्ता तो पहले।"

और राजू तैयार था कुर्ते-धोती में। लगन की रस्म हुई और समाप्त भी हो गई। गाँव के सभी मिलने वाले लोग घर पर आये और अंत में मिठाई तक्सीम हुई।

गाँव में आमतौर पर इस शुभ अवसर पर गुड़ की भेलियाँ फोड़ कर गुड़ ही तक्सीम किया जाता है परन्तु यह बाबू अग्निदत्त के लड़के की शादी थी। इसमें गुड़ तक्सीम नहीं किया जा सकता था।

धर्मप्रकाश से बाबू अग्निदत्त ने कहा, "बेटा हलवाई को कह दो कि लगन पर तक्सीम करने के लिए एक मन जलेबिया तैयार कर दे।"

धर्मप्रकाश चाचा का हुक्म पाकर वहाँ से तो इस तेजी के साथ चला कि मानो वह बड़ी लगन के साथ चाचाजी का काम

कर रहा है, परन्तु गलिहारे में दो मकानों की ओट होते ही एक चौपाल पर चंद गाँव के आदमियों में हुक्का पीने के लिए बैठ गया।

यहाँ की गप्पों का विषय भी वही था राजू की शादी का। धर्मप्रकाश ने बातों के दौरान में माथा चढ़ाकर कहा, "ऐसा हुक्म चढ़ाते हैं कि जानो हमारे लिए कुछ कर दिया है इन्होंने अपने लड़के की शादी करने आये हैं, तो करें। हम क्या किसी के नौकर हैं बेगार ढोने के लिए ?"

हुक्का पीकर धर्मप्रकाश हलवाई की दूकान पर पहुँचा और वहाँ पड़ी हुई लकड़ी की बेंच पर बैठकर बोला, "लो लाला ज़रा तेज़ी के साथ अब मन भर जलेबियाँ तो उतार डालो। और हाँ, ज़रा मोटी-मोटी उतारना, जिससे बदनामी न हो चाचा की। खास तौर पर यह बात कही है चचा ने।"

"ऐसा ही होगा चौधरी साहब ! अभी तैयार करता हूँ। ठीक वक्त पर जलेबियाँ आपकी बैठक पर पहुँच जायँगी।" हलवाई ने कहा।

मोटी-मोटी जलेबियाँ बनवाने को बाबू अग्निदत्त ने नहीं कहा था। यह काम धर्मप्रकाश ने अपनी मक्कारी से ही किया। ऊपर से तो वह चाचा जी, चाचा-जी करता था परन्तु अन्दर से वह चाचा जी को भी किसी दिन आकर उससे अपना हिस्सा माँगने वाला दुश्मन समझता था। बाबू अग्निदत्त की शान सिरसे में जमे, इसे वह सहन नहीं कर सकता था। उसके दिल में भी एक जलन थी।

धर्मप्रकाश ने एक ओर तो हलवाई को मोटी-मोटी जलेबियाँ बनाने का हुक्म दिया और दूसरी ओर वह फकीरों में को निकलता हुआ उनके दगड़े में खेलने-फिरने वाले बच्चों को कहता गया, "अबे यहाँ क्या अपनी ऐसी-तैसी करा रहे हो ! जाओ वहाँ हमारी बैठक पर मिठाई तक्सीम हो रही है ले आओ !"

इतना चुटखला छोड़कर स्वयं लगन की रस्म में हिस्सा

लेने के लिए वह बैठक पर चाचा जी के पास आ पहुँचा और संजीदगी के साथ बोला, "सब इन्तजाम ठीक कर दिया है चाचा जी ! ठीक समय पर जलेबियाँ यहाँ आ जायेंगी।"

जलेबियाँ ठीक समय पर आई, परन्तु उन्हें देखते ही अग्निदत्त की स्त्री के तन-बदन में आग लग गई। वह तुनक कर बाबू अग्निदत्त से बोली, "तुम्हारे तो सब काम ऐसे ही होते हैं। ये मोटी-मोटी जलेबियाँ बनवाने को किसने कहा था? इन्हें अब किस-किस की नाक पर रक्खोगे?"

तब बाबू अग्निदत्त को धर्मप्रकाश की मक्कारी का भान हुआ और उन्होंने अपनी स्त्री को खामोश हो जाने का संकेत किया।

जलेबियाँ तक्सीम होने के समय तो और भी रौनक आ गई। सब फ़कीरों के बच्चे बैठक के बाहर आकर इकट्ठे हो गये और धर्मप्रकाश ने जलेबियों का थाल अपने हाथ में लेकर जलेबियाँ तक्सीम करनी शुरू कर दीं।

"यह क्या कर रहे हो धर्मप्रकाश!" अग्निदत्त ने थाल उसके हाथों में से लेते हुए कहा। "यहाँ मैं लड़के की शादी करने आया हूँ, कोई खैरातखाना खोलने नहीं आया।" और इतना कह कर उन्होंने अपने चन्द आदमियों को, जो उनके लड़के मित्रों में से थे, मिठाई तक्सीम करने का काम सुपुर्द कर दिया।

मुंशी चतुरसिंह ने जिस दिन बारात जाने वाली थी, उससे पहली रात को अग्निदत्त को सूचना दी कि उनके समधी महोदय ने मेरठ में उनके पास सूचना भेजी थी कि बारात सुबह सात बजे उनके गाँव में पहुँच जानी चाहिए और दोपहर के खाने का प्रबन्ध वहीं पर होगा।

"यह सूचना आप मुझे अब दे रहे हैं भाई साहब! मोटरें कल सुबह आठ बजे आयेंगी। उससे पूर्व तो चलना हो ही नहीं सकता।" बाबू अग्निदत्त ने दुखी मन से कहा।

"हाँ भूल ही गया मैं तो। अब यकायक ध्यान आ गया उस बात का?" ज़रा गम्भीर मुद्रा में मुंशी चतुरसिंह बोले।

परिवार की इस पीढ़ी की अन्तिम शादी में घर का हर आदमी सम्मिलित था, केवल ज्ञानव्रत विदेश गया हुआ था। मनों से सब एक दूसरे से कोसों दूर थे, परन्तु शरीर आकर एक स्थान पर अवश्य एकत्रित हो गये थे।

शादी में बाबू अग्निदत्त ने दो बड़ी लारियाँ और दो मोटर कारें किराये पर की थीं और एक रौब के साथ अपने लड़के की बारात लेकर गए थे। इस बारात की भी उस देहात में एक खूबी थी कि उसमें निन्यानवें प्रतिशत आदमी सुशिक्षित थे; गँवारू बारात नहीं थी।

बाबू अग्निदत्त के मित्र थे बारात में और उनके लड़के के भी साथी थे। इनके अलावा कुछ रिश्तेदार तथा चन्द गाँव-बिरादरी के व्यक्ति थे।

बारात निहायत खूबी के साथ गई और वहाँ का प्रबन्ध भी बहुत अच्छा था। बाबू अग्निदत्त के समधी महोदय अपने इलाके के माने हुए चौधरी थे। उन्होंने जो बारात के खाने का प्रबन्ध किया वह एकदम शहरी किस्म का था। बनावटी घी का प्रयोग नाम-मात्र के लिए भी नहीं था।

शादी का लेन-देन भी ऊँचे-दर्जे का था, जिसे देखकर मुंशी चतुरसिंह को कहना ही पड़ा, "हमारे परिवार के बच्चों की जितनी भी शादियाँ हुई हैं, उनमें यह सबसे अच्छी रही।"

धूम-धाम के साथ शादी होकर आई और बाबू अग्निदत्त की पुत्रवधू उसी पुराने मकान में उतरी जिसकी छतों में बहुत से सूराख थे।

बाबू अग्निदत्त के लड़के की बहू की मुँह-दिखाई की रस्म में मुंशी चतुरसिंह की स्त्री क्या देती है, यह देखना चाहती थी बाबू अग्निदत्त की स्त्री। वह आई और दस रुपये का एक नोट देकर छुट्टी पा ली। बाबू अग्निदत्त की स्त्री ने वह भी मुस्कुराते हुए ही देखा।

चार-पाँच दिन के अन्दर ही उन्होंने बहू को वापस भेज दिया,

क्योंकि सब सामान तो वह सहारनपुर से ही करके लाये थे।

बहू के इतने शीघ्र चले जाने को तमाम गाँव ने आश्चर्य के साथ देखा और गाँव भर पर बाबू अग्निदत्त की छाप बैठ गई।

बहू को बेटे की ससुराल पहुँचाकर ज्यों ही बाबू अग्निदत्त सिरसे लौटे, त्यों ही उन्होंने सिरसे से कूच कर दिया।

चलते समय, वह जो कुछ सामान लाये थे, वह सब भी धर्मप्रकाश को दे दिया और उन्होंने न तो हवेली पर ही कब्ज़ा करने का प्रयत्न किया और न इस टूटे-फूटे घर ही, जिसकी लिपाई-लिहसाई कराके उन्होंने इसे चन्द दिन के बसेरे के काबिल बनाया था।

चलते समय बाबू अग्निदत्त ने स्टेशन तक जाने को बैल-ताँगे के लिए न तो धर्मप्रकाश की ही राह देखी और न मुंशी चतुर्भुसिंह के ही बच्चों का मुँह ताका। उनके मकान के पास ही मियाँ करीमखाँ रहते थे। यह बेचारे एक दो खेत बो लेते थे और जब बुवाई नहीं होती थी तो किराये पर ताँगा जोतते थे।

उन्हीं के ताँगे पर बैठकर एक दिन बाबू अग्निदत्त, उनका लड़का और उनकी स्त्री सिरसे से इस प्रकार चले आये, मानो उनका उस क़स्बे से केवल उतना ही सम्बन्ध था।

उनके चलते समय घर के सभी लोग उनसे मिले। बातचीत के दौरान में बाबू अग्निदत्त ने कहीं पर भी मनोमालिन्य को नहीं आने दिया, मानो जो कुछ भी उनके साथ बर्ताव हुआ, वह उसके ही योग्य थे।

: ३० :

मुंशी चतुरसिंह की यह मेरठ की तीसरी नौकरी भी उनका अधिक दिन साथ न दे सकी । कहाँ एक मिडल स्कूल के वह हैडमास्टर थे, जहाँ लड़कों को भेड़-बकरियों की तरह डंडे के ज़ोर से विद्यार्थी बनाया जाता था और कहाँ फिर आर्य-कन्या पाठशाला में लड़कियों को पढ़ाने का काम संभाला, परन्तु वहाँ कोमलता थी और स्वामी दयानन्द की पुण्य-स्मृति में यह कार्य हो रहा था और कहाँ अब आ फँसे ऐसे बोर्डिंग हाऊस में कि जहाँ कालेज के विद्यार्थी रहते थे । यदि मुंशी चतुरसिंह का वश चलता तो वह मिडिल स्कूल की तरह यहाँ भी 'जय जगदीश हरे' की प्रार्थना और 'संध्या-हवन' विद्यार्थियों को करना अनिवार्य कर देते परन्तु यहाँ उनका यह बस न चल सका । उन्हें यह युवक-समुदाय अपनी धार्मिकता से अलग छिटका हुआ दिखाई दिया और यह देखकर भी उन्हें खेद होता था जो कि विद्यार्थी वहाँ रहते थे उनमें से अधिकांश को कर्मपरायणता छू तक नहीं गई थी ।

इसी बात को लेकर बोर्डिंग के बड़े सुपरिटेण्डेण्ट महोदय से, जो कि एम० ए० होने पर भी सादगी में इनके भी कान काटते थे, मुंशी चतुरसिंह से बातें होतीं, "प्रोफेसर साहब ! जमाना बदलता जा रहा है । इस जमाने के बच्चों के दिलों से ईश्वर की भावना लुप्त होती जा रही है । एक हम लोगों के बच्चे हैं जो संध्या-हवन करते हैं और बलिवैश्य के बिना अन्न ग्रहण नहीं करते और एक ये आपके बोर्डिंग के विद्यार्थी हैं, कि जो ईश्वर को गालियाँ फटकारते हैं।"

प्रोफेसर साहब स्वप्न-से इस प्रकार जागते मानो ट्रिगनोमेट्री का कोई प्रश्न हल करने में ध्यान-मग्न थे और किसी ने अचानक ही बीच में उनका स्वप्न तोड़ दिया। प्रोफेसर साहब गणित के प्रोफेसर थे मेरठ कालेज में, निहायत सीधे यानी बहुत योग्य। बनारस यूनीवर्सिटी के फर्स्ट-क्लास थे (प्रथम श्रेणी में भी प्रथम)। उनका दिमाग़ चौबीसों घंटे गणित की ग्रन्थियों में उलझा रहता था। न कपड़ों की चिन्ता थी और न कार्यक्रम की, परन्तु आस्था के रूप में आप पूर्ण धार्मिक थे।

बोले "क्या कहा, मुंशी जी! आज के बच्चे अधार्मिक होते जा रहे हैं, यही मतलब है न आपका?"

"जी, बिलकुल यही बात है। वे लोग यहाँ पढ़ते क्या हैं, घर वालों का पैसा बर्बाद करते हैं।" बात का रुख धार्मिकता से, आर्थिकता की ओर मुंशी चतुर्रसिंह का आप-से-आप घूम जाता था। वह फिर कहना शुरू करते, "ये बच्चे अपनी ज़िन्दगियों में ज़बरदस्त आवारा बनेंगे। रात को बारह-बारह एक-एक बजे बोर्डिंग की दीवारें फाँदकर सिनेमा से आने वाले लड़के क्या तालीम पा सकते हैं?"

बोर्डिंग के लड़कों की इन हरकतों को रोकने के लिए बोर्डिंग की दीवार पर कांटेदार तार भी लगवाये गये, परन्तु उनकी हरकतें न रुक सकीं और इस सख्ती के कारण मुंशी चतुर्रसिंह तथा प्रोफेसर साहब बोर्डिंग के बच्चों में दो शैतानों की तरह देखे जाने लगे।

बोर्डिंग के बच्चे जिस काम को स्वतन्त्रतापूर्वक करते थे और उनके मन में पाप या मालिन्य नहीं होता था, वही काम अब उन्हें छिपकर करना होता था। इन बंदिशों ने उन बच्चों को और भी मक्कार और आवारा बना दिया।

मुंशी चतुर्रसिंह की अवस्था काफ़ी हो गई थी। लगभग सत्तर वर्ष वह इस जिन्दगी के पूरे कर चुके थे। दूसरे वहाँ का वातावरण भी अब इनके खिलाफ हो गया था। इनके मित्र

प्रोफेसर साहब बोर्डिंग की प्रधान सुपरिंटेण्डेण्टी से जा चुके थे और नये प्रधान सुपरिंटेण्डेण्ट महोदय एक प्रगतिशील व्यक्ति थे, जो बोर्डिंग के लड़कों में हिल-मिल कर रहना अपना जीवन समझते थे।

दिलचस्प किस्म के आदमी थे। धर्म के नाम पर वह हिंदू मात्र थे, बस यही वह जानते थे। कर्मकाण्ड का चक्कर उन्हें धोखेबाज़ी और मक्कारी का जाल दिखाई देता था। जिस किसी आदमी को भी वह इन कामों में फँसा देखते थे, तो तुरन्त उनके मन में आता था कि वह महाशय अवश्य ढोंगी और पौंगा-पंथी हैं। उनके जीवन में अवश्य बहुत बड़ी-बड़ी खंदकें हैं और उन खंदकों को पाटने के लिए ही वह ये कर्मकाण्ड का जाल रचकर दुनिया को धोखा देना चाहते हैं।

मुंशी चतुर्रसिंह की उनके साथ पटरी न बैठ सकी और वह यहाँ से अब सीधे सिरसे, अपने गाँव में, चले आये। अब नौकरी करने की उनकी अवस्था भी नहीं रही थी। जवानी रौब और हुकूमत से काटने के बाद बुढ़ापे में ये घिस-घिस की छोटी नौकरियाँ मुंशी चतुर्रसिंह को परिवार का पेट पालने के लिए करनी पड़ी थीं।

उनकी शर्मिंदगी ने उनके जीवन के बड़प्पन को नष्ट कर दिया था और रामदयाल के मुकदमा जीत जाने ने तो उनकी इज्जत ही किरकिरी कर दी थी। अब मुंशी जी सिरसे की उस हवेली में आ चुके थे, जिसमें बैठकर वह एक दिन अपनी बिरादरी के सबसे बड़े आदमी बन जाना चाहते थे।

घर के विषय में अब वह किसी से कुछ बात नहीं कर सकते थे। उनके जो भी पुराने परिचित मिलते थे, और यदि वे इनके परिवार की स्थिति से परिचित होते थे, तो उन्हें देख कर मुंशी जी को लज्जा से गड़ जाना होता था।

चन्द उन्हें मूर्ख बनाने वाले तथा उनके परिवार को और अधिक कशीदगी तथा मुकदमेबाजी की दलदल में फँसा देने वाले

उनसे आकर कहते थे, "मुंशी जी आपके साथ आपके भाई-भतीजों ने जबरदस्त अन्याय किया है। आपने मर-पच कर जिन भाई-भतीजों को पाला और बड़ा किया और खाने-कमाने लायक बना दिया, वे ही आपके सामने दुश्मन बन कर आये। आज के ज़माने में सच जानिए मुंशी जी ! बाहर के लोग तो अपने हो जाते हैं, परन्तु घर के अपने नहीं होते।"

मुंशी जी का सिर डोल जाता उसकी सहानुभूतिपूर्ण बातों पर।

कुछ लोग ऐसे भी दबंग और परिवार के हितैषी आते जो मुंशी चतुर्रसिंह से स्पष्ट कह देते, "मुंशी जी ! हम आपका आदर करते हैं, परन्तु आपने जो अपने भाइयों को बराबर के हिस्से से महरूम रखने का प्रयत्न किया यह आपने अन्याय किया और उसी के फलस्वरूप आपने अपने परिवार की उन्नति को रोक दिया।"

उस पर मुंशी जी रो-धो कर बरस पड़ते और कभी-कभी तो उनका क्रोध भी उभर आता। उस साफ बात कहने वाले को उनसे अपना पल्ला छुड़ाना मुश्किल हो जाता। मुंशी जी क्रोध में भरकर कहते, "आपकी राय का मैं कायल हूँ, परन्तु जो रुपया मैंने इस परिवार की नींव में दफनाया है उसका हिसाब तो होना ही चाहिए। बिरादरी में मेरी नामवरी से जो यह परिवार ऊपर को उठा है, उसकी भी कुछ कीमत है या नहीं महोदय ! आप ही बिचौलिये बन जाइए और हिसाब-किताब करा दीजिए।"

अब ये बिचौलिये महोदय सोचते कि चलो अच्छा ही है यदि यह परिवार आपस में टकराने से बच जाय। वह उसी समय रामदयाल के पास जाते और मुंशी चतुर्रसिंह का संदेश उसे सुनाते, तो वह उन महाशय जी को महामूर्ख की हैसियत से देखता और कहता, "अब चाहते हैं ताऊजी फैसला करना ? अब जायदाद का बारहवाँ हिस्सा देने की तो बात नहीं करते

हैं ना ! और कुछ रुपये पैसे की बात यदि उन्होंने कही हो तो वह हमारे पास है नहीं भय्या ! यूँही यदि फैसला हो, तो हमें कोई ऐतराज नहीं है।"

वह महाशय बाबू अग्निदत्त से मिलते तो बाबू अग्निदत्त उन्हें घर के दोनों पहलुओं को समझाकर बातें करते। बाबू अग्निदत्त को जायदाद में से कुछ भी नहीं मिला था, इसलिए यह बेचारे दबकर फैसला करने की भी बात सामने लाते। इसलिए जब भी फैसले की बातें चलतीं तो तावान हमेशा बाबू अग्निदत्त पर ही लादने का प्रयत्न किया जाता।

तावान देना बाबू अग्निदत्त को मंजूर नहीं था। वह उस ज़मीन में आधे से भी अधिक रुपया दे चुके थे, जिसके ऊपर कि यह झगड़ा था और आधा रुपया देकर तिहाई हिस्सा माँग रहे थे। फिर तावान क्यों दें ? बाबू अग्निदत्त को बिला ज़मीन रहकर सचाई के लिए जद्दोजहद करना पसंद था, परन्तु तावान भरना यह अपनी कमजोरी और बेइज्जती समझते थे।

और यह उसके लिए किसी फैसले में तैय्यार नहीं हुए। और लोग यदि तावान से अपनी चालाकियों की बदौलत बचना चाहते थे तो बाबू अग्निदत्त उसे अपना हक़ समझते थे। समझते और सब भी थे, परन्तु जब रुपया लेने की बात आती थी तो समझदारी को न जाने क्या हो जाता था।

उस समय केवल रुपया-ही-रुपया दिखाई देता था चारों तरफ और आदमी पर से नज़र हट जाती थी। इसी रुपये पर टिकी हुई मंशी चतुरसिंह, हरकली, ध्यानव्रत, रामदयाल, धर्मप्रकाश और बाबू अग्निदत्त की नज़रें वापस लौट जातीं। कोई फैसला नहीं होता और आपस की कशीदगी आगे बढ़ जाती। जो रहा-सहा पारस्परिक प्रेम-भाव था उसके भी अब लेने-के-देने पड़ते जा रहे थे।

इसी तरह के फैसलों की न जानें कितनी बार बातें चलीं, परन्तु नतीजा सबका शून्य नज़र आया।

: ३१ :

मुंशी चतुरसिंह की पूजा, कर्मकाण्ड, सब उसी प्रकार चलते थे और वह अपने मन से जो कुछ भी कर रहे थे वह न्याय-संगत था। उनके रिश्तेदार, बाल-बच्चे उन्हें जो राय देते थे, उसी का पालन करना अब वह अपना कर्तव्य समझते थे। उनकी अपनी विचार-शक्ति बाल बच्चों की विचारधारा में बह चुकी थी और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नष्ट हो चुका था।

उनके बच्चे जो बोलते थे वे वेद-वाक्य थे, अटल थे और उनमें कोई परिवर्तन करने की शक्ति उनमें नहीं रह गई थी। मनुष्य के जीवन की ऊँचाई उनके नजदीक सिग्रेट न पीना, शराब न पीना, माँस न खाना, संध्या हवन करना और अपने बच्चों का कहना मानने तक ही सीमित हो गई थी। इसी दायरे के अन्दर वह चल रहे थे। उनकी इच्छा इस समय एक बालक के जैसी थी, परन्तु अधिक उम्र के गुण कभी-कभी उनमें विकार उत्पन्न कर देते थे।

मंशी चतुरसिंह का क्रोध आज भी उसी पैमाने पर था, जिस पैमाने पर कि वह अपने जवानी-काल में वर्तमान था, परन्तु आज उस क्रोध को उतारने के लिए न तो मिडिल स्कूल के विद्यार्थी ही थे और न अपने बच्चे ही। जब कभी उन्हें क्रोध की गरमी आती थी तो उसे उन्हें अपने ऊपर ही उतारना पड़ता था। वह अपने ही बाल नोंचने लगते थे और अंड-बंड बहकना प्रारम्भ कर देते थे।

मुंशी जी का शरीर पुराना पड़ चुका था और अब काम करने की क्षमता भी उनमें कम रह गयी थी। फिर सबसे बड़ी

बात यह थी कि आजकल उन्हें वह खूराक भी नहीं मिल पाती थी जिसे खाकर उनका शरीर बना था। कभी-कभी वह आजकल भी सुबह-ही-सुबह मूंगरियाँ घुमाते थे परन्तु उसकी थकान को शक्ति में बदलने वाले दूध-दही के न मिलने पर वह शरीर में उल्टी कमजोरी पैदा करती थीं।

मुंशी चतुरसिंह अब स्थायी रूप से सिरसे में ही आकर बस गये थे। अभी आये हुए अधिक दिन नहीं हुए थे कि उनके हाथों से ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के बच्चों की पिटाई होनी प्रारम्भ हो गई।

यह पिटाई, एक दो बार की तो, ध्यानव्रत तथा उसकी स्त्री ने सहन की, परन्तु जब इसका सिलसिला रोज़ाना में बदलने लगा तो एक दिन पिता-पुत्र की झड़प की नौबत आ गई और ध्यानव्रत ने साफ़-साफ़ कह दिया, "पिता जी! आप बच्चों को इतनी-बुरी तरह न मारा करें। आपके मन में जो झुंझलाहट आपके भाई-भतीजों ने बेईमानी करके पैदा कर दी है, उसे आप इन बच्चों पर उतारना चाहते हैं क्या?"

ध्यानव्रत के ये शब्द मुंशी चतुरसिंह पर बिजली की तरह गिरे। उनका तमाम शरीर और उसकी नस-नाड़ियाँ झंकृत हो उठीं। उनके क्रोध का पारावार नहीं था, परन्तु इस क्रोध में उन्होंने आज अपना मोटा सोटा लेकर ध्यानव्रत की खबर नहीं ली, वरन अपने हाथों से अपनी ही बाल-उड़ी चाँद को पीटना प्रारम्भ कर दिया।

इतने में घर के अन्दर से हरकली और उसकी माता जी भी निकल आईं। हरकली ने आगे बढ़कर पूछा, "क्या बात है पिता जी! आप इस प्रकार बातें करके हम लोगों की गाँव में हँसी उड़वाते हैं। इतने बुढ़ापे में भी आपका क्रोध, मैं देखती हूँ, वैसा ही बना हुआ है जैसा जवानी में था।"

"तो ठीक है। तुम सब मिलकर मेरा क्रोध झाड़ना चाहते हो, तो लो झाड़लो।" और इतना कह कर उन्होंने अपने पैर

की सलेमशाही जूतियाँ उनके सामने फेंक दी। और जब उन्होंने वे जूतियाँ नहीं उठाई तो उन्होंने स्वयं ही उन्हें अपने सिर पर फट-कारनी प्रारम्भ करदीं।

यह देखकर हरकली की माता जी उन्हें रोकने के लिए आगे बढ़ना ही चाहती थीं कि हरकली ने कड़क कर कहा, "तुम वहीं खड़ी रहो माता जी! पिताजी को जो करते हैं, करने दो। इनकी इन्हीं बातों ने तो हमें कहीं का नहीं छोड़ा। आखिर किस बात पर इतना क्रोध कर रहे हैं, यह हमारी समझ में नहीं आता। आज तक जो नहीं कहा है, उसे आज कहती हूँ। आपने जो कुछ भी किया होगा, अपने भाई-भतीजों के लिए किया होगा, हम लोगों के लिये कुछ नहीं किया।" और इतना कह कर वह शेरनी के समान मस्तक पर सलवटें डाले सामने खड़ी रही।

मुंशी चतुर्रसिंह का उफान वहीं पर दब गया। उनके क्रोध की ज्वाला आज किसी अन्य को बिला ज़रा सा भी नुकसान पहुँचाये शांत हो गई और वह बड़बड़ाते हुए अपना सत्यार्थप्रकाश बगल में दबाकर जंगल में कुए की तरफ चले गये।

हरकली ने जिंदगी का आज एक नया ही पहलू बदला। वह अब और अधिक मुंशी चतुर्रसिंह का झूठा बड़प्पन सहन नहीं कर सकती थी। आज इस घर को चलाने वाली हरकली थी और हरकली के घर के सामने इन्होंने आज अपने सिर पर जूतियाँ बरसा कर हरकली की नाक काट ली।

"ऐसे भी कहीं पिता होते हैं जो अपने बाल-बच्चों की इज्जत का खयाल ही न रखें, और यह भी न सोचें कि घर का खर्च हम लोग कैसी मुसीबत से चला रहे हैं।" मुंशी चतुर्रसिंह के जंगल की तरफ़ चले जाने पर हरकली ने कहा।

हरकली की माता जी वहाँ मौजूद थीं, ध्यानव्रत भी वहीं पर था और दोनों बहुएँ भी बैठक की खिड़की से सटी खड़ी थीं। हरकली फिर अपनी माता जी की तरफ देख कर रोती हुई पीछे कुर्सी पर बैठ गई और माथा ठोक कर बोली, "माता

जी मुकदमे के हार जाने के सदमे ने पिता जी का दिमाग ख़राब कर दिया है।"

और वह गाँव की ना समझ औरत हरकली की माता जी मान गई कि हाँ वाकई ऐसा हो सकता है।

फिर हरकली अपनी माता जी को अपने पिताजी की हर समय की पाबन्दियों से भी मुक्ति दिलाना चाहती थी। मुंशी चतुर्रसिह की दिनचर्या सुबह से शुरू होकर संध्या तक चलती थी और उसका काम करने के लिए उन्हें एक आदमी की आवश्यकता रहती थी। इस काम पर हरकली की माता जी की ड्यूटी थी। हरकली को यह पसंद नहीं था।

हरकली की माता जी एक पूरे आदमी का काम कर सकती थीं। उनके काम से परिवार को खड़े रहने में योग मिलता था। ऐसे आदमी को वह मुंशी चतुर्रसिह के व्यर्थ के कर्म-काण्डी जीवन के लिए नहीं छोड़ सकती थी। वह उन्हें मुक्ति दिलाना चाहती थी और आज उसने कह भी दिया, "माता जी अब आप यह पिता जी के हवन-संध्या की छगन-मगन को छोड़ दीजिए। आज से फिर कभी आपको मैं इन कामों में फँसा हुआ न देखूँ। पिताजी से आप से तो कुछ होता है नहीं, और साथ में तुम्हें भी घेर कर बैठ जाते हैं। मैंने अकेली ने ही घर भर के लिए खिलाने पिलाने का ठेका नहीं ले लिया है।"

"जैसा तू कहेगी बेटी! मैं वही करूंगी।" हरकली की माता जी ने हरकली को प्यार से अपने शरीर के साथ चिपका कर उसका क्रोध शांत करते हुए कहा, "बेटी अब तो तू ही सहारा है इस परिवार का।"

और वास्तव में आज से ही हरकली की माता जी ने अपने जीवन को अपने बच्चों की राह पर डाल दिया। समझ लिया कि अब इस परिवार की गाड़ी को चलाने वाला उसका पति नहीं है, उसके बच्चे हैं।

हरकली की माता जी, जिन्होंने हेडमास्टरी के ठाट-बाट देखे

थे, अब पूरी कर्मठता के साथ गृहस्थी को चलाने में जुट गईं। एक पूरे जवान आदमी का काम देने लगीं। वक्त-बे-वक्त कुट्टी काटना, घास खोदना, ढोरों को सानी करना, घेर में जानवरों के नीचे सफाई रखना, गोबर पाथना इत्यादि ये सभी काम वह करती थीं, परन्तु क्या मजाल जो उनके घर की कोई बहू-बेटी कभी इन कामों की तरफ जाकर भी फिरे। ऊँचे घर की शान को कायम रखने के लिए इस वृद्धा ने मरना माँड लिया था और क्या ताक़त आ गई उसके शरीर में कि चौबीसों घंटे तैनात रहती थी अपने काम पर।

मुंशी चतुरसिंह ने जब अपनी शादी की थी तो स्त्री को वह अपनी सेवा के लिए विवाह कर लाये थे। जवानी पहरे में उसने उनकी खिदमत भी काफ़ी की और सच बात यह थी कि उस जमाने में तो घर का हर आदमी उनके सामने हल-हल काँपता था। परन्तु आज उनके कँपकपी के ज़माने में वे काँपने वाले भी सीना-सपर होकर सामने आते थे और ध्यानव्रत का तो अब गाँव में छाती उभार कर चलना उस कदर बाकी नहीं रह गया था जिस क़दर वह मुंशी चतुरसिंह के सामने चलता था।

नित्य नई घटनाएँ घटती थीं आजकल मुंशी चतुरसिंह के साथ। उनका कोई विशेष उपयोग नहीं रह गया था अब इस परिवार के लिए। बूढ़े जानवरों को तो लोग-बाग कसाई को देकर दाम खड़े कर लेते हैं और अंतिम समय तक इस तरह उसका उपयोग बना रहता है। परन्तु इंसान स्वयं अपने आप वृद्ध काल में उपयोगी न रह कर उल्टा भार बन जाता है परिवार पर।

मुंशी चतुरसिंह का भार ढोना अब दूभर होता जा रहा था उनके परिवार वालों के लिए। घी-दूध की कमी में उन की खूराक भी बढ़ गई थी और उनके खाये जाने वाले फुलकों को ध्यानव्रत की बहू गिन-गिन कर हरकली से कहती थी, "बीबी जी! अब तो पिताजी को जाने क्या हो गया है।

पन्द्रह-पन्द्रह फुलके एक साथ बैठकर खा जाते हैं ।"

"ज्यादा खाने की भी एक बीमारी होती है बहू ! हो सकता है वही पिताजी को लग गई हो । यदि ऐसा हुआ है तो भगवान ने हमारी इस आर्थिक दशा में यह सबसे बड़ा अन्याय किया है हरकली कहती ।

"तुम ही तो कहा करती थीं जीजी कि भगवान् बड़ा न्यायकारी है । अब तुम ही कहो कि उसका वह न्याय कहाँ चला गया ? हम लोगों को तो भगवान् ने कहीं का भी नहीं छोड़ा ।" लम्बी साँस लेकर ध्यानव्रत की बहू कहती और ज्ञानव्रत की बहू भी पास में पीढ़ा सरकाकर बैठ जाती ।

"पिताजी की यह बीमारी तो हमें ज़िन्दा ही खा जायगी जीजी ! तुम्हारी तनखा से ही तो सारी गृहस्थी का काम चल रहा है । लाला जी ने मर-पच कर जो दाने उगाये थे वे सब जेठ जी की भट्टी में झुक गये । मैं तो कहती हूँ भगवान हमारे नाज को वे लोग भी खाट-पड़कर ही खायें । जैसा उन्होंने हमारा और हमारे बाल-बच्चों का जी दुखाया है, वैसा भगवान् उनके सामने लाये ।" रोते हुए ज्ञानव्रत की स्त्री ने कहा ।

"जी भारी मत करो बहू ! जिस भगवान ने यह दुःख दिया है, वही इसे ठीक भी करेगा । मैं कल अपनी ससुराल जा रही हूँ । देखती हूँ कि वे लोग मुझे रुपया कैसे नहीं देते हैं । अब की बार यदि न दिया तो पड़ौसियों के नाम अपनी जमीन पर पट्टा कर आऊँगी । यह मैं अब अच्छी तरह देख चुकी हूँ कि भाई-भतीजों से तो पास-पड़ौसी ही अच्छे होते हैं । भतीजे तो वक्त पड़ने पर कटी उंगली पर पेशाव करना भी पसन्द नहीं करते ।" ज़रा उभर कर साहस के साथ हरकली ने कहा ।

और सचमुच ही इस बार हरकली जब अपनी ससुराल से लौटी तो उसके पास दो सौ रुपये की रक़म थी और दिल में गर्व था कि अब इस रक़म को लगा कर वह अपने भाई-भतीजों के लिए एक नया स्वर्ग निर्माण करेगी ।

हरकली ने सिरसे से पाँच कोस की दूरी पर एक शहर में नौकरी की हुई थी और वहाँ स्टेशन के पास ही एक मकान किराये पर ले लिया था।

हरकली ही इस समय इस परिवार का पालन-पोषण कर रही थी। पालन-पोषण ही नहीं उसने अपने भाईयों के बच्चों की तालीम का भी अच्छा खासा प्रबन्ध कर लिया था और लड़के तथा लड़कियों को बराबर तालीम दिलाती जा रही थी। यहाँ तक कि उसने ध्यानव्रत की बहू को भी शहर में ले जाकर तालीम दिलानी आरम्भ कर दी। तालीम पर उसका विशेष ज़ोर था और वह यह समझती थी किसी दिन यही तालीम उन्हें फिर बुलन्दी पर ले जायगी।

सन् १९३९ का ज़माना आ गया और विश्व पर महायुद्ध के बादल मँडराने प्रारम्भ हो गये। मुंशी चतुर्रसिंह का बड़ा लडका विदेश में था। वहाँ वह जिस स्वप्न को लेकर गया था, भगवान ने उसकी पूर्ति में सहयोग नहीं दिया। जो कुछ रुपया वह लेकर गया था वह भी बरबाद हो गया और अब वापस लौटने के लिए भी उसके पास रुपया नहीं था।

युद्ध की गर्मी बढ़ती जा रही थी और इधर मुंशी चतुर्रसिंह के परिवार पर भी उसका असर हो रहा था। घर का सबसे बड़ा कारकुन और अगली पीढ़ी का कर्णधार विदेश में मुसीबतें भर रहा था।

एक दो गहनों को इधर-उधर करके ज्ञानव्रत के पास देश लौटने का किराया भेजा गया और उसे पाते ही ज्ञानव्रत इस फुर्ती के साथ वहाँ से लपका कि मानो बन्दरगाह पर ही खड़ा वह उस रुपये के आने की बाट देख रहा था।

पूरे पाँच वर्ष वह विदेश से लौट कर आया; परन्तु कोई प्रसन्नता का वातावरण नहीं था घर में। ज्ञानव्रत जिस सूट को यहाँ से पहन कर गया था, वही सूट था शरीर पर और सिर पर भी वही फेल्ट हैट था जिसे लगा कर वह दिल्ली के चाँदनी

चौक में अपनी बूआ के बेटे की दुकान से निकलते हुए बोला था, "यहाँ के मामलात सब ठीक कर चला हूँ। अब ज़रा विदेश से धन कमा कर लाना है और फिर उसे लेकर जो सिरसे में बैठूँगा तो क्या मजाल होगी किसी की, जो नज़र भर कर भी मेरी तरफ देख जाय। मेरा असली दबदबा तभी बैठेगा।"

परन्तु यह ठाट-बाट अब पुराना था और इस पुराने सूट को किसी क्लीनर के यहाँ से सफाई कराये भी वर्षों गुजर चुके थे।

ज्ञानव्रत घर पर आया, तो उसने हवेली की दशा देखी। हवेली की दशा ज्ञानव्रत के सूट की दशा से पीछे नहीं थी। ऊपर के चौबारे की दीवारों में जो तरेड़ें आ गई थीं उनकी मरम्मत नहीं हुई थी। बैठक का फर्श उखड़ा पड़ा था और फरनीचर पर तो मानो कई साल से झाड़न भी नहीं मारा गया था। एक-एक अंगुल रेत जम रहा था खूंटियों पर। खूंटी अपने हाथ से साफ़ करके ज्ञानव्रत को उस पर कपड़े टाँगने पड़े।

जिस समय ज्ञानव्रत ने घर में प्रवेश किया तो हरकली की माता जी और हरकली ने उसे सीने से लगाया। दोनों बहुएँ भी अन्दर बराँडे में खड़ी ज्ञानव्रत का अन्दर आना देख रही थीं परन्तु ज्ञानव्रत की स्त्री की तो प्रसन्नता अपार थी। उसका विदेश गया हुआ सुहाग पाँच वर्ष में लौटा था। उम्र अधेड़ होने पर भी आज जवानी के आसार मुख-मण्डल पर झलक आये। उसके नयनों से प्रेम छलक रहा था।

सबसे मिल कर ज्ञानव्रत अन्दर गया, जहाँ उसकी स्त्री खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। ज्ञानव्रत ने अपनी स्त्री की ठोड़ी पकड़ कर मुख-मण्डल को ऊपर उठाते हुए अपना प्रेम-चुम्बन प्रदान किया और एक क्षण के लिए उसे सीने से लगा कर पाँच वर्ष की पुरानी बिछुड़न को प्रेम बनाकर उसके दिल में भर दिया।

ज्ञानव्रत ने सिरसे में आकर देखा कि उसके परिवार की दशा खराब थी। पहले एक बार उसने इधर-उधर नौकरी की टिप्पस

लगानी चाही परन्तु सफलता न मिली। ज्ञानव्रत ने फिर अपना ध्यान खेती पर ही लगाया, परन्तु वहाँ भी कुछ आमदनी बढ़ती नज़र न आई। इसके बाद ज्ञानव्रत ने अपनी छोटी बहन के पति के साथ भी दुकानदारी करने की बात सोची और दिल्ली में लोहे के सामान की दुकान खोली।

पूंजी की कमी में यह दुकानदारी भी बन्द कर देनी पड़ी और फिर ध्यान खेती की ही तरफ़ करना पड़ा।

विदेश से ज्ञानव्रत कुछ कमाकर तो लाया नहीं था, परन्तु फिर भी उसकी बातें इतनी ज़ोरदार थीं कि वह परिवार का संचालक बन गया। अन्दर से हरकली सब कुछ करती और बाहर से करने वाला ज्ञानव्रत था। ध्यानव्रत बड़े भाई और बहन के सामने बोलना नहीं जानता था।

ध्यानव्रत की स्त्री ज्ञानव्रत की छोटी साली थी और उसका मुँह भी वह ध्यानव्रत की शादी से पहले देख चुका था। उसे खाना भी हमेशा ससुराल में वही खिलाती थी। इसलिए ज्ञानव्रत से परदा करने की उसे कोई आवश्यकता नहीं थी।

अब घर में दोनों बहुएँ बिना पर्दा स्वतन्त्रतापूर्वक रह रहीं थीं और हरकली को विदेश से लौटे ज्ञानव्रत ने इतना तरक्की-पसंद बना लिया था कि वह उसमें कोई ऐतराज न कर सके।

हरकली ने ज्ञानव्रत को सिरसे में आते ही यहाँ की स्थिति का पूरा ज्ञान करा दिया और कह दिया अब पिताजी से साफ़-साफ़ कह देना चाहिए कि वह ज़मीन-ज़ायदाद तथा घर-बार के मामलों में बिलकुल न बोला करें। चाचा जी वगैरा यदि कोई आयें भी तो वह उनसे साफ-साफ कह दें कि इन मामलों के बारे में आप बच्चों से बातें करें।

आज संध्या को ज्ञानव्रत ने अपने पिता जी से कहा, "घर के मामलों को मैं देखता हूँ कि जहाँ छोड़ कर गया था, उनमें और खराबियाँ आ गई हैं। हमारी गाँव में स्थिति अब बहुत खराब हो गई है। आपने भाइयों के चक्कर में आकर हम

लोगों को तो बरबाद ही कर दिया। अब मेहरबानी करके आप इतना करें कि इन लोगों से बातें करना क़तन बन्द कर दें। अगर कोई फैसले की बात उन्हें करनी है तो वे मेरे पास आकर करें। मैं देखता हूँ कि मेरे साथ उनकी चाल-बाज़ी कैसे चलती है।"

मुंशी चतुरसिंह को, इसे मान लेने में कोई आपत्ति नहीं थी। वह इस समय संन्यास-आश्रम में जा रहे थे। इसलिए जितना भार उनके सिर से उतर रहा था, उसे वह प्रसन्नतापूर्वक उतारते जा रहे थे।

ज्ञानव्रत ने अब इधर-उधर भी हाथ-पाँव फैलाने का प्रयत्न किया, परन्तु सफलता उसे किसी भी काम में न मिल सकी। गाँव में रहकर उसने भी ध्यानव्रत वाला महाशय टाइप ही अपना बना लिया और खद्दर के कुर्तों में ही उसे वर्तमान युग की प्रगति दिखाई दी।

साग-सब्ज़ियों की खेती कराई और फिर उसे हापुड़ की मंडी में भिजवाकर अपनी आय बढ़ाने का प्रयास किया। अब वह खूब मन लगा कर मेहनत कर रहा था। सोने-चाँदी की खान, तथा दस बटा बारह जायदाद पाने के ख्वाब अब नहीं थे, परन्तु आधी से अधिक ज़मीन उसके कब्ज़े में थी। उसमें से एक खूड़ भी वह चचा अग्निदत्त को देने के लिए तैयार नहीं था।

काम ज्ञानव्रत का गो छोटा ही था परन्तु उसके कुलावों में कोई कमी नहीं थी। उसके नाक, कान, आँख और ज़बान तथा हाथ और उँगलियाँ सभी काम करते रहते थे। आसमान के कुलावे मिलाना उसने नहीं छोड़ा था और उसके इन्हीं कुलावों में आकर ध्यानव्रत की वफ़ादारी फिर गहरी होनी प्रारम्भ हो गई।

मुंशी चतुरसिंह के सपुर्द अब इस छोटे परिवार के कर्णाधारों ने बच्चों को पढ़ाने का काम किया और साथ में ताकीद की, "पिताजी यह ध्यान रखिये कि बच्चों को मारा-पीटा क़तन

न जाय। ये कितने कोमल होते हैं और आपकी मार कितनी सख्त होती है। मुझे दोनों का तजुरबा है।"

मुंशी चतुरसिंह उस समय तो सिद्धान्त रूप में उन बातों को मान लेते, परन्तु जब बच्चे उनके पास आकर ऊधम मचाते तो उन्हें वह ज़रा भी बर्दाश्त नही होता। पढ़ाई का वातावरण बनाना वह जानते थे, परन्तु आज इन पोतों को पढ़ाने में वह असमर्थ थे।

बच्चे भी अपने बाबा और उनकी कमजोरियों से परिचित हो गये थे और वे उनकी चुगली अपनी माओं से करते थे। इस प्रकार वे बातें होम-गवर्नमेन्ट द्वारा ज्ञानव्रत के कानों तक पहुँचती थीं। ज्ञानव्रत की साली ज्ञानव्रत से कहती थी, "पिताजी को तो जाने क्या हो गया है। नाहक इन मुलायम-मुलायम बच्चों की खालें उधेड़ने के लिए पिल पड़ते हैं। बच्चों के पीछे ऐसे दौड़ते हैं जैसे चूहे के ऊपर बिल्ली झपट्टा मारती है। कहीं यह भी बच्चों को पढ़ाने का कोई तरीका है?"

ध्यानव्रत की पत्नी आधुनिक शिक्षा-पद्धति के अनुसार बच्चे को डाटने-डपटने तक के भी विरुद्ध थी। मारना पीटना तो अमानुषिक कार्य है।

छोटी साली की शिकायत सुनकर ज्ञानव्रत को लज्जा आती अपने पिता के बच्चों के प्रति इस व्यवहार पर। वह गर्दन नीची करके कह देता, "समझा देंगे पिताजी को। वह आइन्दा बच्चों को नहीं मारेंगे।"

"समझाने की बात नहीं है कुछ, वह तो यह चाहते हैं कि बच्चे भी उन्हीं की तरह हर समय मुँह पर ताला देकर अंदर-ही-अंदर गायत्री का जाप करने लगें। भला कहीं यह बच्चों से होगा?" जरा मुस्कुराते हुए छोटी साली ने अपने जीजा जी से चुटकी ली।

लजाकर ज्ञानव्रत जी बोले, "पिताजी की आदत पुरानी है और उनका बच्चों के पालन-पोषण करने का दृष्टिकोण भी

पुराना ही है। उन्हें यह ग़लत मालूम देता है कि बच्चे बिला डंडे के भी पढ़ लिख सकते हैं। मेरी तो कई हड्डियाँ आज तक चसकती हैं बरसात में उन मारों के कारण जो मुझे उनके हाथों खानी पड़ी हैं।" स्थिति को ज़रा और गम्भीर बनाते हुए ज्ञानव्रत ने कहा।

परन्तु आज जिस हादसे की सूचना ज्ञानव्रत को रात्रि में पलंग पर लेटने के पश्चात् दूध का गिलास हाथ में देते हुए उसकी साली ने दी, वह बहुत ही विचित्र थी और उसके सुनते ही ज्ञानव्रत का पारा तेज़ हो गया। वह अपने को सँभाल ही न सका और उसी समय नीचे जाकर बैठक के सामने अपने पिता जी पर बरसता हुआ बोला, "अब तो ऐसा मालूम होता है कि आपके अन्दर फिर जवानी का जोश लहरें मारने लगा है।"

मुंशी चतुरसिंह नहीं समझे ज्ञानव्रत के इस व्यंग्य वाक्य को और कसाई के सामने काँपते हुए बूढ़े बैल की तरह थरथराकर बोले, "क्या मतलब है तुम्हारा ज्ञानव्रत! मैं तो समझ ही नहीं सका।"

"अब आप क्यों समझने लगे हैं। ज्ञानव्रत की बहू को अपने सामने घूंघट उतार कर मुँह खोले फिरने का आदेश जो दिया है आपने।" ज्ञानव्रत उसी सख्ती के साथ बोला।

मुंशी चतुरसिंह जड़वत् रह गये यह सुनकर एक क्षण के लिए और फिर क्रोध में बलबला कर बोले, "तुम जैसे चाहो रहो, मैं घर पर रहना ही छोड़ देता हूँ। अगर वह ठोकर खाती और मुंह के बल गिरकर दाँत तुड़वा लेती तो घूंघट का पता चल जाता उसे।"

"परन्तु यह उसके सोचने की बात थी, आपके सोचने की नहीं। मुँह के या पेट के बल गिरती तो चोट उसके आती, आपके नहीं।" ज्ञानव्रत ने उसी सख्ती के साथ कहा।

वास्तव में बात यह थी कि मुंशी जी के घर रहने से बहुओं की स्वतंत्रता में बाधा पड़ती थी और स्वतन्त्रता सभी चाहते हैं।

उसी दिन मुंशी चतुरसिंह का सामान हवेली से कुए के पास जंगल में पड़ी एक झोंपड़ी में पहुँच गया और यह एकांत स्थान सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करने के लिए था भी रमणीक। चारों तरफ़ ध्यानव्रत की खेती थी और बीच में बरगद के सायेदार वृक्ष के नीचे कुए से लगी हुई यह झोंपड़ी है। आधुनिक युग का बनाया हुआ संन्यासी इस कुटिया में पहुँच गया।

मुंशी चतुरसिंह जंगल में रहकर भी बात-बे-बात पर ज्ञानव्रत से उलझते रहते थे। ज्ञानव्रत ने अब अपनी माताजी का इधर खाना लेकर आना भी बन्द कर दिया।

यह खाना भी अब बच्चे ही यहाँ दे जाते थे। ज्ञानव्रत के खयाल से इस उम्र में मुंशी चतुरसिंह को अपनी स्त्री की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु मुंशी चतुरसिंह इस अभाव के कारण अंदर-ही-अंदर परेशान थे।

हरकली की माताजी ने देखा कि अब पति की अपेक्षा बच्चों का पहलू मज़बूत है, तो उसने भी उनकी ही हाँ-में-हाँ मिलानी आरम्भ कर दी और इसके फलस्वरूप, अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर मुंशी चतुरसिंह के व्यवहार में जो झुंझलाहट आई, उन्होंने उसे उनका पागलपन समझना प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन मुंशी चतुरसिंह ने हरकली और ज्ञानव्रत को बातें करते सुना जिसके दौरान में मुंशी चतुरसिंह के खाली बैठे-बैठे खाने पर रोष प्रकट किया जा रहा था। उसे सुनकर मुंशी चतुरसिंह बोले, "मैं तुम लोगों की कमाई का एक दाना भी अपने मुँह में नहीं डालूंगा। मुझे काम बताओ मैं काम किये बिना खाना नहीं खाऊँगा।"

"तो कीजिये न काम! काम करने को कौन मना करता है।" अकड़कर ज्ञानव्रत बोला। "अनाज के पैर पड़े हुए हैं। इन्हें बरसाने के लिए मज़दूरों की ज़रूरत है। आप भी उनमें शामिल हो जाइये।" कड़ककर ज्ञानव्रत ने कहा।

"अच्छा!" और इतना कहकर ज्ञानव्रत ने देखा कि उसके

पिताजी ने कुए के पास एक खेत में भैंसों-द्वारा बनाये गये एक कीचड़ के गड्ढे में लेटना प्रारम्भ कर दिया। ज्ञानव्रत की समझ में ही न आया कि आखिर इससे उनका क्या मतलब है।

मतलब स्पष्ट था कि दिमाग की गर्मी को वह पानी में लेटकर समाप्त करना चाहते थे, परन्तु ऊपर से बोले, "ज़रा अपने को मज़दूरों-जैसा तो बना लूँ, तब काम पर लगूँगा।"

हरकली और ध्यानव्रत वहीं पर थे। यह देखकर हरकली कड़ककर बोली, "यह क्या हो रहा है, पिताजी ?"

"पिताजी मज़दूर बन रहे हैं। बिला मज़दूरी किये अब ये हमारी कमाई का एक दाना भी मुँह में नहीं डालेंगे" ज्ञानव्रत ने कहा।

"तो ठीक है, न डालें। इनसे कहता ही कौन है कि हमारी कमाई का अन्न खायें। परन्तु यह पागलपन अब और सहन नहीं हो सकता।"

और पिताजी की तरफ मुँह करके बोली, "आप सीधी तरह से इस चोड़े के अन्दर से बाहर निकल आयें वरना मैं ध्यानव्रत से कहूँगी कि वह तुम्हें ये ह कतें न करने दे और बरगद की जड़ों से कस कर बाँध दे।"

हरकली की यह गम्भीर वाणी सुनकर मुंशी चतुरसिंह थर्रा उठे और वह तुरन्त बिला मुँह से एक शब्द भी बोले कुए के पारछे में जाकर नहाने लगे।

हरकली को मुंशी चतुरसिंह ने अब अन्दर और बाहर दोनों तरफ से देख लिया था। पूरी तरह समझ लिया था और यह भी शायद जान गये थे कि उन्होंने जीवन में कहाँ और क्या भूल की। परन्तु अब उस भूल के गढे से बाहर आने का मार्ग नहीं था और थी कमज़ोरी बच्चों के प्यार की।

इस तरह की घटनाएँ भी अब मुंशी चतुरसिंह के जीवन में आईं और ये घटनाएँ नित्य नया रूप धारण करने लगीं। वह तंग आते जा रहे थे अपने बच्चों के व्यवहारों से। परन्तु उनके

अन्दर का मोह यही कहता कि आखिर ये लोग भी तो उनके ही सताये हुए हैं।

वह अपने बच्चों के लिए कुछ भी न कर सके, इसका उनके दिल पर गहरा मलाल था और आज भी वह अपने बच्चों की बची-खुची सम्पत्ति को उनके पास कायम रखने के लिए हर प्रकार का बलिदान देने को तैयार थे।

: ३२ :

बाबू अग्निदत्त बेटे की शादी धूम-धाम से करके अपनी नौकरी पर चले गये थे। एक वर्ष पश्चात् उन्होंने फिर सिरसे में ही आकर अपने लड़के का गौना किया और गाँव पर, दहेज का दिखावा करके यह जतला दिया कि यह ठीक है कि भाई चतुरसिंह ने उन्हें ज़मीन नहीं दी और भतीजे भी आपा-धापी करके उनके हिस्से को खा जाना चाहते हैं, परन्तु इन सब चीज़ों से उनके बड़प्पन में कोई कमी नहीं आई है। भगवान् का दिया उनके पास सब कुछ है और किसी के वह असरिया नहीं हैं।

और लोग तो गाँव में अधिक-से-अधिक शादी में ही बहू को कार में लाये थे, परन्तु बाबू अग्निदत्त का लड़का अपनी बहू को गौने में भी कार में ही लाया और लाकर उसने उसे फिर अपने उसी मकान पर उतारा जहाँ शादी को लेकर आया था।

बाबू अग्निदत्त ने ये दो रस्में गाँव पर अपनी माली हालत का दबदबा बिठलाने के लिए की थीं और उसका असर भी गाँव के वातावरण पर काफ़ी गम्भीर पड़ा।

मुंशी चतुरसिंह, रामदयाल, धर्मप्रकाश इत्यादि को शादी की रस्मों के बतौर इस शादी में जो आमदनी होनी थी सो हो गई, परन्तु वे किसी अन्य प्रकार से बाबू अग्निदत्त का रुपया उनसे ऐंठने में सफल न हो सके।

बाबू अग्निदत्त भी अब पुराने फरमाबरदार और परिवार पर अपने कपड़े उतरवाने वाले भोले भाले इन्सान नहीं रह गये थे। आज तक की कमाई से लुट-पिटकर उन्होंने इतनी ही अक्ल सीखी थी कि अब वह किसी का विश्वास नहीं करते थे।

इन्हीं दिनों बाबू अग्निदत्त का तबादला सहारनपुर से गाज़ियाबाद को हो गया। गाज़ियाबाद आ जाने पर बाबू अग्निदत्त अपने घर के निकट आ गये और अब उनके नौकरी से भी रिटायर होने में केवल सात वर्ष रह गये थे। उनके मस्तिष्क में भी यह चिंता सवार होनी आरम्भ हो गई थी कि आखिर नौकरी समाप्त होने पर कहाँ जाकर रहेंगे और जीवन के अंतिम दिन किस वसीले से कटेंगे। आखरी सहारा उन्हें भी गाँव की अपनी ज़मीन का ही दिखाई दिया।

फिर वह अपना हक़ भी समझते थे अपनी जायदाद के लिए जद्दोजहद करना। अपनी जायदाद अपनी मर्जी से वह किसी को दे सकते थे, परन्तु उनकी जायदाद को कोई बेईमानी से उनकी आँखों के सामने हड़प कर जाये, यह वह सहन नहीं कर सकते थे।

इस बार सिरसे को चलते समय वह अपनी स्त्री से बोले, "देवी! यह आखरी बार भाई साहब के पास जा रहा हूँ, इंसाफ के लिये। अगर इस बार भी उन्होंने अपनी वही टाल-मटोल की नीति अपनाई तो मैं फिर भविष्य में उनके पास इसलिये नहीं जाऊँगा कि वह मुझे मेरी जायदाद दे दें। फिर मुझे भी मजबूर होकर अदालत की ही शरण लेनी पड़ेगी।"

सिरसे पहुँचकर बाबू अग्निदत्त ने गाँव के दो मौअजिज आदमियों को साथ लिया और उनके साथ अपने बड़े भाई मुंशी चतुरसिंह के पास पहुँचे। मुंशी चतुरसिंह कुए की पैड़ पर खाट बिछाये बैठे थे और सत्यार्थप्रकाश पढ़ रहे थे। वह इस समय कहीं ब्रह्म से बातें कर रहे थे और न्याय, त्याग, कर्तव्य के शत्रु क्रोध, लोभ और मोह की पारस्परिक तुलना कर रहे थे। अनेकानेक दृष्टांत दिये जा रहे थे दोनों तरफ से। एक तरफ भगवान् स्वयं थे और दूसरी तरफ मुंशी चतुरसिंह। दोनों की मुस्कुरा-मुस्कुरा कर बातें हो रहीं थीं आपस में।

ठीक इसी समय बाबू अग्निदत्त ने आकर मुंशी चतुरसिंह

की तपस्या भंग कर दी । वह इस समय दुनिया के झंझटों को ज्ञानव्रत और हरकली के कंधों पर डालकर धर्म-निष्ठा में लग गये थे । बाबू अग्निदत्त ने उन्हें वहाँ से उठाकर एक बार फिर दुनिया में लाने का प्रयास किया परन्तु वह उसके लिये तैयार नहीं थे। वह अपना क्रियात्मक जीवन समाप्त कर चुके थे ।

उनके पास पहुँचकर गांव के उन दो आदमियों ने कहा, "मुंशी जी ! बाबू अग्निदत्त आये हैं और आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप इनके हिस्से की तिहाई ज़मीन इन्हें छोड़ द ।"

मुंशी चतुरसिंह ने इस पर साफ जवाब दे दिया । "मेरा अब ज़मीन के मामलों से कोई सरोकार नहीं रहा। इन्हें जो बातें करनी हैं वह बच्चों से करें ।

'बाबू अग्निदत्त बातें बच्चों से करें' ये शब्द बाबू अग्निदत्त के कानों पर इतने ज़ोर से लगे कि मानों दो ज़बरदस्त लुहारों ने बाबू अग्निदत्त के दो तरफ़ खड़े होकर दो घनों से एक साथ चोट लगाई हो ।

उनका सिर चकरा गया, परन्तु उन्होंने अपने को संभाला और मुस्कुराते हुए बोले, "आज मुझसे आपके बच्चे बातें करेंगे । जब खत्री का रुपया देना था, तब बच्चे कहाँ थे । उन दिनों इस घर की क्या दशा थी इसका अन्दाज ये बच्चे नहीं लगा सकते, यह आप लगा सकते हैं या मैं लगा सकता हूँ और तीसरा लगाने वाला मर चुका ।"

मुंशी जी चुप थे बाबू अग्निदत्त का यह वाक्य सुनकर, परन्तु वह लाचार थे और जवाब उन्होंने दिया था वह उसके अतिरिक्त और कोई जवाब दे ही नहीं सकते थे क्योंकि वह तो उन्हें पिछले एक मास की ट्रेनिंग के पश्चात हरकली और ज्ञानव्रत ने रटाया था । स्वतन्त्र रूप से वह बाबू अग्निदत्त से एक शब्द भी नहीं बोल सकते थे ।

मुंशी चतुरसिंह ने अपनी आँखें ऊपर उठाकर देखा तो बाबू

अग्निदत्त के मुख पर उन्हें वे दिन मँडराते हुए नज़र आये जब दोनों ने कदम-दर-कदम इस परिवार को ऊपर उठाया था। भाई की मोहब्बत ने भी कुछ अन्दर से उभारा लिया और माँ-बाप की कुछ याद आई, परन्तु बच्चों की उनके चारों ओर डाली हुई जंजीर ने उनकी गर्दन को नीचे झुका दिया और उनकी आँखों में जिस स्थान पर बाबू अग्निदत्त उनके जीवन की उन पुरानी स्मृतियों को लेकर खड़े थे, उस पर हरकली और ज्ञानव्रत अपनी तेज नजरें दौड़ाते हुए आ पहुँचे।

गाँव के उन दोनों मौअजिज आदमियों को मुंशी चतुरसिंह का यह व्यवहार खटका, परन्तु कोई कानून तो नहीं था उनके हाथों में जो किसी को वे ठीक कर पाते।

"चलो बच्चों से भी मिलते चलो बाबू अग्निदत्त! कलकलाँ को यह बात कहने को न रह जाय कि आप यदि बच्चों से मिलते तो मामला वहीं समाप्त हो जाता।"

इच्छा न होने पर भी बाबू अग्निदत्त ने गाँव वालों का कहना न टाला। हरकली और ज्ञानव्रत दोनों मौजूद थे। बातें ज्ञानव्रत से हुई परन्तु बाबू अग्निदत्त ने अपनी ज़बान से एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया। उन दोनों ही महाशयों ने ज्ञानव्रत से बातें कीं तो ज्ञानव्रत ने साफ़ जवाब दे दिया, "चाचा जी से आप फरमा दीजिए कि हमारे परिवार में जमीनें मुक़दमे से ली जाती हैं। उन्हें यदि जमीन लेनी है तो अदालत में जाकर दरखास्त दें।"

बाबू अग्निदत्त दिल में ज्वाला लिये इस समय भी ऊपर से मुस्कुरा रहे थे। वह एक शब्द भी न बोले किसी से और गाज़ियाबाद आकर तुरन्त दावा करने का निश्चय कर लिया।

निश्चय ही नहीं दावा करके तुरन्त कमीशन भी जारी करा दिया। कमीशन सिरसे लेकर बाबू अग्निदत्त और उनका लड़का राजू गये। उन्होंने जंगल में जाकर जो कमीशन को ज़मीन दिखाने के लिये संकेत किया तो ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत दोनों

लंगोटा कसे, हल-बैल छोड़कर कानों से भी ऊँची लाठियाँ उठाये, उस ओर दौड़े चले आये।

कमीशन भी घबराया कि भले काम में हाथ डाला। यहाँ तो ज़मीन क्या तक़सीम होगी, सिर चिरते नज़र आते हैं। परन्तु बाबू अग्निदत्त और उनके लड़के के हाथों में पतली छड़ी भी नहीं थी। वे हँस रहे थे उन्हें इस प्रकार आते देखकर। ज्ञानव्रत अपने चचा से कमीशन के सामने बोला, "ज़मीन लेने के लिए आये हो चचा! वह पास में बहने वाला छोइया (बरसाती नाला) नहीं देखा है अभी। बाबू जी की खोपड़ियाँ किसी दिन उसी की धार में पड़ी नज़र आयेंगी।"

बाबू अग्निदत्त मज़ाक में बोले, "हाँ-हाँ भय्या! मुझे तुमसे यही आशा है। परन्तु अभी तो गर्मी के दिन हैं और छोइया सूखा पड़ा है। जरा उसमें पानी तो आने दो।"

कमीशन को भी हँसी आ गई बाबू जी के मज़ाक पर। कमीशन ने ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत को समझाया, "भाई ये कोई जबरदस्ती कब्ज़ा करने नहीं आ रहे हैं तुम्हारी मिल्कियत पर। अदालत में मुकदमा दायर किया है। यदि इनका कुछ है ही नहीं तो तुमसे बेचारे ले क्या लेंगे और अगर अदालत दिलायेगी तो तुम्हें झक मारकर देना होगा।"

कमीशन की इतनी बातें सुनकर ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के दिमाग के पढ़े-लिखे पहलू में ज़रा जागृति हुई। उन्हें कुछ शर्मिंदगी-सी भी आई अपने कारनामे पर, परन्तु बाबू अग्निदत्त पर अपनी शर्मिंदगी ज़ाहिर करना उन्होंने उचित नहीं समझा।

बाबू अग्निदत्त के कमीशन ने जो अदालत को रिपोर्ट दी उसके मुताबिक ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत पर तौहीन-अदालत का मुकदमा चलाया गया और दूसरी तरफ जायदाद का भी मुकदमा चलता रहा।

जब रामदयाल ने अपने हिस्से के लिए मुकदमा दायर किया

था तो उससे बाबू अग्निदत्त ने मुंशी चतरसिंह की हवेली और ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत के नाम की ज़मीनों को छुड़वा दिया था। परन्तु अब जो उन्होंने मुकदमा दायर किया, उसमें इन्हें भी शामिल कर लिया।

रामदयाल एक तरफ बैठा यह तमाशा देख रहा था,परन्तु अब तमाशे के दिन समाप्त हो चुके थे और नीचे से ज़मीन खिसकने की नौबत आ गई थी। यदि बाबू अग्निदत्त मुकदमा जीते और ज़मीन उन्हें मिली तो उसे भी कुछ ज़मीन छोड़नी ही होगी, वह भी तो अपने हिस्से से अधिक जोत-बो रहा था।

ऐसी दशा में धर्मप्रकाश और ज्ञानव्रत के परिवारों में कुछ प्रेमभाव पैदा हो गया। दोनों फरीकों का आपस में आना-जाना हो गया और भाजी-बहाना भी चलने लगा। इससे भी और आगे बढ़कर मुकदमे में दोनों फरीकों ने मिलकर अग्निदत्त को हराने का प्रयत्न किया।

तौहीन-अदालत के मुकदमे के अलावा बाबू अग्निदत्त ने ज्ञानव्रत के दाँत खट्टे करने के लिए एक फौजदारी इस्तगासा भी दायर कर दिया। ज्ञानव्रत की बातें बाबू अग्निदत्त के लड़के राजू से अदालत की पहली ही पेशी में हुई और उसने खेद प्रकट किया अपनी हरकतों पर। राजू ने बड़े भाई के इतना कहने भर को काफी समझा और फ़ौजदारी मुकदमा वहीं पर रोक दिया।

तौहीन-अदालत के मुकदमे में भी ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने अदालत में बाबू अग्निदत्त के पैर छूकर माफी माँगी और बाबू अग्निदत्त ने अपने सगे भाई मुंशी चतुरसिंह की औलाद को चौधरी आभाराम के परिवार की इज्जत समझ कर क्षमा कर दिया। बाबू अग्निदत्त जानते थे कि यदि उन्होंने क्षमा नहीं किया तो अदालत अपनी तौहीन सहन नहीं करेगी और इन दोनों को छः छः महीने के लिए जेल भेज देगी।

ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने अदालत के अन्दर चचा के पैर अवश्य छू लिये, परन्तु दिलों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

अदालत से बाहर आते ही उन्होंने अपने गाँव के साथियों में बैठकर कहा: "वहाँ अदालत के सामने ज़रा पैर छू कर अगर जान बचाली तो इसका मतलब यह नहीं है कि हम इन चचा महाशय को इतनी आसानी से सिरसे में बस जाने देंगे।"

और उस दिन ध्यानव्रत ने रामदयाल से भी मीठी-मीठी बातों के दौरान में कहा, "भाई साहब! आप ज़रा पुलिस को सँभाल लेना और मैं सब काम ठीक कर दूँगा।"

इस पर रामदयाल ने अपनी अनुमति देते हुए ध्यानव्रत को शाबाशी दी, "तेरी ताकत को मैं मानता हूँ, ध्यानव्रत!"

रामदयाल अदालत में गो बाबू अग्निदत्त की मुख़ालफत कर रहा था, परन्तु फिर भी उसके व्यवहार में ऊपरी तमीज अवश्य थी। परन्तु मुंशी चतुरसिंह के परिवार ने तो ऊपरी सम्बन्धों में भी विकार उत्पन्न कर लिये।

बाबू अग्निदत्त अदालत से साफ़ मुकदमा जीत गये और मुंसिफ ने यहाँ से जो फैसला दिया वह अटल हो गया। यह काम बाबू अग्निदत्त ने काफी तैड़-फैड़ के साथ कराया और अपनी पूरी शक्ति उन्होंने इसी काम पर लगादी।

ज्ञानव्रत इन दिनों दुरंगी चालें चल रहा था। एक ओर तो वह रामदयाल से मिलकर बाबू अग्निदत्त के विरुद्ध लड़ रहा था और दूसरी ओर राजू से भी बड़े प्रेम से मिलता रहता था। बाबू अग्निदत्त का लड़का उसकी खातिर करता था और बड़े भाई के रूप में सम्मान भी करता था। साथ ही उसे मिलकर परिवार को ऊपर उठाने की बातें भी सुझाता था। आधुनिकतम खेती के तरीकों को इस्तेमाल करने की बातें समझाता था।

ज्ञानव्रत सुनता था और उनसे लाभ उठाने का प्रयत्न करता था, परन्तु पूरे परिवार की बातें उसके दिमाग में नहीं जचती थीं और इन्हें वह राजू की मूर्खता समझ कर एक कान से सुनता था और दूसरे कान से बाहर निकाल देता था।

एक दिन वह भी आया जब बाबू अग्निदत्त नौकरी से

रिटायर हो गये और अब उन्हें यह सोचना था कि यहाँ से आखिर जायें तो कहाँ जायें। इस समय बाबू अग्निदत्त का कोई सलाहकार नहीं था। बाबू अग्निदत्त और उनकी स्त्री ने सिरसे जाकर खेती कराने की ही बात मन में ठानी।

एक बैलगाड़ी बाबू अग्निदत्त ने किराये पर ली और अपना सब सामान उस पर लाद कर दोनों प्राणी सिरसे की तरफ चल दिये। सिरसे में आज उन्हें अपने घर पर ठहरने के लिए कहने वाला कोई नहीं था।

गाड़ी धर्मप्रकाश के मकान और चबूतरे के पास से गुजरी, परन्तु उसने गाड़ी रुकवा कर अपने चचा को घर में कदम रखने के लिए नहीं कहा।

मुंशी चतुरसिंह की तो बात ही निराली थी। हवेली के रहने वाले इन ख़ानाबदोश दो प्राणियों की खबर भला कैसे ले सकते थे।

सिरसे में बाबू अग्निदत्त की बड़ी साली मौजूद थी। बाबू अग्निदत्त का रिश्ता अपनी छोटी बहिन से इन्हीं ने कराया था। बाबू अग्निदत्त की गाड़ी सीधी जाकर उन्हीं के मकान पर रुकी। सामान उतार कर चौक में डाल दिया गया।

बाबू अग्निदत्त ने मुकदमा जीत कर तुरन्त आबादी के मकानातों की तक़सीम दायर कर दी थी और काग़ज़ात अमीन के पास आ चुके थे। अमीन से बाबू अग्निदत्त ने जो कुरे लगवाये उनमें अपने पास परिवार का वह कदीमी मकान ही रखा जिसकी कि दो दीवारें पूरी तरह से गिर चुकी थीं और उधर से कुत्ते-बिल्ली की रोक-थाम के लिए कीकरों की ढाँकरें लगा दी थीं। रामदयाल और धर्मप्रकाश के नाम वह घेर आया जिसमें उन्होंने एक इमारत बनवा ली थी और मुंशी चतुरसिंह की हवेली की तरफ बाबू अग्निदत्त ने आँखें भर कर भी देखना पसंद नहीं किया।

तक़सीम के लिए जब अमीन साहब सिरसे पधारे तो बाबू

अग्निदत्त ने उन्हें उनका इनाम मुँह माँगा दिया। बाबू अग्निदत्त बोले, "अमीन साहब अगर आप कहें तो पुलिस का इंतजाम कर लेते हैं। पुलिस का खर्चा मैं भरने को तैयार हूँ।"

"अरे चलोगे भी बाबू जी! क्या बातें करते हो?" रुपयों की गर्मी जेब में आते ही अमीन साहब मूछों पर ताव देकर बोले, "पुलिस हमारे सामने बेचती क्या चीज है? हमारे हाथ में अदालत का हुक्म होने पर तो बड़े-से-बड़े और पहलवान-से-पहलवान का भी पेशाब निकलने लगता है। पुलिस लेकर एक मामूली से मकान का दखल दिलाने में हमारी भी तौहीन है।"

"तो आप जानें अमीन साहब! हम लोग तो गाँव में अब आपके ही बसाये बसेंगे। हमारा गाँव में एक भी मददगार नहीं है। इस समय तो आप पर ही भरोसा है और होगा वही जो भगवान को मंजूर है।" बाबू अग्निदत्त दीन भाव से बोले।

"आप लोग फिक्र न करें ज़रा भी! देखिए किस खूबी के साथ आपको दखल दिलाता हूँ।" अमीन साहब ने कहा।

घोड़े-ताँगे में बैठकर अमीन साहब के साथ बाबू अग्निदत्त और राजू दो घंटे में सिरसे पहुँच गये।

ताँगा अमीन साहब ने धर्मप्रकाश के मकान के सामने रुकवाया और वहाँ देखा कि बैठक में चौधरी धर्मप्रकाश के चौकड़ी बाज लोग इकट्ठे हो रहे थे।

अमीन साहब के गाँव में आने की खबर बिजली की तरह फैल गई। ज्ञानव्रत, ध्यानव्रत और हरकली तथा मुंशी चतुरसिंह ने भी इस संवाद को सुना। वे सभी देखना चाहते थे कि आखिर होने क्या जा रहा है।

अपने उस पुराने मकान की तरफ से आजकल उन्होंने अपना रास्ता बन्द किया हुआ था।

अमीन साहब पहले चबूतरे पर चढ़े और फिर उनके पीछे-पीछे दबे पैरों से बाबू अग्निदत्त तथा उनका लड़का राजू भी चढ़ गये। साथ में इनके कोई और आदमी इनका अपना नहीं था।

अमीन साहब ने छड़ी के इशारे से धर्मप्रकाश को सामने बुलाकर कहा, "एक घंटे के अन्दर-अन्दर यह मकान खाली कर दो, अदालत का हुक्म है।"

"यहाँ अदालत का हुक्म नहीं चलता अमीन सहाब ! यहाँ तो आपका हुक्म चलता है।" धर्मप्रकाश के एक साथी ने आगे बढ़कर कहा और वह अमीन साहब को एक तरफ़ ले गया।

अमीन साहब को इस तरह जाते देख कर बाबू अग्निदत्त और राजू के मन में चिंता हुई परन्तु उन्हें यकीन था कि आखिर बात जो बिगड़ेगी भी तो पैसे के ही कारण बिगड़ेगी और आज ढाई हजार रुपया जेब में लगाकर बाबू अग्निदत्त अमीन साहब को लेने के लिए गये थे।

धर्मप्रकाश ने आखिरी बोली चार सौ रुपये की लगाई, परन्तु उसे मालूम नहीं था कि यह अभी बाबू अग्निदत्त की भेंट पूजा के आधे रुपये तक भी नहीं पहुँच पाया था।

अमीन साहब ने धर्मप्रकाश को डपट कर कहा, "क्या बकवास करते हो जी तुम? खबरदार जो अब रुपये का मेरे सामने नाम भी लिया।" इधर-उधर के राह चलने वाले जो लोग इकट्ठे हो गये थे उन सभी के सामने उन्होंने धर्मप्रकाश को बुरी तरह डाटा और हुक्म दिया कि "मकान खाली होने में एक घटे से अधिक समय नहीं लगना चाहिए।"

आज चौधरी धर्मप्रकाश ने बाबू अग्निदत्त की खोपड़ी खून में रंगने और धक्के देकर उन्हें इस मकान से बाहर निकाल देने के लिए अपनी पहलवान चौकड़ी को कानों से भी ऊँची लाठियाँ दे-देकर दोपहर से ही बैठक में बिठाया हुआ था। ये सब वे ही लोग थे जिन्होंने मुंशी चतुरसिंह के हवन से अपवित्र किये हुए स्थानों को शराब की बूंदें छिड़क कर पवित्र किया था।

इन सभी पहलवानों को धर्मप्रकाश की हमदर्दी में पल्लेदारों का काम करना पड़ा। सब घर का सामान ढोने में जुट गये।

यहाँ से गली पार करके घेर में जो इमारत रामदयाल ने एक हाथीखाने के समान बनवाई थी, उसमें ही धर्मप्रकाश ने जाकर शरण ली।

अमीन साहब ने बाबू अग्निदत्त को अपने पास बुलाते हुए कान में कहा, "देखा अब कैसे ढो रहे हैं सामान ? आये थे कि आपको धक्के दे-दे कर चबूतरे से नाचे गिरा देंगे । मेरी एक फटकार से दिमाग़ ठिकाने पर आ गये । सात-सात साल की सज़ा से कम नहीं होगी, मैंने कह दिया है । मेरी हुक्म उदूली करना मज़ाक नहीं है ।"

सात साल की सज़ा का नाम सुनकर, जो धर्मप्रकाश को आगे बढ़ कर वार करने के लिए उकसा रहे थे, उन्होंने सामान उठाने की ही राय दी और उनकी इस उदासीनता को देखकर धर्मप्रकाश भी ढीला पड़ गया।

सारा मकान एक घंटे में खाली हो गया। सामान उसमें था ही क्या । जो घर का पहला और बाबू अग्निदत्त का भाई साहब के पास भेजा हुआ सामान था वह तो हरकली और ज्ञानव्रत हवेली में ले जा चुके थे । अब तो यहाँ धर्मप्रकाश की पाँच-सात चून-दालों की माट-मटोलियाँ और दो चार मेज कुर्सियाँ थीं, जिन्हें बाबू अग्निदत्त राजू की शादी समाप्त करने के पश्चात् धर्मप्रकाश को दे गये थे । इनके अलावा कुछ खाट-पीढ़ियाँ थीं और बस बाक़ी खुला मैदान था, जिसे वह उठाकर नहीं ले जा सकता था।

किवाड़ों की जोड़ियाँ भी अन्दर से उखाड़ने का उन्होंने प्रयत्न किया परन्तु अमीन ने उन्हें जोड़ियाँ उतारने से रोक दिया और कहा, "ले जा सकते हो तुम, परन्तु यह समझलो कि फिर एक-एक की चार-चार जोड़ियाँ देनी पड़ेंगी ।"

धर्मप्रकाश और उसके साथी सहम गये अमीन की यह चेतावनी सुनकर और जो कुछ वे लेजा सके उसी पर संतोषकर लिया ।

बाबू अग्निदत्त ने अपने पुराने उसी कदीमी फूटे-टूटे मकान

पर, जिसमें कि उसने अपने बेटे की शादी की थी, अदालत की मदद से दख़ल लिया। वह जानते थे कि उनका क़दम मज़बूत है, परन्तु फिर भी गाँव में जाने कितने किस्म की अफ़वाहें फैलीं।

अफवाहें दो क़िस्म की थीं, एक मरदाना और दूसरी ज़नाना। मरदाना अफवाहों में कुछ अक्लमन्द लोगों ने बाबू अग्निदत्त की सहनशीलता और मुस्तकिल मिजाजी की सराहना की। कुछ कम समझदार लोगों ने धर्मप्रकाश को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया, कि वह मकान उसे फिर मिल जायगा, परन्तु वह अन्दर से जानता था कि अब जिंदगी में फिर कभी उस मकान को वह अपना मकान नहीं कह सकेगा। वह मकान अब चौधरी आभाराम का नहीं था। अदालत ने उसे अब बाबू अग्निदत्त को दे दिया।

ज़नाना अफ़वाहों में धर्मप्रकाश की बहू की चन्द औरतों में वह कड़कती हुई आवाज़ थी जिसमें उसने कहा, "अभी चार दिन में तुम देखना कि कि हम भी इनकी भाजड़ को इस मकान से निकलवा कर ऐसे ही फिकवा देंगे जिस तरह आज इन्होंने हमारी भाजड़ फिकवाई है। ज़रा जेठ जी को तो पता लग जाने दो, फिर देखना क्या होता है? थाने भर के सिपाहियों को लेकर अगर जेठ जी ने इन्हें घर से न निकलवा दिया तो क्या बात है?"

अमीन साहब मकान पर दख़ल दिलाकर संध्या को हापुड़ के लिए रवाना हो गये और चलते समय बाबू अग्निदत्त को पूरी तरह से समझा गये, "कोई भय की बात नहीं है बाबूजी! अगर ये लोग ज़रा भी ची-पटाख करें तो सीधे मेरे पास चले आना और में इन्हें ऐसा नाप दूँगा कि जिंदगी भर किसी शरीफ आदमी को तंग करने का नाम न लें। आपके भतीजे ये हैं वाकई बड़े लुच्चे।"

"आप ही देख लीजिये अमीन साहब! मुझे तो कहना ही

क्या है ?" बाबू अग्निदत्त ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा।

आज बाबू अग्निदत्त ने ज़िंदगी के इस पहलू पर पहली विजय प्राप्त की थी। मुक़दमा जीतने के पश्चात् मकान पर दखल लिया और फिर उसे बनवाने की बात उनके सामने आई।

बाबू अग्निदत्त अब गाँव में आकर बस ही गये। जिन लोगों का यह खयाल था कि शायद धर्मप्रकाश, रामदयाल, ध्यानव्रत और ज्ञानव्रत उन्हें गाँव में घुसने ही नहीं देंगे, उनका वह विचार बदलने लगा।

गाँव के चन्द लोगों ने उनके पास आना-जाना भी प्रारम्भ कर दिया। कुछ उनके साथी थे बचपन के, उन्होंने बैठ-उठ भी प्रारम्भ कर दी। बाबू अग्निदत्त अपनी जायदाद पर क़ब्जा करना चाहते हैं, यह सभी लोग जानते थे। कुछ लोगों ने अपने को बाबू अग्निदत्त का अभिन्न मित्र भी बनाना प्रारम्भ कर दिया और सुबह-शाम उनके साथ बैठकर चाय पीने में भी उन्हें आनन्द आने लगा।

ये लोग तीनों फरीकों के पास उठते-बैठते थे और तीनों के ही मन की बातें लेकर गाँव में अफवाहें फैलाते थे। इस प्रकार बाबू अग्निदत्त के गाँव में पहुँचने पर इस परिवार का पारस्परिक वैमनस्य और भी गम्भीर धारा में बह निकला।

बाबू अग्निदत्त ने एक ओर तो मकान बनवाना प्रारम्भ किया और दूसरी ओर अपने मुक़दमे की डिग्री इजरा कराकर उसमें धर्मप्रकाश का मकान तथा उसके बैल इत्यादि कुर्क करा लिये।

रामदयाल इन दिनों सहारनपुर ज़िले में दारोगाई पर पहुँच गया था और उसने वहाँ रिश्वत में काफ़ी रुपया कमाया। यह रुपया ज्यों ही उसके पास आया त्योंही उसके सिर पर बाबू अग्निदत्त की डिग्री आकर गिर पड़ी और उसे चार हज़ार रुपया उसमें भरना पड़ा।

जो रामदयाल के पास था वह भी चला गया और कुछ इधर-उधर से भी जमा करना पड़ा। ज्ञानव्रत ने इस रुपये की अदा-

यगी में एक कौड़ी भी नहीं दी, जबकि क़ायदे से उसे आधा रुपया भरना चाहिये था। इसीलिए उस दिन से मुंशी चतुरसिंह और रामदयाल के परिवारों में जो इस बीच में मीठे सम्बन्ध पनपे थे वे एक दम कड़ुवे हो उठे।

: ३३ :

बाबू अग्निदत्त ने अब सिरसे में रहना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु यहाँ उनके पास आमदनी का कोई ज़रिया नहीं था। ज़मीन मिल जाती तो वह खेती करना प्रारम्भ कर देते और अपने गुजारे भर की आमदनी कर लेते। परन्तु ज़मीन धर्मप्रकाश और ज्ञानव्रत के कब्जे में थी।

गाँव में आकर भी बाबू अग्तिदत्त ने आपसी फैसले की बात चलाई। बाबू अग्निदत्त जब एक से फैसले की बात चलाते तो वह दूसरे पर टाल देता, और दोनों का एक जगह मिलना असम्भव था। दोनों ने ही यह बहाना ढूंढ लिया उनसे कहने का "दोनों से एक साथ ज़मीन ले लीजिये आप। हमें कोई उज्र नहीं है, इस बात में।" और उज्र दोनों को पूरा-पूरा था। दोनों ही अपने-अपने कब्जे में आई ज़मीन को बाबू अग्निदत्त के हवाले करने को तैयार नहीं थे।

बाबू अग्निदत्त ने मकान बनवाना प्रारम्भ किया तो ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत उधर जाकर झाँके भी नहीं, परन्तु धर्मप्रकाश इसे सहन नहीं कर सका। किसी-न-किसी प्रकार की अड़चन वह डालना ही चाहता था उस काम में। अपने एक मुलाजिम को लेकर वह उस दीवार के पास पहुँचा, जहाँ खड़े हुए बाबू अग्निदत्त मकान बनवा रहे थे और कड़क कर बोला, "किसके हुक्म से यह मकान चिना जा रहा है?"

"अपने हुक्म से।" बाबू अग्निदत्त सरलता पूर्वक बोले।

"तोआपका हुक्म मुझे देखना है आज।" और इतना कहकर वह उनसे लिपट गया। परन्तु इसी बीच गाँव के आदमियों ने

आकर मामला रफा-दफा कर दिया।

बाबू अग्निदत्त ने मकान की चिनाई वहीं पर रोक दी और सीधे जाकर कलक्टर की अदालत में दरखास्त दी।

इलाके के थानेदार के नाम हुक्म हुआ कि वह जाकर मौके का मुआयना करे।

बाबू अग्निदत्त फिर जाकर इलाके के थानेदार से मिले और उन्होंने मौके पर आने की तारीख लगा दी।

यह काम सब अग्निदत्त ने चुपके-ही-चुपके किया।

दूसरे ही दिन थानेदार सिरसे में आया और उसने मौके को देखकर बाबू अग्निदत्त से कहा, "आप बेफिक्र दीवार चिनवाइये। मैं देखता हूँ कौन इसमें आकर अड़चन पैदा करता है।"

धर्मप्रकाश तो थानेदार के आने की बात सुनकर वहाँ से भाग ही जाना चाहता था, परन्तु सामने नज़र पड़ जाने पर थानेदार ने उसे बुलाकर फटकारते हुए कहा, "क्यों साहब! आप कौन होते हैं इस दीवार को रोकने वाले। अगर आइन्दा मैंने आपकी ऐसी हरकत सुनी तो चालान कर दूंगा।" धर्मप्रकाश ने उस समय दबी बिल्ली की तरह क्षमा माँगली और बाबू अग्निदत्त की दीवार बननी प्रारम्भ हो गई।

बाबू अग्निदत्त ने मज़दूर और राजों की संख्या बढ़ा दी और दो दिन के अन्दर ही पूरी चार दीवारी खिंचवाकर तैयार करा दी।

दीवार बनने की भी यह एक ही दिलचस्प कहानी रही। धर्मप्रकाश ने यह कार्यवाही करके यह नहीं समझा था कि बात कलक्टर साहब के पास तक पहुँच जायगी। उसने तो अपने चंद साथियों को एक दो दावतें उड़वाने के लिए ही यह रंग रचा था।

इसीलिए बाबू अग्निदत्त के पास गाँव के एक बड़े चौधरी साहब ने पिछले दिन उनकी बैठक में बैठकर हमदर्दी दिखाते हुए कहा था, "अग्निदत्त भाई साहब! गाँव में रहना बड़ा कठिन

है । यहाँ गुण्डों का राज है । वे जब चाहें तब शरीफ़ आदमियों की इज्जत उतार ल ।"

"और आप लोग इज्जतें उतरवा कर भी प्रसन्न होते हैं ?" अग्निदत्त ने कहा ।

"प्रसन्न न रहें तो क्या करें ? जब रहना यहीं है । मैं तो कहता हूँ कि तुम भी खामख़ा के झमेले में न पड़ो ।" वह बोले ।

"तब फिर क्या करना चाहिए मुझे ?" अग्निदत्त ने सरलता-पूर्वक पूछा ।

"मैं तो यही राय दूँगा कि पचास-सौ रुपये इन गुण्डों को चटाकर अपना पीछा कटाओ, और मकान बनवाना प्रारम्भ करो ।" चौधरी साहब बोले ।

इस पर बाबू अग्निदत्त मुस्करा दिये और दृढ़तापूर्वक बोले "भय्या ! यह दीवार बने या न बने परन्तु गुण्डों को शराब पीने के लिए मैं रुपया दूं, यह बात असम्भव है ।"

चौधरी ने सुझाव तो प्रस्तुत कर दिया परन्तु उत्तर सुनकर शरमाते हुए बोले, "भाई साहब बुरा तो मैं भी समझता हूँ इन बातों को, परन्तु छोटे भाई ने जब आकर गिड़गिड़ाते हुए तुम्हारी ही हमदर्दी जतला कर कहा कि देखो तो भाई साहब ! बेचारे बाबू अग्निदत्त को ये गुण्डे कसा परेशान किये हैं । जरा आप ही जाकर उन्हें समझा दें कि नाहक इन गुण्डों के मुँह न लगे । इनकी कीमत ही क्या है, यही पचास सौ रुपया । शराब पी-पा लेंगे कहीं जाकर और बेचारे बाबू जी की जान छूट जायगी । ख़ामख़ा बेचारों का मकान बनता-बनता रुक गया । मेरे तो ज़रा ताल्लक़ात ख़राब हैं उनसे, वरना मैं स्वयं ही जा कर यह सुझाव देता । बाबू अग्निदत्त देवता आदमी हैं ।"

बाबू अग्निदत्त सुनकर मुस्कुराते हुए बोले, "तो इसका अर्थ यही है कि आप के छोटे भाई ने आपको मूर्ख बनाया । आपने अग्निदत्त को ग़लत समझा है । आप मुझ बुजदिल समझते हैं

क्या ? इन्होंने शहरों की फिजायें बदली हैं और उन फिज़ाओं पर अपने व्यक्तित्व से काबू पाया है। आप समझते हैं कि मैं इन गुण्डों को पचास रुपये दे दूँगा। सहारनपुर जैसे मुसलमानी शहर के बीचों-बीच खड़ी जामा मस्जिद के सामने से मैंने आर्यसमाज का जुलूस बिला बाजा बन्द किये निकाला था। मैं प्रधान था उस आर्यसमाज का। जो आदमी अंग्रेजी सल्तनत के जमाने में शहर के मुसलमानों के सामने सीना खोलकर जा सकता था वह आज इन नाचीजों के सामने झुक जायगा यह सोचना आपकी नादानी है।"

अग्निदत्त चुप हो गये बस इतना कह कर और फिर मुस्कुराते हुए बोले, "यह मकान मेरा कदीमी मकान है। यहाँ से मुझे ब्रह्मा ही इधर उधर कर सकता है। गुण्डे जिन्हें आप कह रहे हैं, ये बेचारे तो आप लोगों की ट्रेनिंग के रंगरूट हैं। आपसी खलिशें निकालने के लिए यह सेना आप लोगों ने तैयार की है। अनियंत्रित होने पर उसका यह रूप बन गया है। फौजी सिपाहियों से खेती का काम नहीं होता। इन्हें तो शगल या खतरे का काम ही पसन्द आता है। लगातार मेहनत करना इनके वश की बात नहीं।"

वह चुपचाप सुनते रहे अग्निदत्त की बातें और अन्त मे उन्होंने स्वीकार किया कि वास्तव में उनका वह सुझाव ग़लत था।

बाबू अग्निदत्त का मकान तैयार हो गया और वह पुराना चौधरी आभाराम का बसाया हुआ खंडहर एक पक्का मकान बन गया। जब यह सूचना मुंशी चतुरसिंह को मिली तो उन्होंने अपने भाई को दिल से आशीर्वाद दिया और इस बुढ़ापे में भी वह एक दिन उसे देखने के लिए आये।

मुंशी चतुरसिंह का दिल गद्-गद् हो उठा उसे देख कर। उन्होंने कहा "मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि जिस ज़मीन की ठेक पर चौधरी आभाराम ने कभी झोंपड़ी डाल कर तमाम कस्बे से टक्कर ली थी वह ऐतिहासिक स्थान आज मेरे छोटे

भाई अग्निदत्त ने पक्का बना दिया। जिस काम को मैं न कर सका उस काम को तुमने पूरा किया।"

बाबू अग्निदत्त कृतज्ञतापूर्वक आँखों में आंसू लाते हुए हाथ जोड़ कर बोले, "यही भी आपने ही किया है भाई साहब मुझमें और आप में कोई अंतर नहीं।"

आज मुँशी चतुरसिंह की आत्मा प्रसन्न थी इस मकान को देखकर। वह और भी प्रसन्नतापूर्वक बोले, "अब मुझे संतोष है कि जो मकान कभी वेद-मन्त्रों के साथ किये गये हवन से सुगन्धित हुआ था उसमें से रामदयाल के माँसाहारी और शराबी जीवन को उनके आर्यसमाजी भाई अग्निदत्त ने उखाड़ फेंका। मुझे आशा है कि अब इस मकान में फिर मेरी ही तरह मेरा छोटा भाई बैठकर यज्ञ करेगा और उसकी सुगन्धि गाँव के वातावरण को महका देगी।"

इधर कई दिन से मुंशी चतुरसिंह का पेट खराब चल रहा था। वह जंगल में एकान्त स्थान पर रहते थे। उनके छोटे परिवार के वर्तमान कारकुनों ने उनके जीवन की अन्तिम साथिन, उनकी स्त्री, को भी उनसे छीन लिया था। उनकी स्त्री अपने बेटे और बेटियों की आज्ञा-पालन करना अपना कर्तव्य समझने लगी थी।

रास्ता मुंशी चतुरसिंह ने स्वयं दिखाया था। इसलिए जब कभी भी वह उनके चरित्र पर गम्भीरता पूर्वक विचार करते थे तो कसूर उन्हें अपना ही दीखता था।

अब मुंशी चतुरसिंह का पौरुष बिलकुल थक गया था।

मुँशी चतुरसिंह थक गये थे गाँव तक आते-आते। बाबू अग्निदत्त की स्त्री ने एक खटोला डाल दिया और फिर एक गिलास मट्ठे में जीरा और काला नमक मिला कर उनके लिये लाई। मुंशी चतुरसिंह ने पूछा, "तुम्हारे घर में मट्ठा कहाँ से आया अग्निदत्त? क्या कोई गाय भैंस रखी हुई है?"

"गाय भैंस कहाँ से रखता भाई साहब! चारे के लिए

ज़मीन तो है ही नहीं एक खूड़ भी मेरे पास ।" बाबू अग्निदत्त ने मुस्कुरा कर कहा ।

मुंशी चतुरसिंह चुप थे इस समय । उनकी अवस्था लगभग अस्सी वर्ष की रही होगी । उन्होंने छोटे भाई की बहू के हाथ से मट्ठे का गिलास ले लिया और उसे वहीं बठकर पिया ।

बाबू अग्निदत्त के घर को देखकर मुंशी चतुरसिंह फिर कुए पर अपनी झोंपड़ी में चले गये ।

दूसरे दिन फिर बाबू अग्निदत्त भाई साहब के पास कुए पर जा बैठे । मुंशी चतुरसिंह ने अभी-अभी सत्यार्थप्रकाश के बीच में कहीं वरगद के पत्ते को लगा कर रखा था और एक वेद-मंत्र उनके मस्तिष्क में घूम रहा था ।

बाबू अग्निदत्त के आते ही वह प्रसन्न होकर बोले, "कितना अच्छा भाष्य किया है ऋषि दयानन्द ने । पराये धन को मिट्टी के समान समझना चाहिए । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मनुष्य की अवनति के कारण हैं । इनके चक्कर में पड़कर आदमी अपनी इज्जत, अपना धन, अपनी शक्ति और अपने व्यक्तित्व को खो बैठता है ।"

बाबू अग्निदत्त मुस्कराने लगे बड़े भाई साहब की यह बात सुनकर, और विनम्र भाव से बोले, "भाई साहब क्या कोई आदमी इन धर्म-सिद्धान्तों को जीवन में घटाता भी है ? इनका पाठ करने से तो मैं समझता हूँ कोई लाभ नहीं होता ?"

मुंशी चतुरसिंह को क्रोध आया । वह समझ गये कि अग्निदत्त यह कहकर उनके चरित्र पर कटाक्ष कर रहा है ।

परन्तु आज इस कटाक्ष को जीवन में प्रथम बार उन्होंने ठंडे दिल से सहा । और उनकी यह सहनशक्ति देखकर बाबू अग्निदत्त स्वयं लज्जित हो गये कि उन्हें यह वाक्य नहीं कहना चाहिए था ।

बाबू अग्निदत्त ने पूछा, "आपके पेट की अब क्या दशा है ?"

"आज कुछ आराम है और सच जानो अग्निदत्त ! कल जो

तुमने वह मट्ठा पिला दिया था, उससे पेट में बड़ा आराम हुआ। हाँ तुमने बतलाया नहीं कि यह मट्ठा तुम्हारे यहाँ कहाँ से आता है ?" मुंशी चतुरसिंह ने फिर सवाल किया।

"मेरे यहाँ तो सब चीज़ें मोल की ही आती हैं भाई साहब ! एक भैंस का दूध ले-लेता हूँ, और उसी को जमवाकर बिलवा लेता हूँ। इस तरह घर का घी और दही-मट्ठा मिल जाता है।" बाबू अग्निदत्त ने कहा।

मुंशी चतुरसिंह सकुचाये कि आखिर वह अग्निदत्त से मोल का खरीदा हुआ मट्ठा अपने लिए लाने को कैसे कहें।

बाबू अग्निदत्त समझ गये उनके संकोच को और स्वयं बोले, "आपको मट्ठा पेट की इस शिकायत में लाभ करेगा। यदि कहें तो नमक-जीरा मिलवाकर एक गिलास मट्ठा रोजाना यहाँ दे जाया करूँ ?"

मुंशी चतुरसिंह ने यह स्वीकार कर लिया।

एक दो दिन तो बात लुकी-छिपी रही, परन्तु तीसरे दिन उसका राज़ खुल गया। ध्यानव्रत की बहू से गाँव की नायन ने आकर कहा, "सुनती हो आज गाँव में क्या चर्चा है ? बाबू अग्निदत्त की स्त्री कहती है कि तुम्हारे बूढ़े को वह एक गिलास मट्ठा रोज़ाना पहुँचाती है।"

"नायन ने कहा है !" क्रोध में भरकर ध्यानव्रत बोला।

"हाँ नायन ने कहा है। पिता जी का क्या जी निकला जाता है उस मट्ठे के बिना। जब भगवान् ने बाल-बच्चों पर मुसीबत डाली ही है तो क्या तब भी इनकी बूढ़ी ज़बान का स्वाद नहीं छूटता ?" ध्यानव्रत की बहू बोली।

बाल-बच्चों के दूध की बात सुनकर ध्यानव्रत का क्रोध बढ़ने लगा और उसे लगा कि मानो उसके पिताजी ने बाबू अग्निदत्त के घर का मट्ठा पीकर उसकी ज़बरदस्त तौहीन कर डाली।

वह लेटा नहीं रह सका यह बात सुनकर और सीधा जंगल में कुए के पास मुंशी चतुरसिंह की झोंपड़ी पर जाकर बोला,

"पिताजी ! आपने भी बस कमाल ही कर दिया । उन बाबू साहब के यहाँ से मट्ठा मँगाकर आपने हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा । जितना बाबू साहब के यहाँ दूध आता है उतना तो हमारे बच्चे नालियों में बहा देते हैं ।

मैं फिर कभी न सुनूँ कि बाबू जी यहाँ मट्ठा लेकर आते हैं ।"

ध्यानव्रत की बात सुनकर मुंशी चतुरसिंह अवाक रह गये उन्हें अब मन-ही-मन हँसी आई ध्यानव्रत की उस गर्वोक्ति पर कि उसके बाल-बच्चे दूध नालियों में बहा देते हैं ।

दूसरे दिन जब बाबू अग्निदत्त मट्ठा लेकर आये तो मुंशी चतुरसिंह ने लेने से इंकार कर दिया; परन्तु उनके नेत्र कह रहे थे, 'भय्या ! मैं मजबूर हूँ । मैंने तुझे ग़लत समझा था । उसी का यह फल भोग रहा हूँ । आज इस बुढ़ापे में मेरी तहमद में टट्टियाँ निकल जाती हैं और कोई आबदस्त लिवाने वाला भी नहीं । हरकली की माँ ने भी इस उम्र में आकर धोखा दे दिया ।

वह भी अपने बच्चों की ही होकर रह गई । बच्चों के लिए ही मैंने तुम्हें धोखा दिया था और उन्हें के लिए हरकली की माँ ने मुझे धोखा दिया, जो हशर आज मेरा हो रहा है, वही एक दिन देख लेना इस बुढ़िया का भी होगा । जब तक इसके हाड़ चलेंगे ये लोग उसे पेलते रहेंगे और जिस दिन चलने बन्द हो जायेंगे, उस दिन इस पर भी मक्खियाँ भिनकेंगी ।'

: ३४ :

रामदयाल को बाबू अग्निदत्त ने एक बार नहीं, कई बार उसके इरादों को पूरा करने में मदद की थी। ज्ञानव्रत की शादी में जब उसने अपनी बहू की चीज़ों को ज्ञानव्रत की बहू को न चढ़ने देना चाहा था तो बाबू अग्निदत्त ने वे चीज़ें बड़े भाई साहब से कहकर उसे दिलाई थीं और इन चीज़ों के दिलाने की वजह से उन्हें हरकली और ज्ञानव्रत के कोप का भाजन बनना पड़ा था।

जब वह धर्मप्रकाश को सिरसे में छोड़ने के लिए आया था तो भी बाबू अग्निदत्त का यही मत था कि धर्मप्रकाश और रामदयाल के साथ ज्ञानव्रत, हरकली और ध्यानव्रत ने अनुचित व्यवहार किया और उसे लगभग आधी ज़मीन खेती के लिए दिलाने में भी उन्होंने मदद की।

फिर जब अदालत में वह अपना मुकदमा ले गया, तो चाहे इंसाफ के लिए ही सही, या भविष्य में अपना भी हित उसी में देखा हो, परन्तु बाबू अग्निदत्त ने रामदयाल को मुक़दमा जीतने में सहयोग अवश्य दिया। उन्होंने जो गवाही दी उस पर मुकदमे का दारोमदार था और उन्होंने जो रुपया खत्री साहूकार के कर्ज में भरा उसने ख़ानदान को सम्मिलित साबित करने में भारी योग दिगा।

फिर एक बार जब रामदयाल ने उन्हें लिखा कि वह उसे कुछ रुपया भेज द तो वह ज़मीन का बंटवारा ठाक करा लेगा। वह रुपया भी बाबू अग्निदत्त ने रामदयाल को भेज दिया। परन्तु बाद में पता चला कि वह तो उसके रुपये ऐंठने का एक

मंत्र मात्र था। उसमें असलियत की कोई चीज़ नहीं थी।

बाबू अग्निदत्त ने मुक़दमा दायर किये बिना फैसला हो जाने की सभी सूरतों को नाकारा समझकर ही यह मुक़दमा अदालत में दायर किया था। कोई चारा नहीं था उनके पास उस समय अपने हक़ के लिए मुक़दमा दायर करने के अतिरिक्त।

परन्तु यह मुक़दमा दायर करने से पूर्व भी बाबू अग्निदत्त ने रामदयाल को उसमें शामिल होने की दावत दी थी और यह भी आश्वासन दिया था कि मुकदमे का सब खर्च वह स्वयं ही करेंगे। रामदयाल को केवल उनके साथ भर रहना होगा। परन्तु रामदयाल इस बात के लिए भी आमादा नहीं हुआ।

रामदयाल के पास इस समय लगभग आधी ज़मीन थी और चाहे ऊपर से कुछ नहीं कहता था परन्तु अन्दर से जो ज़मीन उसके कब्जे में आ चुकी थी उसमें से ज़रा-सा भी हिस्सा बाँटने को वह तैयार नहीं था। बाबू अग्निदत्त के सभी प्रलोभन इस समय व्यर्थ सिद्ध हुए।

बाबू अग्निदत्त ने जब पूरी तरह समझ लिया कि इन दोनों फरीकों के मनों में बदी है, तब उन्होंने अकेले ही दीवानी अदालत की तरफ कदम बढ़ाया था। बाबू अग्निदत्त ने मुकदमा जीतकर धर्मप्रकाश के घर की भाजड़ अपने पुराने मकान से निकलवा कर बाहर फिंकवा दी और रामदयाल को दिखा दिया कि खाली बेईमानी से ही दुनिया का काम नहीं चलता।

बाबू अग्निदत्त ने रामदयाल पर दूसरी करारी चोट अपनी डिग्री का सारा रुपया उसी से वसूल करके की। इस चोट को खाकर रामदयाल तिलमिला उठा और टखने ढीले हो गये उसके। उसकी रुपये-पैसे की दशा एकदम गिर गई। बाबू अग्निदत्त ने रामदयाल को अन्दर से बिलकुल खोखला कर दिया और उसके इस खोखलेपन की हवा भी कस्बे में फैल गई।

रामदयाल की नौकरी पुलिस-दारोगाई पर आ चुकी थी और उसका विचार था कि ज़िंदगी के अंतिम दिनों में वह अपना

अच्छा-खासा भविष्य बना लेगा। कहीं-न-कहीं से तो रिश्वत की मोटी रक़म काटने को मिल ही जायगी। परन्तु मामलात कुछ ऐसे बिगड़े कि उसे समय से पूर्व ही इस्तीफा देकर नौकरी छाड़नी पड़ी। अगर वह इस्तीफा न देता तो निश्चित रूप से उसे महकमे की तरफ़ से बर्खास्त कर दिया जाता और जो थोड़ी-बहुत पेंशन की आशा थी वह भी अंधकार में विलीन हो जाती।

रामदयाल अचानक बहुत सख़्त बीमार हो गया। इतना बीमार हुआ कि उसके बचने की भी आशा जाती रही। बाबू अग्निदत्त को जब रामदयाल की बीमारी की सूचना मिली तो वह उसे देखने के लिए सहारनपुर पहुँचे।

सहारनपुर में बाबू अग्निदत्त अठारह वर्ष रहे थे और वहाँ की हिंदू जनता का बच्चा-बच्चा उनकी सेवाओं और कर्मठता से परिचित था। आर्यसमाज के क्षेत्र में तो लोग उन्हें पूजते थे। उनके भतीजे की बीमारी को सुनकर काफी लोग देखने के लिए आये।

जब रामदयाल की दशा कुछ ठीक हुई तो वह सिरसे आया। स्टेशन से ताँगा रामदयाल को लेकर चला और सिरसे में घुसा तो अपने क़दीमी मकान पर उसकी दृष्टि गई। मकान रास्ते में ही पड़ता था और अब तो उसकी लम्बी-चौड़ी पक्की दीवार बाबू अग्निदत्त ने खिचवाली थी। एक आलीशान इमारत गाँव के मुख्य केन्द्र पर दिखाई देती थी।

बैठक की तरफ रामदयाल की दृष्टि गई तो उसका बीमार खून भी एक बार फिर उबाल खा गया। जिस बैठक में चौधरी शक्तिसिंह का प्यार उस पर उँडेला जाता था, जिस बैठक में बैठकर वह कई बार गाँव की गुण्डा-चौकड़ी को इकट्ठा करके उनके साथ जाम-पर-जाम पी चुका था, जिसमें लेटकर ताजा किए हुए हुक्के के लम्बे-लम्बे कश उसने खींचे थे, उसी बैठक के सामने उसने बाबू अग्निदत्त के नाम की तख़्ती लटकी हुई देखी।

रामदयाल का दिल अन्दर से जल उठा और उसने कहा, 'एक बार अगर जिन्दा-बन्दा बना रहा ता इस पर कब्ज़ा करके रहूँगा। जिस तरह मेरा सामान उठवाकर यहाँ से चाचा जी ने फिकवाया था उसी तरह एक दिन यदि इनका भी सामान उठवाकर न फिकवा दिया तो मेरा नाम भी रामदयाल नहीं।'

जंगल में कुए पर दो झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। ये दोनों ही ध्यानव्रत ने बनवाई थीं। एक में मुंशी चतुरसिंह अपना वानप्रस्थी जीवन व्यतीत करते थे आर दूसरी में ध्यानव्रत के मवेशी बाँधे जाते थे। जब से ध्यानव्रत पुराना मकान छोड़कर सुनारों वाली हवेली में गया था और घेर में धर्मप्रकाश ने रहना प्रारम्भ कर दिया था तब से उसने मवेशियों के रहने का स्थान कुए पर ही बना लिया था।

कुआ अब एक प्रकार से उसका जंगल का घर-सा ही बन गया था। वहाँ एक ओर तो मुंशी चतुरसिंह बैठे सत्यार्थप्रकाश पढ़ते रहते थे और दूसरी ओर ध्यानव्रत तथा ज्ञानव्रत के बच्चे बरगद के पत्तों के बैल और गाड़ी बनाकर उनसे खेलते थे। इसी खेल और सत्याथप्रकाश के पाठ में कभी-कभी सामंजस्य न रहने पर मुठभेड़ भी हो जाती थी। बाबा-पोतों की झौड़-झपटां में बेटों और बेटियों का भी पारा गर्म हो जाता था। कभी-कभी तो ये साधारण बच्चों की बातें ही जीवन की अहम बातों में बदल जाती थीं।

एक दिन बच्चों ने बन्दरों को तरह अपने बाबा जी को खिजाने के लिए उनकी झोंपड़ी पर कूद-कूद कर उसका फंस निकाल डाला। झोंपड़ी का फूंस निकल जाने पर उसमें जगह-जगह सूराख हो गये थे इन्हें देखकर मुंशी चतुरसिंह का क्रोध जागृत हो उठा और वह गालियाँ फटकारते हुए उनकी तरफ़ उन्हें पीटने के लिए लपके। बच्चे झोंपड़ी से कूदकर गाँव की ओर भाग लिए।

मुंशी चतुरसिंह उन्हें भागते देखकर वहीं पर न रुक सके वह भी उनका पीछा करते गाँव के अन्दर तक चले गये। बच्चों और उनके माता पिताओं को बुरी भली बातें भी वह खुलकर फटकारते जाते थे।

मार्ग में ज्ञानव्रत मिल गया और बाबा-पोतों की दौड़ देख कर उसने पूछा, "क्या बात है पिताजी ? आप क्रोध में क्या-क्या कहते चले जा रहे हैं ज़रा सोचिये तो सही।"

मुंशी चतुरसिंह वहीं रुक कर खड़े हो गये और बच्चों को छोड़कर ज्ञानव्रत से अपना माथा ठोकते हुए बोले, "बात क्या है, यही है बस कि ऐसी नालायक़ औलाद पैदा की है तुम लोगों ने। निहायत बदतमीज़ और निहायत दंगई किस्म के बच्चे हैं तुम्हारे। ऐसे नालायक़ बच्चों की तो हड्डियाँ तोड़ डालनी चाहिए।"

और यह कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू आ गये। वह और भा रुक कर बोले, "कितनी मुश्किल से कल मैंने बीस पूले फूंस के लगाकर झोंपड़ी को बरसात के लिए ठीक किया था। जिस पर तुम्हारी लायक़ औलाद ने कूद-कूद कर उसका बुरी तरह भुर्ता बना डाला। अब मैं किसके सामने जाकर अपना सिर पीटूँ।" और इतना कहकर वह रास्ते में ही अपने सिर को जोर-जोर से पीटने लगे।

ज्ञानव्रत को मुंशी चतुरसिंह की यह बात सुनकर बहुत ही बुरा लगा। आखिर बच्चों को संदूक में बन्द करके वह भला कैसे रख सकता है। बच्चों को तो आज़ाद ही रखना चाहिए। अपने पिताजी की बच्चों पर डंडेबाज़ी को नीति के वह बिलकुल विरुद्ध था। बच्चे उसने दंगई पैदा किये थे, इस बात को लेकर उसके दिलमें एक अजीब-सी कुढ़न पैदा हो गई। इस समय अपने पिता जी को वह बिलकुल नातरक़्की पसन्द समझ रहा था।

ज्ञानव्रत अपने माथे पर सलवटें डालकर बोला, "आप ही बच्चों से कौन अधिक बुद्धिमत्ता का कार्य कर रहे हैं ?

खाली कोपीन बाँधे गाँव के दगड़े में भगे जा रहे हैं। कम-से-कम अगोछा तो बाँध लिया होता। चारों तरफ गाँव की औरतें फिर रहीं हैं। आपको इस दशा में देखकर भला कोई क्या कहेंगी ? आपने तो सचमुच ही हमारी आबरू मिट्टी में मिलाने की ठान रखी है।"

और मुंशी जी वहीं से बड़बड़ाते हुए लौट पड़े। चलते समय "मैं ही तुम्हारी आँखों में खार हूँ। निकम्मे आदमी की यही दशा होती है जो मेरी इस समय हो रही है।"

"तो कमाइये न! कौन मना करता है आपको कमाने को।" अकड़कर ज्ञानव्रत ने कहा।

और उस दिन वाक़ई मुंशी चतुरसिंह के हाथों में अनाज बरसाने का पलड़ा देकर ज्ञानव्रत ने उन्हें काम पर जुटा दिया। परन्तु उनके शरीर में भला कहाँ शक्ति थी काम करने की। जब काम न करा जा सका तो ज्ञानव्रत ने कुढ़कर कहा, "बस निकल गया काम करने का ज़ौम ? आराम से बैठकर रोटियाँ नहीं खाई जातीं। नाहक हमारा दिमाग खराब करने की ठान लेते हो।"

इसी दौरान में रामदयाल का ताँगा वहाँ आ गया और उसने अपनी खटिया कुए पर उस झोंपड़ी के अन्दर डालने को कहा, जिसमें ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत के मवेशी बँधते थे। खटिया वहाँ डाली गई तो ज्ञानव्रत के दिल पर साँप-सा लेट गया। उसकी आँखों के सामने वही पुराना घेर वाला काण्ड आ गया जिसमें इन सबका मल्ल-युद्ध हुआ था और उसके बाद फल यह निकला था कि वह घेर ही ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत को छोड़ना पड़ा। वे डरते थे कि कहीं यह झोंपड़ी भी उन्हें छोड़नी न पड़ जाय।

परन्तु रामदयाल की खाट को अवसर पाकर इस झोंपड़ी से निकाल फेंकने का ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने मुस्तकिल इरादा कर लिया था। उसने यही उचित समझा कि वह अपनी झोंपड़ी अलहदा डलवाले और उनकी झोंपड़ी खाली कर दे और उसने

ऐसा ही किया।

रामदयाल चौबीसों घंटे वहीं रहता था। बाबू अग्निदत्त से भी उसकी धीरे-धीरे बातें होने लगीं और उसने विश्वास दिलाया कि वह उनकी ज़मीन को ज्ञानव्रत तथा ध्यानव्रत के नीचे से निकलवाने में पूरी-पूरी सहायता करेगा और उसके अपने हल के नीचे जो ज़मीन है, उसे भी वह छोड़ देगा।

इसी बीच में ज्ञानव्रत ने भी बाबू अग्निदत्त पर एक जाल फेंका और वह बोला, "यदि मैं आपकी ज़मीन छोड़ दूँ तो क्या आप मेरी उस नई खरीदी ज़मीन से अपना हक़ हटा सकते हैं जिस पर अदालत ने आपको हक़ दे दिया है?"

बाबू अग्निदत्त झगड़ा काटना चाहते थे और वह इस बात के लिए तैयार हो गए उन्होंने दस-पाँच बीघे ज़मीन का मोह छोड़ दिया और उतने पर ही क़नात किया जो उन्हें बिना दिक़्क़त और झगड़े के मिल सके।

ज्ञानव्रत ने एक डेढ़ बीघे का खेत छोड़कर उनसे कहा, "अब आप हम दोनों भाइयों के नाम तहसील में चलकर वह ज़मीन करा दीजिए।"

"पहले कुल ज़मीन आप मेरे कब्जे में दे दीजिए और विश्वास रखिये कि मैंने जो कुछ कह दिया है वह अवश्य करूँगा।" बाबू अग्निदत्त ने कहा।

"विश्वास का समय तो जाता रहा चाचाजी! अगर हमने तमाम ज़मीन छोड़ दी और फिर आपने वह हमारे नाम न की तो फिर हम क्या करेंगे? आपको तो फिर हम से बातें करने की भी आवश्यकता नहीं रह जायेगी," ज्ञानव्रत बोला।

"इसी तरह यदि मैंने वह ज़मीन तुम्हारे नाम कर दी और फिर तुमने ज़मीन न छोड़ी तो मैं तुम्हारा क्या कर लूंगा? जरा यह भी तो सोचिये भतीजे राजा!" बाबू अग्निदत्त ने नम्रता-पूर्वक कहा।

मामला यहीं पर समाप्त हो गया। इस फैसले की बातें

आगे न चल सकीं।

वह डेढ़ बीघे का खेत जो बाबू अग्निदत्त के हाथों में आ गया था, उसमें उन्होंने अपनी गाय के लिए चारा बुआ दिया। यह डेढ़ बीघे का खेत ज्ञानव्रत, हरकली और ध्यानव्रत के दिलों का नासूर बन गया। कुल ज़मीन में तिहाई के हिस्सेदार ने डेढ़ बीघे का खेत अपनी गाय के चारे के लिए बो लिया, यह बात ये तीनों सहन न कर सके।

"देखा कितने मक्कार निकले चचा अग्निदत्त!" हरकली ने कहा। इस समय मुंशी चतुरसिंह के परिवार की कार्यकारिणी सभा के तीन सदस्य हरकली, ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत थे। हरकली स्वतंत्र थी और इन दोनों भाइयों में इनके अपने और इनकी बहुओं के विचार मिले हुए रहते थे। रात की मंत्रणा को लेकर नित्य सुबह-ही-सुबह यह बैठक घर के मामलों पर विचार करने के लिए बैठती थी।

"तुम फिक्र न करो जीजी! अब की बार अगर चचा इस खेत में खूड निकाल लें तो हम जानें। इस बार इनकी वह मरम्मत की जायगी कि फिर जीवन भर खटिया ही सेनी पड़ेगी। अगर खेत की तरफ इन्होंने रुख कर भी लिया तो समझ लो कि फिर वह घर अपने पैरों वापस नहीं आ सकेंगे।" सीना उभार कर ध्यानव्रत ने अपनी गोल खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए।

"यही राय ठीक है," ज्ञानव्रत बोला। "इस बार उस खेत को उनसे हमें छीन लेना चाहिए। खेत हाथ में आ जाने से गाँव में चचा की जड़ें मज़बूत हो जायेंगी।

यही राय उन्हें उनके गाँव के साथियों ने भी दी। उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया, "मामला तुम्हारे घर का है, इसलिए जब तक घर के आदमी ही बोलेंगे हम बीच में नहीं पड़ेंगे। परन्तु यदि बाहर के आदमियों ने क़दम रखा तो फिर हम लोग देख लेंगे। जहाँ तुम्हारा पसीना बहेगा वहाँ हम अपना खून बहा देंगे।

बात निश्चित हो गई और दूसरी तरफ बाबू अग्निदत्त को

उनके पास बैठने-उठने वालों ने सलाह दी, "आप चिन्ता किस की करते हैं ? ज़रा मज़बूती के साथ हल जुड़वाइये। क्या आप चून के लड्डू हैं जो ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत आपको मुंह में डाल लेंगे। अगर कोई कस्बे का आदमी बोलेगा तो हम भी तो कहीं मर नहीं जायँगे। हम लोग भी वहीं मौजूद रहेंगे। क्या आपको हम कभी पिटते हुए देख सकते हैं ?"

इसी बीच राजू भी गाँव में आया और उसने मामले की तना-तनी को देखते हुए अपने पिता जी से कहा, "पिता जी, आप इन झमेलेबाज़ियों में न पड़ना। मुझे ज़मीन की आवश्यकता नहीं है। यदि क़ानूनन कभी मिल सकेगी तो ले लेंगे। जल्द-बाज़ी से काम न लीजिये। मैं आपस की झगड़ेबाजी पसन्द नहीं करता। ये लोग जो आपके पास बैठते हैं, सब दोगले हैं। ये इधर की उधर लगाते हैं और उधर की इधर। आप इनके यकीन में आकर कोई ग़लत क़दम न उठा बैठना।"

राजू ने बाबू अग्निदत्त के पास बैठने वालों को भी समझाया कि उन्हें इस प्रकार की पारस्परिक उत्तेजनात्मक चीज़ों में नहीं पड़ना चाहिए। इतनी तना-तनी के बावजूद भी वह ज्ञानव्रत से मिला और कहा, "आप जिन लोगों के चक्कर में पड़े हैं वे आपका साथ नहीं दे सकते। जो लोग आपस में लड़ने की सलाह देते हैं, वे आपके हितैषी कभी भी नहीं हो सकेंगे।"

परन्तु ज्ञानव्रत की अक्ल में अपने से छोटे राजू की ये बातें बेअक्ली की थीं और उसने राजू से स्पष्ट कह दिया, "मुझे तो इस समय अपने ये ही लोग हितैषी दीख पड़ते हैं। मैं इनका साथ नहीं छोड़ सकता। ये लोग जैसी भी सलाह देंगे मैं वैसा ही करूँगा।"

"तो ठीक है फिर आप गिरिये खंदक में और हमें भी ले चलिये। यही सब तो आपको करना है। आप खुद बरबाद होंगे और हमें भी करेंगे।" राजू ने कहा और वह निराश होकर वहाँ से लौट आया।

राजू भाग्य पर विश्वास नहीं करता था, परन्तु अब भवित-

व्यता उसकी आँखों के सामने नाच रही थी। परिस्थितियाँ उसने देखीं तो उसे लगा कि परिवार पर बरबादी के काले बादल मँडरा रहे हैं। वह अपने पिता जी को समझाने का प्रयास करता तो उन पर भी उसका कोई प्रभाव नहीं होता। उनके पास बैठने उठने वाले उनके सिर पर चढ़कर बोल रहे थे।

राजू गाँव में और अधिक नहीं रुक सका। उसका अपना काम था शहर में। उसके यहाँ रहने के कारण वह बरबाद हो रहा था। वह सिरसे की परिस्थितियों को इसी दशा में छोड़कर शहर चला गया।

: ३५ :

मुंशी चतुरसिंह की दशा इधर कुछ गिरती जा रही थी। एक दिन उन्होंने हरकली से ऐसी दशा में गिड़गिड़ाकर कहा, "बेटी ! अब मेरी दशा बहुत खराब हो चली है। तुम अपनी माता जी को अगर मेरी खिदमत के लिए यहाँ छाड़ दो तो बड़ी मेहरबानी होगी। मुझ से उठा-बैठा भी नहीं जाता। एक क़दम रखता हूँ तो गिरने की नौबत आ जाती है।"

हरकली ने मुंशी चतुरसिंह की तरफ़ मुँह बिचकाते हुए कहा, "आप पुरुषों में यह कितनी कमज़ोरी की बात है कि आप लोग मरते समय तक बिला स्त्री के रह ही नहीं सकते। ज़रा मेरी तरफ देखिये कि जो इतने दिन से बिला पुरुष के रह रही हूँ। क्या आपके विचार से मुझे साथी की आवश्यकता नहीं है ?"

मुंशी चतुरसिंह को लज्जा आ गई हरकली के इन वाक्यों को सुनकर। यह ब्रह्मचारिणी सती साध्वी का उपदेश था अपने उस वृद्ध पिता के उन अतिम दिनों में जबकि उनकी आँखों की पुतलियों में चिता की लपटें जाकर समा चुकी थीं।

आजकल जब मुंशी चतुरसिंह से उठा नहीं जाता था तो उनकी टट्टी वहीं बैठे-बैठे निकल जाती थी। सब कपड़े गन्दे हो जाते थे और फिर कुए से डोल खींच कर उन्हें वे स्वयं अपने ही हाथ से धोने पड़ते थे।

सुबह-शाम के संध्या-हवन भी छूट गये थे। लगातार बैठने की शक्ति उनके अन्दर रह नहीं गई थी। ध्यानव्रत और ज्ञान-व्रत में से कोई विशेष रूप से उनकी देखभाल के लिये वहाँ नहीं जाता था। इन लोगों के बच्चे तो वैसे ही ऐसी दशा में उधर

जाकर नहीं फटकते थे, कि कहीं बाबाजी कुछ काम न बतला डालें।

ज्ञानव्रत जब कभी वहाँ पहुँचता और इधर-उधर मक्खियाँ भिनकती देखता तो नाक चढ़ाकर कहता, "यह क्या गन्दगी फैलाई हुई है? आपका तो ढसरा ही बिगड़ गया है पिताजी ! जहाँ जी चाहता है बैठकर टट्टी कर लेते हो। अगर यहाँ से दस कदम खेत के अंदर जाकर टट्टी फिर लिया करो तो क्या पैर टूट जाय?"

मुंशी चतुर्रसिंह पड़े-पड़े यह सुन रहे थे। ज्ञानव्रत के इस उपदेश से उनके अन्दर एक ग्लानि सी उत्पन्न हुई और तुरंत ही उन्हें ज़ोर की टट्टी लग आई। वह झोंपड़ी से निकलकर वहीं बाहर बैठ गये। एक कदम भी और आगेबढ़ाना उनके लिए कठिन था।

यह देखकर ज्ञानव्रत ने समझा कि पिताजी वहाँ उसी की चिढ़ से टट्टी करने बैठ गये हैं। उसे बड़ा ज़बरदस्त क्रोध आया उन पर। उसे सहन न करते हुए उसने मंशी जी को दोनों कंधों से ऊपर उठा कर जोर से खेत में जा पटका और कड़क कर कहा, "टट्टी फिरने की जगह वह नहीं है, यह है। वहाँ बच्चे खेलते हैं और टट्टी से बीमारी फैलती है। हवा खराब होती है!" और इससे आगे भी वह अपना व्याख्यान देता गया।

मुँशी चतुर्रसिंह को ज़मीन पर पटकना था कि उनकी कई हड्डियाँ चर-चर करके टूट गईं और उनकी ज़बान से कराहते हुए निकला, "ज्ञानव्रत मुझे न मार, ज्ञानव्रत मुझे न मार, ज्ञानव्रत मुझे न मार।"

मुँशी जी बेहोशी में केवल यही वाक्य कह रहे थे, "ज्ञानव्रत मुझे न मार।

क़स्बे भर का वातावरण इसी अफवाह से आच्छादित हो गया कि ज्ञानव्रत ने अपने बूढ़े पिता को इतना मारा इतन मारा कि बेचारों के बचने की कोई आशा नहीं है।

मुंशी चतुर्रसिंह को उनके लड़के एक खाट पर डालकर ऐसे अवस्था में उस हवेली के अन्दर लाये जहाँ से एक दिन उन्हे निकाला गया था और उन बहुओं ने ज़ोर-ज़ोर से दहाड़ें मार-

मार कर रोना प्रारम्भ किया जिन्हें अपने पतियों से मुंशी चतुर सिंह की बुराइयाँ करने में आनन्द आता था। इन्हीं ने एक दिन उन्हें वनवास दिला कर कुए की झोंपड़ी में भिजवाया था।

रामायण के युग से वह विपरीत अवस्था भी इस परिवार ने देखी कि जिसमें बेटों के द्वारा पिता को वनबास दिया गया और बेटों के विरह में पिता का प्राणांत न होकर उनके हाथों से उनकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं।

ज्ञानव्रत अकेला बैठक में बैठा था और उसके कानों में मुंशी चतुरसिंह के वे शब्द पड़ रहे थे जो वह ज़रा होश आने पर कहने लगते थे, 'ज्ञानव्रत मुझे न मार, ज्ञानव्रत मुझे न मार।'

ज्ञानव्रत अब भी अकेला बैठा हुआ दाँतों को किटकिटा रहा था और अपने से ही कहता जा रहा था, 'अब पता चला है कि परवश को मारने से उसकी आत्मा को कितना कष्ट होता है। मेरे इस शरीर पर आपने बचपन में कितनी कमचियाँ तोड़-तोड़ डाली थीं, इसका तो आज हिसाब ही नहीं है मेरे पास। शरीर पर चोट लगने से कितना कष्ट होता है, इसका अन्दाज आज लग रहा है आपको।'

इसी समय मुंशी चतुरसिंह ने अन्तिम हिचकियाँ लीं और उनका प्राणान्त हो गया। ध्यानव्रत ने ज्ञानव्रत को आकर सूचना दी, "पिताजी का प्राणान्त हो गया भाई साहब!"

"तो ठीक है यह तो होना ही था। तुम जाकर अर्थी वगैरा का प्रबन्ध करो।" गम्भीरता पूर्वक ज्ञानव्रत ने कहा।

"परन्तु पैसा तो एक भी नहीं घर में।" गर्दन नीची किये हुए ध्यानव्रत बोला।

ज्ञानव्रत का पारा फ़िर ज़रा तेज हो गया और वह झुंझलाता हुआ बोला, "तो कोई चीज गिरवीं रखकर रुपये का इन्तजाम कर लो। मिट्टी तो ठिकाने लगानी ही पड़ेगी। पिताजी मर गये परन्तु हमारे परिवार को भी ज़िन्दा ही मौत के मुँह में धकेल गये।"

ध्यानव्रत ने भी अपने बड़े भाई साहब की इस बात को अटल

सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया ।

बाबू अग्निदत्त और उनकी स्त्री को इस हादसे का पता चला तो उनकी आत्मा हिल उठी और उन्हें दिखाई दिया कि वह पुराना वृक्ष जिसकी जड़ों को ज्ञानव्रत और ध्यानव्रत ने खोखला कर दिया था, अब चंद घंटों के अंदर ज़मीन पर गिरने वाला है।

रामदयाल को जब यह खबर मिली तो उसके दिल पर भी धक्का सा लगा और वह परेशानी-सी अनुभव करके इधर-उधर घूमने लगा ।

मुंशी चतुर्रसिंह इस अंतिम अवस्था में अपने बच्चों के कारावास में बन्द थे और उनके पास तक कोई परिन्दा भी पर नहीं मार सकता था । रामदयाल बाबू अग्निदत्त के पास आया और उन्हें इस हादसे की सूचना दी । फिर वहाँ जाने की इच्छा भी प्रकट की । बाबू अग्निदत्त वहाँ जाने को पहले से ही बेचैन हो रहे थे ।

इसी समय क़स्बे में दूसरी हवा फैली कि मुंशी चतुर्रसिंह का देहावसान हो गया । बाबू अग्निदत्त वहीं जमीन पर माथा पकड़ कर बैठ गये और उन्हें लगा कि उनकी पीढ़ी का अपने परिवार में वह अंतिम आँखों के सामने आने वाला इन्सान भी जाता रहा ।

मुंशी चतुर्रसिंह की अर्थी धूमधाम से निकाली गई । उनकी अर्थी के ऊपर कागजी विमान भी बनाया गया कि जिस पर बैठ कर वह सीधे स्वर्ग को जा सकें। रामदयाल और बाबू अग्निदत्त ने भी अर्थी पर दुशाले डाले ।

परन्तु उनके शव को जलाने के लिए ज्ञानव्रत ने असली घी के बजाय एक कोटोजम का दो पौंड का डिब्बा ही मँगाया और मुरादाबादी क़लई के थाल में सामग्री उससे अधिक नहीं थी जितनी वह अपने जवानी पहरे में किसी तीज त्यौहार को हवन में जलाने के लिए चतुर्रसिंह इस्तेमाल किया करते थे ।

●